वस्तु स्वरूप समझने

पांच बोल	नौ पदार्थ	काल	पाच भाव	सुखदायक दुःखदायक	हेय, ज्ञेय उपादेय
१-मयोग जडसार	अजीवतत्व	अनादि-अनन्त	×	×	ज्ञेय
२-सयोगी भाव द्रव्यसार	आस्रव-बध पुण्य-पाप	अनादि सात	औदयिक भाव	दु खदायक	हेय
३-स्वभाव त्रिकाली परमसार	जीवतत्व	अनादि-अनन्त	पारिणामिक भाव	परम सुखदायक	परम उपादेय (आश्रय करने योग्य)
-स्वभाव के माधन एकदेस भावसार	सवर-निजरा	सादिसात	औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिक श्रद्धा-चारित्त का क्षायिक-भाव	एकदेश सुखदायक	एकदेश उपादेय (प्रकट करने योग्य)
५-मिद्ध व पूर्ण भाव सार	मोक्ष	मादिअनन्त	पूर्ण क्षायिक भाव	पूर्ण सुखदायक	पूर्ण उपादेय (प्रकट करने योग्य)

समझाने का सरल उपाय

उत्तम क्षमा	ईर्या समिति	वचन गुप्ति	क्षुधा-परिषह जय	नमस्कार	संयोग की पृथकता आदि तीन बोल
जड उत्तमक्षमा	जड ईर्या समिति	जड वचन गुप्ति	जड क्षुधा परिपह जय	जड नमस्कार	सयोग की पृथक्ता
द्रव्य उत्तमक्षमा	द्रव्य ईर्या समिति	द्रव्य वचन गुप्ति	द्रव्य क्षुधा परिपह जय	द्रव्य नमस्कार	विभाव की विपरीतता
शक्तिरूप उत्तमक्षमा	शक्तिरूप ईर्या समिति	शक्तिरूप वचन गुप्ति	शक्तिरूप क्षुधा परिषह जय	शक्तिरूप नमस्कार	परम स्वभाव की सामथ्यता
एकदेश भाव उत्तमक्षमा	एकदेशभाव ईर्या समिति	एकदेशभाव वचन गुप्ति	एकदेश भाव क्षुधा परिषह जय	एकदेश भाव-नमस्कार	एकदेश स्वभाव की सामर्थ्यता
पूर्ण भाव उत्तमक्षमा	पूर्ण भाव ईर्या समिति	पूर्ण भाव वचन गुप्ति	पूर्ण भाव क्षुधा परिषह जय	पूर्ण भाव नमस्कार	पूर्ण स्वभाव की सामर्थ्यता

जिनेन्द्र कथित विश्व व्यवस्था

"जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और काल लोक प्रमाण असंख्यात है। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण में एक ही समय में एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय और गुण ध्रौव्य रहता है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य के गुण में हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।"

[जैनदर्शन का सार]

स्व—(१) अमूर्तिक प्रदेशो का पुज (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो का धारी (३) अनादिनिधन (४) वस्तु आप है।

पर—(१) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिण्ड (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित (३) नवीन जिसका सयोग हुआ है (४) ऐसे शरीरादि पुद्गल पर हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक]

सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होकर सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति का उपाय

अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं। कोई किसी के आधीन नहीं हैं। कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। पर को परिणमित कराने का भाव मिथ्यादर्शन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक]

अपने-अपने सत्त्व कूं, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय॥

सत् द्रव्य लक्षणम्। उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।

[मोक्षशास्त्र]

"Permanancy with a Change"

[बदलने के साथ स्थायित्व]

NO SUBSTANCE IS EVER DESTROYED
IT CHANGES ITS FORM ONLY

[कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, प्रत्येक वस्तु अपनी अवस्था बदलती है।]

प्रकाशकीय निवेदन

जगत के सब जीव सुख चाहते है अर्थात् दु.ख से भयभीत हैं। सुख पाने के लिए यह जीव सर्व पदार्थों को अपने भावो के अनुसार पलटना चाहता है। परन्तु अन्य पदार्थों को बदलने का भाव मिथ्या है क्योकि पदार्थ तो स्वयमेव पलटते है और इस जीव का कार्य मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

सुखी होने के लिए जिन वचनो को समझना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान मे जिन धर्म के रहस्य को बतलाने वाले अध्यात्म पुरुष श्री कान जी स्वामी है। ऐसे सत्पुरुष के चरणो की शरण मे रहकर हमने जो कुछ सिखा पढा है उसके अनुसार प० कैलाश चन्द्र जी जैन (बुलन्दशहर) द्वारा गुथित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातो भाग जिन-धर्म के रहस्य को अत्यन्त स्पप्ट करने वाले होने से चौथी वार प्रकाशित हो रहे हैं।

इस प्रकाशन कार्य मे हम लोग अपने मडल के विवेकी और सच्चे देव-गुरू-शास्त्र को पहचानने वाले स्वर्गीय श्री रूप चन्द जी, माजरा वालो को स्मरण करते है जिनकी शुभप्रेरणा से इन ग्रन्थो का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ था।

हम बडे भक्ति भाव से और विनय पूर्वक ऐसी भावना करते हैं कि सच्चे सुख के अर्थी जीव जिन वचनो को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करे। ऐसी भावना से इन पुस्तको का चौथा प्रकाशन आपके हाथ मे है।

इस पाचवे भाग मे पन्द्रह प्रकरण हैं। इसमे मुख्यरूप से श्री समयसार की कुछ गाथाओ का मर्म समझाया गया है। इसका उद्देश्य यथार्थ आत्मस्वरूप की पहिचान करा कर अतीन्द्रिय ज्ञान-सुख की प्राप्ति है। जो मुमुक्षु इसका आदर से अभ्यास करेगा, श्रवण करेगा, पठन करेगा, वह अपने ज्ञायक स्वभाव मे लीन होकर मुक्ति का नाथ बनेगा।

विनीत

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

देहरादून

ॐ

श्री समयसारजी की स्तुति

हरिगीत

संसारी जीवना भावमरणो टालवा करुणा करी,
सरिता वाहवी सुधा तणी प्रभु वीर ! ते संजीवनी।
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुन्द संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी ॥

अनुष्टुम्

कुन्दकुन्द रच्यु शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज ! तारामा भावो ब्रह्मांडना भर्या।

शिखरिणी

अहो ! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नितरती,
मुमुक्षु ने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी।
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती,
विभावेथी थमी स्वरूप भणी दोडे परिणती।

शार्दूलविक्रीडित

तूं छे निश्चयग्रन्थ, भंग सघला व्यवहारना भेदवा,
तूं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा।
साथी साधकनो, तूं भानु जगनो, सन्देश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो तूं पंथ मुक्ति तणो ॥

वसंततिलका

सूण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणा जणाय।
तूं रुचता जगतनी रुचि आलसे सौ,
तूं रीझता सकलज्ञायकदेव रीझे।

अनुष्टुप्

बनावूं पत्र कुन्दनना, रत्नोना अक्षरो लखी,
तथापि कुन्दसूत्रोना अंकाये मूल्य ना कदी ॥

विषय-सूची

ॐ

लेखक की भूमिका

अनादिकाल से परमगुरु सर्वज्ञदेव, अपरगुरु गणधरादि ने जिस वस्तुस्वरूप का वर्णन किया है, वही वस्तुस्वरूप पूज्य श्री कानजी स्वामी बतला रहे थे। उसी वस्तुस्वरूप का ज्ञान जो मेरे ज्ञान मे आया, उमे मैं सदैव प्रश्नोत्तरो के रूप मे लेखबद्ध करता रहा था। धीरे-धीरे सरल प्रश्नोत्तरो के रूप मे समस्त जैन-शासन का सार लेखबद्ध हो गया। मेरे विचार मे सत्य बात समझ मे न आने का मुख्य कारण जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का पता न होना और जिनागम का रहस्य दृष्टि मे न आने से अपनी मिथ्या मान्यताओ के अनुसार शास्त्रो का अभ्यास करना है। जिसके फलस्वरूप अज्ञानी जीव स्वय की मिथ्याबुद्धि से ससार मार्ग का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करते है। वस्तुत किसी भी अनुयोग के जैन शास्त्र का स्वाध्याय करने से पूर्व यदि निम्न प्रश्नोत्तरो का मनन कर लिया जाय तो शास्त्रो का सही अर्थ समझने मे सुविधा रहेगी तथा ससार मार्ग से बचने का अवकाश रहेगा।

प्रश्न १—प्रत्येक वाक्य मे से चार बातें कौन-कौनसी निकालने से रहस्य स्पष्ट समझ मे आ सकता है ?

उत्तर—(१) जिन, जिनवर और जिनवरवृषभ क्या कहते है ? (२) जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हे ? (३) जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो के कथन को सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि पात्र भव्य जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ? (४) जिन-जिनवर और

जिनवरवृपभो के कथन को सुनकर दीर्घ मसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते है और क्या करते है ?

प्रश्न २—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो ने पदार्थ का स्वरूप कैसा और क्या बताया है ? जिसके श्रद्धान से सर्व दुःख दूर हो जाता है ?

उत्तर—"अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नही है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नही होती।" जिन-जिनवर और जिनवरवृपभो ने बताया है कि पदार्थों का ऐसा श्रद्धान करने से सर्व-दु.ख दूर हो जाता है।

प्रश्न ३—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के ऐसे कथन को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान समस्त पदार्थो के स्वरूप का ज्ञान हो गया है, मात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष का अन्तर रहता है। ज्ञानी अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव मे विशेप स्थिरता करके श्रेणी माँडकर सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेते है।

प्रश्न ४—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन को सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि पात्र भव्य जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—अहो-अहो ! जिन-जिनवर और जिनवरवृपभो का कथन महान उपकारी है तथा प्रत्येक पदार्थ की स्वतन्त्रता ध्यान मे आ जाती है। अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर ज्ञानी बनकर ज्ञानी की तरह निज-स्वभाव मे विशेप एकाग्रता करके श्रेणी माडकर सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेते है।

प्रश्न ५—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन को सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन का विरोध

हैं तथा मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारो गतियो मे घूमते हुए चले जाते हैं।

प्रश्न ६—प्रथम किन-किन पांच बातों का निर्णय करके शास्त्रा- करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—(१) व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य का उसका पर्याय ही होता है, दो द्रव्यो मे व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कभी भी नही ता है। (२) अज्ञानी का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध शुभाशुभ विकारी- ो के साथ कहो तो कहो, परन्तु पर द्रव्यो के साथ तथा द्रव्यकर्मों साथ तो व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नही है। (३) का शुद्ध भावो के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। (४) मैं ८ व्यापक और शुद्धभाव मेरा व्याप्य है। ऐसे विकल्पो मे भी हेगा तो धर्म की प्राप्ति नही होगी। (५) मैं अनादिअनन्त ज्ञायक भगवान हूँ और मेरी पर्याय मे मूर्खता के कारण एक-एक का वहिरात्मपना चला आ रहा है ऐसा जाने-माने तो तुरन्त हिरात्मपने का अभाव होकर अन्तरात्मा वन जाता है। इन पाँच ो का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है।

प्रश्न ७—आगम के प्रत्येक वाक्य का मर्म जानने के लिए क्या- जानकर स्वाध्याय करें ?

उत्तर—चारो अनुयोगो के प्रत्येक वाक्य मे (१) शब्दार्थ, (२) यार्थ, (३ मतार्थ, (४) आगमार्थ और (५) भावार्थ निकालकर ध्याय करने से जैनधर्म के रहस्य का मर्मी वन जाता है।

प्रश्न ८—शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर—प्रकरण अनुसार वाक्य या शब्द का योग्य अर्थ समझना ० है।

प्रश्न ९—नयार्थ क्या है ?

उत्तर—किस नयका वाक्य है ? उसमे भेद-निमित्तादि का उपचार ने वाले व्यवहारनय का कथन है या वस्तुस्वरूप वतलाने वाले

निश्चयनय का कथन है—उसका निर्णय करके अर्थ करना वह नयार्थ है।

प्रश्न १०—मतार्थ क्या है?

उत्तर—वस्तुस्वरूप से विपरीत ऐसे किस मत का (साख्य-बौद्धादिक) का खण्डन करता है। और स्याद्वाद मत का मण्डन करता है—इस प्रकार शास्त्र का कथन समझना वह मतार्थ है।

प्रश्न ११—आगमार्थ क्या है?

उत्तर—सिद्धान्त अनुसार जो अर्थ प्रसिद्ध हो तदनुसार अर्थ करना वह आगमार्थ है।

प्रश्न १२—भावार्थ क्या है?

उत्तर—शास्त्र कथन का तात्पर्य—साराश, हेय उपादेयरूप प्रयोजन क्या है? उसे जो बतलाये वह भावार्थ है। जैसे—निरजन ज्ञानमयी निज परमात्म द्रव्य ही उपादेय है, इसके सिवाय निमित्त अथवा किसी भी प्रकार का राग उपादेय नही है। यह कथन का भावार्थ है।

प्रश्न १३—पदार्थों का स्वरूप सीदे-सादे शब्दो मे क्या है, जिनके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जाता है?

उत्तर—"जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य हैं। प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण मे एक ही समय मे एक पर्याय का व्यय, एक पर्याय का उत्पाद और गुण ध्रौव्य रहता है। ऐसा प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण मे हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।" इसके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दु ख का अभाव जिनागम मे बताया है।

प्रश्न १४—किसके समागम मे रहकर तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए और किसके समागम मे रहकर तत्त्व का अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए?

उत्तर—ज्ञानियो के समागम मे रहकर ही तत्त्व अभ्यास करना चाहिए और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास कभी भी नही करना चाहिए ।

प्रश्न १५—मोक्ष मार्ग प्रकाशक मे 'ज्ञानियो के समागम से तत्त्व अभ्यास करना और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास नहीं करना" ऐसा कहीं लिखा है ?

उत्तर—प्रथम अध्याय पृष्ठ १७ मे लिखा है कि "विशेष गुणो के धारी वक्ता का सयोग मिले तो बहुत भला है ही और न मिले तो श्रद्धानादिक गुणो के धारी वक्ताओ के मुख से ही शास्त्र सुनना । इस प्रकार के गुणो के धारक मुनि अथवा श्रावक सम्यग्दृष्टि उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धति बुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषो के मुख से शास्त्र सुनना उचित नही है ।"

प्रश्न १६—पाहुड़ दोहा में "किसका सहवास नहीं करना चाहिए" ऐसा कहां लिखा है ?

उत्तर—पाहुड दोहा बीस मे लिखा है कि "विष भला, विषधर सर्प भला, अग्नि या बनवास का सेवन भी भला, परन्तु जिनधर्म से विमुख ऐसे मिथ्यात्वियो का सहवास भला नही ।"

प्रश्न १७—अपना भला चाहने वाले को कौन-कौन सी सात बातो का निर्णय करना चाहिये ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन से ही धर्म का प्रारम्भ होता है । (२) सम्यग्दर्शन प्राप्त किए बिना किसी भी जीव को सच्चे व्रत, सामायिक प्रतिक्रमण, तप, प्रत्याख्यानादि नही होते, क्योकि वह क्रिया प्रथम पांचवे गुणस्थान मे शुभभावरूप से होती है । (३) शुभभाव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो को होते है । किन्तु अज्ञानी उससे धर्म होगा, हित होगा ऐसा मानता है । ज्ञानी की दृष्टि मे हेय होने से वह उससे कदापि हितरूप धर्म का होना नही मानता है । (४) ऐसा नही

समझना कि धर्मी को शुभभाव होता ही नही, किन्तु वह शुभभाव को धर्म अथवा उससे क्रमश धर्म होगा—ऐसा नही मानता, क्योकि अनन्त वीतराग देवो ने उसे वन्ध का कारण कहा है। (५) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर नही सकता, उसे परिणमित नही कर सकता, प्रेरणा नही कर सकता, लाभ-हानि नही कर सकता, उस पर प्रभाव नही डाल सकता, उसकी सहायता या उपकार नही कर सकता, उसे मार-जिला नही सकता, ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियो ने पुकार-पुकार कर कही है। (६) जिन-मत मे तो ऐसा परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व और फिर व्रतादि होते हैं। वह सम्यक्त्व स्व-परका श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि वनना चाहिए। (७) पहले गुणस्थान मे जिज्ञासु जीवो को शास्त्राभ्यास, अध्ययन-मनन, ज्ञानी पुरुषो का धर्मोपदेश-श्रवण, निरन्तर उनका समागम, देवदर्शन, पूजा, भक्तिदान आदि शुभभाव होते हैं। किन्तु पहले गुणस्थान मे सच्चे व्रत, तप आदि नही होते हैं।

प्रश्न १८—उभयाभासी के दोनो नयो का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह क्या करे? (दोनो नयो को किस प्रकार समझें?)

उत्तर—निश्चयनय से जो निरुपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरु-पण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न १९—व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कहीं भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है?

उत्तर—हा, दिया है। समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि "सर्व ही हिसादि व अहिसादि मे अध्यवसाय है सो समस्त ही छोडना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—इसलिये मैं ऐसा मानता हू कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही

छुडाया है तो फिर सन्तपुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यो नहीं करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रकट किया है।

प्रश्न २०—निश्चयनय को अगीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय मे भगवान कुन्द-कुन्द आचार्य ने मोक्षप्राभृत गाथा ३१ मे क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार की श्रद्धा छोडता है वह योगी अपने आत्म काय मे जागता है तथा जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य मे सोता है। इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है। यही बात समाधितन्त्र गाथा ७८ मे भगवान पूज्यपाद आचार्य ने बताई है।

प्रश्न २१—व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय (१) स्वद्रव्य, परद्रव्य को (२) तथा उनके भावो को (३) तथा कारण-कार्यादि को, किसी को किसी मे मिला कर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए और निश्चयनय उन्ही का यथा-वत निरूपण करता है। तथा किसी को किसी मे नही मिलाता और ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न २२—आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयो का ग्रहण करना कहा है। उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना तथा कही

व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है। उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न २३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार दोनो नयो का ग्रहण करना चाहिये; क्या उन महानुभावो का कहना गलत है ?

उत्तर—हा, बिल्कुल गलत है, क्योकि उन्हे जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्त्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न २४—व्यवहारनय असत्यार्थ है। तो उसका उपदेश जिनमार्ग मे किसलिये दिया ? एक मात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था।

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार मे ससारी भाषा बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इस लिये व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते है। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, परन्तु वह अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २५—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नही होता है। इसके पहले प्रकार को समझाइए ?

उत्तर—निश्चय से आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको व्यवहारनय से शरीरादिक पर द्रव्यो की सापेक्षता द्वारा नर-नारक

पृथ्वीकायादिकरूप जीव के विशेष किये, तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है। इत्यादि प्रकार सहित उन्हे जीव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के सयोग बिना) निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २६—प्रश्न २५ मे व्यवहारनय से शरीरादिक सहित जीव की पहचान कराई तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अगीकार नही करना चाहिए? सो समझाइए।

उत्तर—व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा सो पर्याय ही को जीव नही मान लेना। वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोगरूप है। वहा निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न है—उस ही को जीव मानना। जीव के सयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नही, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादि वाला जीव) अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २७—व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नहीं होता? इस दूसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तो वे कुछ समझ नही पाये। तब उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये। तब जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है। इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहचान हुई। इस प्रकार भेद बिना अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २८—प्रश्न २७ मे व्यवहारनय से ज्ञान-दर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान कराई। तब ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये? सो समझाइये।

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान-दर्शनादि भेद किये सो उन्हे भेद

रूप ही नही मान लेना क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं। निश्चय से आत्मा अभेद ही है। उस ही को जीववस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से द्रव्यगुण भिन्न-भिन्न नही है, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरूप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २९—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता? इसके तीसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है। उसे जो नही पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे कुछ समझ नही पाये। तब उनको तत्त्व श्रद्धान ज्ञानपूर्वक, परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्यवहारनय से व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये तब उन्हे वीतरागभाव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार विना निश्चय मोक्ष मार्ग के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न ३०—प्रश्न २९ मे व्यवहारनय से मोक्ष मार्ग की पहचान कराई। तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये? सो समझाइए।

उत्तर—परद्रव्य का निमित्त मिलने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा। सो इन्ही को मोक्षमार्ग नही मान लेना, क्योकि (१) परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नही है। (२) इसलिए आत्मा अपने जो रागादिक भाव है, उन्हे छोडकर वीतरागी होता है। (३) इसलिए निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (४) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तकपना) है, इसलिए, व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से बाह्यक्रिया

मोक्षमार्ग नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है, ऐसा जानना।

प्रश्न ३१—जो जीव व्यवहारनय के कथन को ही सच्चा मान लेता है उसे जिनवाणी मे किन-किन नामो से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय गाथा ६ मे कहा है कि "तस्य देशना नास्ति"। (२) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "अज्ञान-मोह अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है"। (३) प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि "वह पद-पद पर धोखा खाता है"। (४) आत्मावलोकन मे कहा है कि "यह उसका हरामजादीपना है"। इत्यादि सब शास्त्रो मे मूर्ख आदि नामो से सम्बोधन कि

प्रश्न ३२ – परमागम के अमूल्य ११ सिद्धान्त क्या-क्या हैं, जो मोक्षार्थी को सदा स्मरण रखना चाहिए और वे जिनवाणी मे कहाँ-कहाँ वतलाये हैं ?

उत्तर—(१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नही करता है। [समयसार गाथा ३] (२) प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है। [समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक] (३) उत्पाद, उत्पाद से है व्यय या ध्रुव से नही है। [प्रवचनसार गाथा १०१] (४) प्रत्येक पर्याय अपने जन्मक्षण मे ही होती है। [प्रवचनसार गाथा १०२] (५) उत्पाद अपने षटकारक के परिणमन से ही होता है [पचास्तिकाय गाथा ६२] (६) पर्याय और ध्रुव के प्रदेश भिन्न-भिन्न है। समयसार गाथा १८१ से १८३ तक] (७) भाव शक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी पडती नही। [समयसार ३३वी शक्ति] ८) निज भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। [समयसार गाथा ११] (९) चारो अनुयोगो का तात्पर्य मात्र वीत-रागता है। [पचास्तिकाय गाथा १७२] (१०) स्वद्रव्य मे भी द्रव्य गुण-पर्याय का भेद विचारना वह अन्यवशपणा है। [नियमसार

१४५] (११) ध्रुव का आलम्बन है वेदन नही है और पर्याय का वेदन है, परन्तु आलम्बन नही है।

प्रश्न ३३—पर्याय का सच्चा कारण कौन है और कौन नहीं है?

उत्तर—पर्याय का कारण उस समय पर्याय की योग्यता है। वास्तव मे पर्याय की एक समय की सत्ता ही पर्याय का सच्चा कारण है। [अ] पर्याय का कारण पर तो हो ही नही सकता है, क्योकि परका तो द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। [आ] पर्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य भी नही हो सकता है क्योकि पर्याय एक समय की है यदि त्रिकाली कारण हो तो पर्याय भी त्रिकाल होनी चाहिए सो है नही। [इ] पर्याय का कारण अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय भी नही हो सकती है क्योकि अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नही हो सकती है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि पर्याय का सच्चा कारण उस समय पर्याय की योग्यता ही है।

प्रश्न ३४—मुझ निज आत्मा का स्वद्रव्य-परद्रव्य क्या-क्या है, जिसके जानने-मानने से चारो गतियो का अभाव हो जावे ?

उत्तर—(१) स्वद्रव्य अर्थात निर्विकल्प मात्र वस्तु परद्रव्य अर्थात सविकल्प भेद कल्पना, (२) स्वक्षेत्र अर्थात आधार मात्र वस्तु का प्रदेश, पर क्षेत्र अर्थात प्रदेशो मे भेद पडना (३) स्वकाल अर्थात वस्तुमात्र की मूल अवस्था, परकाल अर्थात एक समय की पर्याय, (४) स्वभाव अर्थात वस्तु के मूल की सहज शक्ति, परभाव अर्थात गुणभेद करना। [समयसार कलश २५२]

प्रश्न ३५—किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी बन सकता है और किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं बन सकता ?

उत्तर—देखो। तत्त्व विचार की महिमा। तत्त्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रो का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तत्पश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नही और

तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।
[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६०]

प्रश्न ३६ –जीव का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर –जीव का कर्तव्य तो तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है इसी से दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव होता है उसमे (दर्शनमोह के उपशम मे) जीव का कर्त्तव्य कुछ नही है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१४]

प्रश्न ३७—जिनधर्म की परिपाटी क्या है ?

उत्तर—जिनमत मे तो ऐसी परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व होता है फिर व्रतादि होते है। सम्यक्त्व तो स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है, तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्य-गुण पर्याय का अभ्यास करके सम्यग्दृष्टि वनना प्रत्येक भव्य जीव का परम कर्तव्य है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २९३]

प्रश्न ३८—किन-किन ग्रन्थों का अभ्यास करे तो एक भूतार्थ स्वभाव का आश्रय बन सके ?

उत्तर –मोक्षमार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भागो का सूक्ष्मरीति से अभ्यास करें तो भूतार्थ स्वभाव का आश्रय लेना बने।

प्रश्न ३९—मोक्ष मार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला मे क्या-क्या विषय बताया है ?

उत्तर – छह द्रव्य, सात तत्त्व, छह सामान्य गुण, चार अभाव, छह कारक, द्रव्य-गुण पर्याय की स्वतन्त्रता, उपादान-उपादेय, निमित्त नैमित्तिक, योग्यता, निमित्त, समयसार सौवी गाथा के चार वोल, औपशमकादि पाच भाव, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप तथा प्रगट करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप तथा एक निज भूतार्थ के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति हो सकती है, आदि विषयो का सूक्ष्म

रीति से वर्णन किया है ताकि जीव निज स्वभाव का आश्रय लेकर मोक्ष का पथिक बने।

प्रश्न ४०—क्या जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग आपने बनाये हैं ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग तो आहार वर्गणा का कार्य है। व्यवहारनय से निरूपण किया जाता है कि मैंने बनाये हैं। अरे भाई। चारो अनुयोगो के ग्रन्थो मे से परमागम का मूल निकालकर थोडे मे सग्रह कर दिया है। ताकि पात्र भव्य जीव सुगमता से धर्म की प्राप्ति के योग्य हो सके। इन सात भागो का एक मात्र उद्देश्य मिथ्यात्वादि का अभाव करके सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रमश मोक्ष का पथिक बनना ही है। भवदीय

कैलाश चन्द्र जैन

बन्ध और मोक्ष के कारण

परद्रव्य का चिन्तन ही बन्ध का कारण है और केवल विशुद्ध स्वद्रव्य का चिन्तन ही मोक्ष का कारण है।

[तत्वज्ञानतरगिणी १५-१६]

सम्यक्त्वी सर्वत्र सुखी

सम्यग्दर्शन सहित जीव का नरकवास भी श्रेष्ठ है, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित जीव का स्वर्ग मे रहना भी शोभा नहीं देता; क्योकि आत्मज्ञान बिना स्वर्ग मे भी वह दुःखी है। जहाँ आत्मज्ञान है वही सच्चा सुख है।

[सारसमुच्चय-३९]

जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला

पाँचवाँ भाग

आत्मस्तवन ४७ शक्तियो रूप मंगलाचरण

जीव है अनन्ती शक्ति सम्पन्न राग से वह भिन्न है,
उस जीव को लक्षित कराने 'ज्ञानमात्र' वदन्त है ॥१॥
एक ज्ञानमात्र ही भाव मे शक्ति अनन्ती उल्लसे,
यह कथन है उन शक्ति का भवि जीव जानो प्रेम से ॥२॥
'जीवत्व'[1] से जीवे सदा जीव चेतता 'चिति'[2] शक्ति से,
'दृशि'[3] शक्ति से देखे सभी अरु जानता वह 'ज्ञान'[4] से ॥३॥
आकुल नहिं 'सुख'[5] शक्ति से निज को रचे निज 'वीर्य'[6] से,
'प्रभुत्व'[7] से वह शोभता व्यापक है 'विभु'[8] शक्ति से ॥४॥
सामान्य देखे विश्व को यह 'सर्वदर्शि'[9] शक्ति है,
जाने विशेषे विश्व को 'सर्वज्ञता,[10] की शक्ति है ॥५॥
जहँ दीसता है विश्व सारा शक्ति यह 'स्वच्छत्व'[11] की,
है स्पष्ट स्वानुभव मयी यह शक्ति जान 'प्रकाश'[12] की ॥६॥
विकाश मे सकोच नही'[13] यह शक्ति तेरवी जानना,
नहिं कार्य-कारण'[14] कोई का है भाव ऐसा आत्म का ॥७॥
जो ज्ञेय का ज्ञाता बने अरु ज्ञेय होता ज्ञान मे,
उस शक्ति को 'परिणम्य-परिणामक'[15] कहा है शास्त्र मे ॥८॥
'नही त्याग-नही ग्रहण'[16] वस । निज स्वरूप मे जो स्थित है,
स्वरूपे प्रतिष्ठित जीव की शक्ति 'अगुरूलघुत्व'[17] है ॥९॥
'उत्पाद व्यय-ध्रुव'[18] शक्ति से जीव क्रम-अक्रम वृत्ति धरे,
है सत्पना 'परिणाम शक्ति'[19] नही फिरे तीन काल मे ॥१०॥

नही स्पर्श जाणो जीव मे आत्म प्रदेश 'अमूर्त'[20] है,
कर्ता नही पर भाव का ऐसी 'अकर्तृत्व'[21] शक्ति है ॥११॥
भोक्ता नही पर भाव का ऐसी 'अभोक्तृत्व'[22] शक्ति है,
'निष्क्रियता'[23] रूप शक्ति से आत्म प्रदेश निस्पद है ॥१२॥
असख्य निज अवयव घेरें 'नियत प्रदेशी'[24] आत्म है,
जीव देह मे नही व्यापता 'स्वधर्म-व्यापक'[25] शक्ति है ॥१३॥
'स्व-परमे जो सम अरू विपम तथा जो मिश्र है'[26],
त्रयविध ऐसे धर्म को निज शक्ति से आत्मा धरे ॥१४॥
जीव अनन्त भावो धारता 'अनन्त धर्म की'[27] शक्ति से,
तत्-अतत् दोनो भाव वरते 'विरुद्ध धर्म'[28] की शक्ति से ॥१५॥
जो ज्ञान का तद्रूप-भवन सो 'तत्त्व'[29] नामक शक्ति है,
जीव मे अतद्रूप परिणमन जानो 'अतत्त्व'[30] की शक्ति से ॥१६॥
वहु पर्ययो मे व्यापता एक द्रव्यता को नहि तजे,
निज स्वरूप की 'एकत्व'[31] शक्ति जान जीव शान्ति लहे ॥१७॥
जीव द्रव्य से है एक फिर भी 'अनेक'[32] पर्यय रूप वने,
स्व पर्ययो मे व्याप कर, जीव सुखी ज्ञानी सिद्ध वने ॥१८॥
है 'भावशक्ति'[33] जीव की सत्रूप अवस्था वर्तती,
फिर असत् रूप है पर्ययो 'अभाव शक्ति'[34] जीव की ॥१९॥
'भाव का होता अभाव'[35] 'अभाव का फिर भाव'[36] रे,
ये शक्ति दोनो साथ रहती, ज्ञान मे तू जान ले ॥२०॥
जो 'भाव रहता भाव'[37] ही 'अभाव नित्य अभाव'[38] है,
स्वभाव ऐसा जीव का निजगुण से भरपूर है ॥२१॥
नहि कारको को अनुसरे ऐसा ही 'भवता भाव'[39] है,
जो कारको को अनुसरे सो 'क्रिया'[40] नामक शक्ति है ॥२२॥
है 'कर्म शक्ति'[41] आत्म मे वह धारता सिद्ध भाव को,
फिर 'कर्तृत्व शक्ति'[42] से स्वय वन जाते भावकरूप जो ॥२३॥

है ज्ञानरूप जो शुद्धभावो उनका जो भवन है;
आत्मा स्वय उन भावो का उत्कृष्ट साधन होत है ॥२४॥
निज 'करण-शक्ति'[43] जानरे तू बाह्य साधन शोध ना;
आत्मा ही तेरा करण है फिर बात दूसरी पूछ ना ॥२५॥
निज आत्मा निज आत्म को ही ज्ञान भाव जो देत है,
उसका ग्रहण है आत्म को यह 'सप्रदान'[44] स्वभाव है ॥२६॥
उत्पाद-व्यय से क्षणिक है पर ध्रुव की हानि नही,
सेवो सदा सामर्थ्य ऐमे 'अपादान'[45] का आत्म मे ॥२७॥
भाव्यरूप जो ज्ञान भावो परिणमे है आत्म मे,
'अधिकरण'[46] उनका आत्म है सुन लो अहो जिन वचन मे ॥२८॥
है 'स्व अरू स्वामित्व'[47] मेरा मात्र निज स्वभाव मे'
नही स्वत्व मेरा है कभी निज भाव से को अन्य मे ॥२९॥
अनेकान्त है जयवन्त अहो ! निज शक्ति को प्रकाशता,
शक्ति अनन्ती मेरी वह मुझ ज्ञान मे ही दिखावता ॥३०॥
यह ज्ञान लक्षण भाव सह भावो अनन्ते उल्लसे,
अनुभव करूँ उनका अहो ! विभाव कोई नही दिसे ॥३१॥
जिन मार्ग पाया मैं अहो ! श्री गुरु वचन प्रसाद से,
देखा अहा निजरूप चेतन पार जो पर भाव से ॥३२॥
निज विभव को देखा अहो ! श्री समयसार प्रसाद से,
निज शक्ति का वैभव अहो ! यह पार है पर भाव से ॥३३॥
ज्ञान मात्र ही एक ज्ञायक पिण्ड हू मैं आतमा,
अनन्त गम्भीरता भरी मुझ आत्म ही परमात्मा ॥३४॥
आश्चर्य अद्भूत होत है निज विभव की पहचान से,
आनन्दमय आह्लाद ऊछले मुहूर् मुहूर् ध्यान से ॥३५॥
अद्भुत अहो ! अद्भूत अहो ! है विजयवन्त स्वभाव यह,
जयवन्त है मुझ गुरु देवने निज निधान बता दिया ॥३६॥

प्रथम प्रकरण

समयसार का प्रथम कलश का रहस्य

प्रश्न १—श्री समयसार का पहला कलश क्या है ?

उत्तर—नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ॥१॥

प्रश्न २—'नमः समयसाराय' का क्या भावार्थ है ?

उत्तर—'समय" अर्थात् मेरी आत्मा-जो द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहित है। उस (आत्मा) की ओर दृष्टि होना यह 'नम समयसाराय' का भावार्थ है।

प्रश्न ३—'समय' शब्द के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—'समय' शब्द के अनेक अर्थ है, (१) आत्मा का नाम समय है। (२) सर्व पदार्थ का नाम समय है। (३) काल का नाम समय है। (४) शास्त्र का नाम समय है। (५) समयमात्र काल का नाम समय है। (६) मत का नाम समय है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २९७]

प्रश्न ४—'समय' शब्द का अर्थ आपने आत्मा कैसे कर दिया है ?

उत्तर—'सम्' उपसर्ग है, 'सम्' का अर्थ एक साथ है। अय् गतौ धातु है 'अय्' का अर्थ गमन और ज्ञान भी है इसलिए एक ही साथ जानना और परिणमन करना, यह दोनो क्रियाये जिसमे हो वह समय है, इस अपेक्षा भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समय का अर्थ आत्मा किया है।

प्रश्न ५—'नमः समयसाराय' मे अपनी आत्मा को ही क्यो नमस्कार किया है औरो को क्यो नहीं ?

उत्तर—समयसार अर्थात् शुद्धजीव ही परमार्थ से नमस्कार करने योग्य है दूसरा नही है।

प्रश्न ६—किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ?

उत्तर—परमार्थत इष्टदेव का सामान्यस्वरूप सर्व कर्म रहित, सर्वज्ञ, वीतराग शुद्ध आत्मा ही है इसलिए आत्म को ही सारपना घटता है।

प्रश्न ७—शुद्ध जीव के ही सारपना घटता है—यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर—सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुःख जानना। कारण की अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल के और ससारी जीव के सुख नही, ज्ञान नही और उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीवको भी सुख नही, ज्ञान भी नही। शुद्ध जीव के सुख है, ज्ञान भी है। उनको जानने पर—अनुभव करने पर—जानने वाले को सुख है, ज्ञान भी है। इसलिए ज्ञानियो को ही सारपना घटता है। [कलश टीका पहला कलश]

प्रश्न ८—ज्ञानियो को ही सारपना घटता है ऐसा कहीं छहढाला मे कहा है ?

उत्तर—तीन भुवन मे सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकै ॥१॥
आतम को हित है सुख, सों सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माँहि न तातै, शिवमग लाग्यो चहिए।२।

प्रश्न ९—'नमः' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—नमना, झुकना अर्थात् अपनी ओर लीन होना यह 'नम' का अर्थ है।

प्रश्न १०—नमस्कार कितने हैं ?

उत्तर—पाँच है, (१) शक्तिरूप नमस्कार। (५) एकदेश भाव-

नमस्कार। (३) द्रव्य नमस्कार। (४) जडनमस्कार। (५) पूर्ण भाव नमस्कार।

प्रश्न ११—इन पांच नमस्कारो को समझाइये ?

उत्तर—अनन्त गुणो का अभेद पिण्डरूप ज्ञायक भाव वह शक्तिरूप नमस्कार है। शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय लेने से प्रथम एकदेश भाव नमस्कार की प्राप्ति होती है। और अपने शक्तिरूप नमस्कार का पूर्ण आश्रय लेने से पर्यायो मे पूर्ण भाव नमस्कार की प्राप्ति होती है। यह ज्ञानियो को ही होता है। ज्ञानियो को अपनी-अपनी भूमिका अनुसार जो वीतराग-सर्वज्ञ आदि के प्रति बहुमान का राग आता है वह द्रव्य नमस्कार है। शरीर की क्रिया द्वारा जो नमस्कार होता है वह जड नमस्कार है। द्रव्य नमस्कार और जड़ नमस्कार का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्रश्न १२—इन पाँच नमस्कारो में हेय, ज्ञेय, उपादेय किस-किस प्रकार हैं ?

उत्तर—"शक्तिरूप नमस्कार—आश्रय करने योग्य उपादेय। (२) एक देश भाव नमस्कार—एकदेश प्रकट करने योग्य उपादेय। (३) द्रव्य नमस्कार—हेय। (४) जड नमस्कार—ज्ञेय। (५) पूर्ण भाव नमस्कार—पूर्ण प्रकट करने योग्य उपादेय।

प्रश्न १३—इन पाँच नमस्कारो से क्या सिद्ध हुआ।

उत्तर—(१) "शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय लेने से एकदेश भाव नमस्कार की प्राप्ति होती है। (२) एकदेश भाव नमस्कार की प्राप्ति होने पर द्रव्य नमस्कार पर उपचार का आरोप आता है। तभी निमित्त का निमित्त जड नमस्कार कहा जाता है। (३) परिपूर्ण शक्तिरूप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने पर ही पूर्ण भाव नमस्कार प्राप्त होता है। पर या विकारी भावो के आश्रय से मात्र ससार परिभ्रमण ही रहता है।

प्रश्न १४—'सार' शब्द का अस्ति और नास्ति से अर्थ करके नौ पदार्थ लगाओ ?

उत्तर—'सार' शब्द का नास्ति से अर्थ द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहित है। द्रव्यकर्म और नोकर्म मे अजीव तत्त्व आ गया। और भावकर्म मे आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप आ गये। सार का अर्थ अस्ति से परमसार जीव है। एकदेशसार सवर-निर्जरा हैं। पूर्णसार मोक्ष है। इस प्रकार नौ पदार्थ आ गये।

प्रश्न १५—अपनी आत्मा को सार करने से क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर—वीतराग-विज्ञानता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १६—अजीव को सार करने से क्या होता है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद मे चला जाता है।

प्रश्न १७ असार क्या है और सार क्या है ?

उत्तर—नौ प्रकार का पक्ष असार है। एकमात्र अपनी आत्मा ही सार है। उसको सार करने से धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न १८—प च प्रकार के नमस्कारो पर नौ पदार्थ लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—शक्तिरूप नमस्कार मे जीवतत्त्व आया। एकदेश भाव नमस्कार मे सवर-निर्जरा तत्त्व आये। द्रव्य नमस्कार मे आस्रव-बन्ध पुण्य-पाप आये। जड नमस्कार मे अजीवतत्त्व आया। पूर्णभाव नमस्कार मे मोक्षतत्त्व आया। अपने जीव का आश्रय ले, तो सवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो। अजीव और आस्रव-बन्ध से भला-बुरा माने, तो चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद की प्राप्ति हो।

प्रश्न १९—पाँच प्रकार के नमस्कारो पर चार काल लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २०—पाँच प्रकार के नमस्कारो पर औपशमादि पाँच भाव

लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २१—पाँच प्रकार के नमस्कारों पर संयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २२—पाँच प्रकार के नमस्कारो पर देव-गुरु-धर्म लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २३—पाँच प्रकार के नमस्कारों पर सुखदायक-दुःखदायक लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २४—पाँच प्रकार के नमस्कारो पर हेय-उपादय-ज्ञेय लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २५—पाँच प्रकार के नमस्कारो पर संयोग की पृथक्तादि तीन बोल लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा। यह भी बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १८ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न २६—"चित्स्वभावाय-भावाय" का क्या भावार्थ है ?

उत्तर—(१) 'भावाय' अर्थात् त्रिकाली द्रव्य यह मेरी सत्ता है। पर द्रव्यो की सत्ता से मेरा किसी भी प्रकार का कर्ता-कर्म भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध नही है। ऐसा अनुभव-ज्ञान होते ही धर्मदशा प्रगट होना यह भावाय को जानने का लाभ है (२) 'चित्स्वभावाय' से मेरी

आत्मा का सम्बन्ध ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणो से है। नौ प्रकार के पक्षो से मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। इसलिए ज्ञान—दर्शन से आत्मा की पहिचान कराई है।

प्रश्न २७—'चित्स्वभावाय-भावाय मे द्रव्य-गुण क्या-क्या हैं ?

उत्तर—'चित्स्वभावाय' गुण को बताता है और 'भावाय द्रव्य' को बताता है।

प्रश्न २८—जैसे—इस प्रथम कलश मे ज्ञान-दर्शन से जीव की पहिचान कराई है। ऐसी पहिचान और कहीं, किसी जगह, किसी शास्त्र में कराई है ?

उत्तर—(१) समयसार गा० २४ मे 'सर्वज्ञ ज्ञान विषै सदा, उपयोग लक्षण जीव है।' (२) मोक्षशास्त्र मे "उपयोगो लक्षणम्" कहा है। (३) छहढाला मे "चेतनको है उपयोगरूप" ऐसा कहा है। (४) द्रव्यसग्रह मे "सुद्धणया सुद्ध पुण दसण णाण" कहा है (५) समयसार गा० ३८ मे "मैं एक शुद्ध सदा अरुपि, ज्ञान दृग हू यथार्थ से" ऐसा बताया है।

प्रश्न २९—सब अनुयोगो मे जीव का लक्षण ज्ञान-दर्शन क्यों बताया है ?

उत्तर—मैं पर द्रव्यो को, शरीरादि को हिला-डुला सकता हू। ऐसी खोटी मान्यता का अभाव करने के लिए ज्ञान-दर्शन जीव का लक्षण बताया है। क्योकि नित्य उपयोग लक्षण वाला जीव द्रव्य कभी पर-द्रव्यो रूप तथा शरीरादिरूप होता हुआ देखने मे नही आता है।

प्रश्न ३०—"स्वानुभूत्या चकासते' का क्या भावार्थ है ?

उत्तर—अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशित है अर्थात् अपने से ही जानता है, प्रगट करता है। एकमात्र अपने चित्स्वभावाय पर दृष्टि करते ही शान्ति की प्राप्ति होती है। यह तात्पर्य है।

प्रश्न ३१—'स्वानुभूत्या चकासते' के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं ?

उत्तर—निराकुलता; शुद्धात्मपरिणमन, अतीन्द्रिय सुख, सवर-निर्जरा; स्वभाव के साधन आदि कहो, स्वानुभति कहो, एक ही बात है।

प्रश्न ३२—'सर्व भावान्तरच्छिदे' का भावार्थ क्या है?

उत्तर—भगवान आत्मा सर्व जीव और अजीवो को भूत-भविष्य—वर्तमान पर्याय सहित एक समय मे एक साथ जानता है। करने वाला भोगने वाला नही है। ऐसा जाने-माने तो अनन्त ससार का अभाव हो।

प्रश्न ३३—"सर्व भावान्तरच्छिदे से क्या सिद्ध हुआ?

उत्तर—हे आत्मा! तू एक समय मे लोकालोक को जानने-देखने के स्वभाव वाला है। ऐसी तेरी अपूर्व महिमा है। इससे क्रमवद्ध पर्याय की सिद्धि होती है। क्रमवद्ध को मानते ही चारो गतियो का अभाव रूप पचमगतिका पात्र वन जाता है।

प्रश्न ३४—आत्मा का अनुभव होते ही क्या होता?

उत्तर—जैसे—एक रत्ती सोने की पहिचान होते ही विश्व के सम्पूर्ण सोने की पहिचान हो जाती है, उसी प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव होते ही सिद्ध क्या करते हैं सिद्धदशा क्या है। अरहत क्या करते है, अरहतदशा क्या है। मुनि क्या करते है, मुनिदशा क्या है। श्रावक क्या करते है; श्रावकदशा क्या है। और अनादिसे निगोद से लगा कर द्रव्यलिगी मिथ्यादृष्टि क्या करते है, मिथ्यादृष्टिपना क्या है आदि सब वातो का एक समय मे ही ज्ञान हो जाता है। केवली के ज्ञान मे और साधक के ज्ञान मे जानने मे अन्तर नही है। मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही भेद है। इसलिए हे भव्य! तू एक बार अपनी ओर दृष्टि करके देख, फिर क्या होता है। यह किसी से पूछना नही पड़ेगा क्योकि आत्मानुभव का ऐसा ही अलौकिक चमत्कार है।

प्रश्न ३५—स्वानुभूत्या चकासते, चित्स्वभावाय भावाय, और सर्व भावान्तरच्छिदे पर ९ पदार्थ लगाकर बताओ और लाभ-नुकसान भी बताओ?

उत्तर—(१) स्वानुभूत्या चकासते—संवर-निर्जरा। (२) स्वानुभूत्या चकासते से विरुद्ध—आस्रव-बंध, पुण्य-पाप। (३) चित्स्वभावाय भावाय—जीव। (४) चित्स्वभावाय भावाय से विरुद्ध—अजीव। (५) सर्वभावान्तरच्छिदे—मोक्ष। चित्स्वभावाय भावाय का आश्रय लेवे, तो स्वानुभूत्या चकासते की प्राप्ति होकर सर्व भावातरच्छिदे रूप बन जावे। चित्स्वभावाय भावाय से विरुद्ध अजीव का आधार माने, तो स्वानुभूत्या चकासते के विरुद्ध की प्राप्ति होकर चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद की प्राप्ति करेगा।

प्रश्न ३६—स्वानुभूत्या चकासते, चित्स्वभावाय भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे पर ५ नमस्कार लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाओ ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ३७—स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे, पर चार काल लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाइये ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ३८—स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे, पर औपशमादि पाँच भाव लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाइये ?

रत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ३९—स्वानुभुत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे, पर संयोगादि पाँच बोल लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाइये ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)।

प्रश्न ४०—स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्व भावान्तरच्छिदे, पर देव-गुरु-धर्म को लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाइये ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४१—स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे, पर सुखदायक-दुःखदायक लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाइए ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४२—स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे, पर हेय-उपादेय-ज्ञेय को लगाकर तथा लाभ-नुकसान समझाइये ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४३—स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्व भावान्तरच्छिदे पर संयोग की पृथक्तादि तीन बोल लगाकर तथा लाभ नुकसान समझाइये ?

उत्तर—(प्रश्न ३५ के अनुसार उत्तर दो)

प्रश्न ४४—भगवान ने अनेक बोलो से भगवान आत्मा की महिमा बताई है। हमे अपनी महिमा क्यो नहीं आती है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद मे जाना अच्छा लगता है। इसलिए अपने भगवान आत्मा की महिमा नही आती है।

प्रश्न ४५—निज भगवान आत्मा की महिमा कैसे आवे ?

उत्तर—(१) जीव अनन्त है। (२) जीव से अनन्तगुणा अधिक पुद्गल द्रव्य हैं। (३) पुद्गल द्रव्य से अनन्तगुणा, अधिक तीन काल के समय है। (४) तीन काल के समयो से अनन्तगुणा अधिक आकाश के प्रदेश हैं। (५) आकाश के प्रदेशो से अनन्तगुणा अधिक एक द्रव्य मे गुण है। (६) एक द्रव्य के गुणो से अनन्तगुणा अधिक सब द्रव्यो के गुण है। (७) सब द्रव्यो के गुणो से अनन्तगुणा अधिक सब गुणो की पर्यायें हैं। (८) सब द्रव्यो की पर्यायो से अनन्तगुणा अधिक अविभाग प्रतिच्छेद हैं। विश्व मे मात्र आठ नम्बर तक ही ज्ञेय है। (९) अब विचारो! अपनी आत्मा मे आकाश के प्रदेशो से अनन्तगुणा अधिक

गुण हैं। आत्मा मे ज्ञान नाम का एकगुण है। उसकी केवलज्ञान रूप एक पर्याय है। उसमे आठ नम्बर तक जो ज्ञेय है, वह एक समय मे ज्ञेय रूप से जाना जाता है। ऐसी ताकत केवलज्ञान की एक पर्याय मे है। यदि ऐसे-ऐसे अनन्त विश्व हो, तो भी वे मेरे केवलज्ञान की पर्याय मे ज्ञेय हो सकते है। एक समय की पर्याय की कितनी ताकत है और केवलज्ञान, केवलज्ञान ऐसी अनन्त पर्यायें हैं। (१०) जब केवलज्ञान की इतनी ताकत है। तो जिसमे से केवलज्ञान आता है उस ज्ञान गुण के ताकत की मर्यादा का क्या कहना है, अमर्यादित ताकत है। (११) ज्ञान गुण जैसे अनन्तगुण मेरे मे हैं। मैं उन अनन्त गुणो का स्वामी हूं ऐसी अपनी महिमा समझ मे आ जावे, तो जो अनादि से नौ प्रकार के पक्षो की महिमा है। उसका अभाव होकर धर्म की शुरूआत होकर वृद्धि होकर निर्वाण का पथिक बने।

प्रश्न ४६—नौ प्रकार का पक्ष कौन-कौन सा है ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों का पक्ष (२) आख-नाक कान आदि औदारिक शरीर का पक्ष (३) तैजस-कार्माणशरीर का पक्ष (४) भाषा और मनका पक्ष (५) शुभाशुभविकारी भावो का पक्ष (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष (७) भेदनय का पक्ष (८) अभेदनय का पक्ष (९) भेदाभेद नय का पक्ष।

प्रश्न ४७—नौ प्रकार के पक्ष को स्पष्ट रूप से समझाइये ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग ३ के पहले पाठ से देखिएगा।

सम्यक्त्व की दुर्लभता

काल अनादि है, जीव भी अनादि है और भव-समुद्र भी अनादि है; परन्तु अनादिकाल से भव-समुद्र मे गोते खाते हुए इस जीव ने दो वस्तुयें कभी प्राप्त नहीं की—एक तो श्री जिनवर देव और दूसरा सम्यक्त्व। [परमात्म-प्रकाश]

द्वितीय प्रकरण

गोम्मट्ट सार जीव काण्ड कर्मकाण्ड का रहस्य

"जैसी मति वैसी गति, जैसी गति वैसी मति"

प्रश्न १—भविष्य की आयु बध का चित्रामण किसके हाथ मे है ?

उत्तर—अरे भाई तेरे हाथ मे है। यदि बध समय जीव चेते और उदय समय उस पर दृष्टि ना दे तो कल्याण हो जावे।

प्रश्न २—पर्याय में कोई निगोदिया है; कोई साँप हैं; कोई गधा है, कोई कुत्ता है; कोई मेढक है; कोई बकरा है; ऐसा क्यो है ?

उत्तर—जैसा-जैसा कार्य होता है उसका वैसा का वैसा निमित्त कारण भी होता है। जैसे—किसी जीव ने पहिले भव मे फु-फाँ का भाव किया, तो वर्तमान मे साँप का निमित्त कारण मिला। उसी प्रकार सब जानना।

प्रश्न ३—समयसार कलश १६८ मे श्री राजमलजी ने इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा सक्लेशरूप परिणाम के द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयु-कर्म अथवा साता कर्म अथवा असाताकर्म, उस कर्म के उदय से उस जीव को मरण अथवा जीवन अथवा दु.ख अथवा सुख होता है ऐसा निश्चय है। इस बात मे धोखा कुछ नही।

प्रश्न ४—भविष्य की आयु का बंध कब और कैसे होता है ?

उत्तर—मनुष्या के लिए यह नियम है कि जितनी भोगने वाली आयु की स्थिति होगी उसके दो तिहाई बीत जाने पर पहली दफे अन्तर्मुहूर्त के लिए आगामी भव का आयु बध होता है। फिर दो

तिहाई बीतने पर दूसरी दफे, फिर दो तिहाई बीतने पर तीसरी दफे, इस तरह दो तिहाई समय के पीछे आठ दफे ऐसा अवसर आता है। यदि इनमे भी नही बधे, तो मरने के अन्तर्मुहूर्त पहले तो आयु बधती ही है। यदि अपने परिणाम मे कुछ सुधार-बिगाड हो जावे तो पहली बधी हुई आयु की स्थिति कम व अधिक हो सकती है। जैसे—किसी की आयु ८१ वर्ष की है तो—(१) ५४ वर्ष बीतने पर=२७ वर्ष शेष रहने पर, (२) ७२ वर्ष बीतने पर=९ वर्ष शेष रहने पर, (३) ७८ वर्ष बीतने पर=३ वर्ष शेष रहने पर, (४) ८० वर्ष बीतने पर=१ वर्ष शेष रहने पर, (५) ८० वर्ष ८ मास बीतने पर=४ मास शेष रहने पर; (६) ८० वर्ष १० मास, २० दिन बीतने पर=४० दिन शेष रहने पर, (७) ८० वर्ष, ११ मास, १६ दिन १६ घटे बीतने पर=१३ दिन ८ घण्टे शेष रहने पर, (८) ८० वर्ष ११ मास, २५ दिन १३ घण्टे २० मिनट बीतने पर= ४ दिन १० घण्टे, ४० मिनट शेष रहने पर आयु का बध होता है।

प्रश्न ५—आठ त्रिभागों में से एक त्रिभाग में ही बंध क्यों होता है बाकी विभागो में आयु का बंध क्यों नही होता है ?

उत्तर—गोमट्टसार जीव काण्ड गाथा ५१८ मे लिखा है कि आयु का बध मध्यम परिणामो से होता है। उत्कृष्ट-जघन्य परिणामो से आयु का बध नही होता है। अत आयुबध के त्रिभागों के समय में उत्कृष्ट-जघन्य परिणाम होने से आयु का बध नही होता है। ऐसा जानना।

प्रश्न ६—एक भव कितने समय का है ?

उत्तर—अरे भाई! वास्तव मे एक-एक समय का एक-एक भव है।

प्रश्न ७—एक-एक समयका एक-एक भव है। यह कहाँ लिखा है और एक-एक समय का भव किस प्रकार है ?

उत्तर—भगवान कुन्दकुन्द स्वामी ने भावपाहुड गाथा ३२ की टीका मे अवीचिकामरण के लिये लिखा है कि "आयुकर्म का उदय

समय-समय में घटता है। वह समय-समय मे मरण है यह आवीचिका मरण है।" देखो इसमे बताया है, समय-समय का मरण होता है, क्योकि पर्याय की स्थिति एक समय की होती है। सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा एक-एक समय का एक-एक भव है। जिस समय जो जीव जो भाव करता है उस समय वह वही है। इसलिये कहा है "जैसी मति, वैसी गति" और आयु पूर्ण होने के समय "जैसी गति, वैसी मति" हो जाती है।

प्रश्न ८—"जैसी मति, वैसी गति और जसी गति वैसी मति" के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर—यदि कोई गति धारण न करनी हो, तो अनादिअनन्त ज्ञायक स्वभावी तेरी आत्मा है। उसका आश्रय लेकर इनका अभाव करना ही प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न ९—क्या मनुष्यभव होने पर 'साँप' कहला सकता है ?

उत्तर—मनुष्य भव होने पर जैसे हमारे घर मे बहुत से आदमी हैं। यदि हम फूं फाँ ना करे तो वह सब बिगड जावे। ऐसा मानकर जो फूं फाँ करता है। वह उस समय मनुष्यभव होने पर भी वह साँप ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। फूं फाँ करते समय यदि आयु का बध हो गया तो साँप की योनि मे जाना पडगा, जहाँ निरन्तर फूं फाँ मे ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न १०—कोई कहे अरे भाई हमे साँप नहीं बनना है, क्यो कि साँप की योनि बहुत बुरी हैं। तो वह क्या करे ?

उत्तर—फूं फाँ रहित आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो भगवान के समान ज्ञाता-ज्ञेय बुद्धि प्रगट हो जावे और ससार के सम्पूर्ण दु ख का अभाव हो जावे।

प्रश्न ११—स्वभाव का आश्रय लेना किस प्रकार बने ?

उत्तर—"अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है। कोई किसी के आधीन नहीं है। कोई

किसी के परिणमित कराने से परिणमित नही होती है।" ऐसा जाने-श्रद्धान करे तो तुरन्त दृष्टि अपने ज्ञायक स्वभाव पर आ जाती है। लानी पडती नही है क्योकि यह कार्य सहजरूप है।

प्रश्न १२—क्या मनुष्य भव होने पर 'गधा' कहला सकता है ?

उत्तर—मनुष्यभव होने पर जैसे हमारे घर मे बहुत आदमी है। वे फूं फॉ से ता मानते नहो है। उसके वदले उन्हे लातो से मारे चिल्लाये। तो वह उस समय मनुष्यभव होने पर 'गधा' ही है, क्योकि "जैसी मति वैसो गति" होती है। दुलत्ती चलाने के भाव के समय यदि आयु का बन्ध हो गया तो गधे की योनि मे जाना पड़ेगा। जहाँ निरन्तर दुलत्ती चलाना और भौकने मे ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न १३—कोई कहे, अरे भाई हमे गधा नही बनना है; क्योकि गधे की योनि बहुत बुरी है, तो वह क्या करे ?

उत्तर - दुलत्ती चलाने और भौकने के भाव रहित अपनी आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो गधा नही वनना पडेगा। बल्कि मोक्षरूपीलक्ष्मी का नाथ वन जावेगा और ससार के मिथ्यात्व, अविरात प्रमाद, कपाय और योग पाँच ससार के कारणो का अभाव हो जावेगा। इसलिये हे भव्य ! तू दुलत्ती और भौकने रहित अपने ज्ञायक भगवान का आश्रय ले, तो भगवान के समान ज्ञाता-दृष्टि वुद्धि प्रगट हो जावे और ससार के सम्पूर्ण दु ख का अभाव हो जावे।

प्रश्न १४ - क्या मनुष्यभव होने पर "कुत्ता" कहला सकता है ?

उत्तर—(अ) जैसे कुत्ता हड्डी मे से खून निकलता है, ऐसा मान कर उसीमे आसक्त रहता है, उसी प्रकार जो जीव मनुष्यभव पाने पर पाँच इन्द्रियो के विषयो मे सुख है। ऐसा मानकर उसी मे आसक्त रहता है। वह उस समय कुत्ता ही है क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। पाँच इन्द्रियो की आसक्ति के समय यदि आयुका बन्ध हो गया तो "कुत्ता" की योनि मे जाना पडेगा जहाँ निरन्तर विषयो की आसक्ति मे ही पागल बना रहेगा। (आ) जैसे कुत्ता वगैर बात के

भौंकता ही रहता है उसी प्रकार मनुष्य भव प्राप्त होने पर जो जीव भौंकता ही रहता है। वह उस समय कुत्ता ही है क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है भौंकने के भाव के समय यदि आयु का वन्ध हो गया तो "कुत्ता की योनि में जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर चौवीस घण्टे मे "भौं भौं मे ही जीवन वीतेगा।

प्रश्न १५—कोई कहे अरे भाई कुत्ता की योनि तो वहुत खराब है, हमको कुत्ता न वनने पडे। उसका क्या उपाय है ?

उत्तर—विषयो की आसक्ति के भाव से रहित, और "भौ भौं" के भावो से रहित अपना त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो 'कुत्ता' नही वनना पडेगा। वल्कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ऐसे पच परावर्तन रूप ससार का अभाव होकर क्रम से सिद्धत्व की प्राप्ति होगी।

प्रश्न १६—क्या मनुष्य भव होने पर 'मेंढ़क' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—मेढक 'टर टर' करता रहता है, उसी प्रकार जो मनुष्य भव पाने पर सव कार्यो से 'टर टर' करता है। वह उस समय 'मेढक' ही है, क्योकि "जैसी मति, वैसी गति" होती है। "टर टर" भाव करने के समय यदि आयु का वन्ध हो गया, तो "मेढक" की योनि मे जाना पडेगा। जहा निरन्तर चौवीसो घण्टे 'टर टर' मे ही जीवन वीतेगा।

प्रश्न १७—कोई कहे अरे भाई हमें मेढ़क नहीं वनना है, क्योकि मेढ़क की योनि अच्छी नही है ?

उत्तर—अरे भाई! "टर टर" रहित अपने त्रिकाली भगवान का स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो मेढक नही वनना पडेगा। वल्कि चारो गतियो का अभाव होकर पचमगति का मालिक वन जावेगा। इसलिए हे भव्य! तू एक वार अपने स्वभाव की दृष्टि कर, फिर देख क्या होता है, किसी से पूछना नही पड़ेगा।

प्रश्न १८—क्या मनुष्य भव होने पर "बकरा" कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे बकरा चौबीस घण्टे "मैं-मैं" करता है, उसी प्रकार जो जीव मनुष्य भव पाने पर "मैं-मैं" करता रहता है। वह उस समय बकरा ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। 'मैं-मैं' भाव के समय यदि आयु का बन्ध हो गया, तो बकरे की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर "मैं-मैं" मे ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न १९—कोई कहे "बकरे" की योनि तो खराब है, जिससे हम बकरा न बने। उसका कोई उपाय है ?

उत्तर—"मैं-मैं" के भाव रहित अपना पारिणामिकभाव है। उसका आश्रय ले, तो बकरा नही बनना पडेगा, बल्कि औदयिकभावो का अभाव होकर औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिक और क्षायिकदशा की प्राप्ति हो जावेगी।

प्रश्न २०—क्या मनुष्य भव होने पर "बिल्ली" कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—बिल्ली को चौबीसो घण्टे चूहो को मारकर खाने का भाव रहता है, उसी प्रकार जो जीव मनुष्यभव होने पर दूसरो को मार कर खाने का भाव रखता है। वह उस समय 'बिल्ली' ही है "जैसी मति वैसी गति" होती है। दूसरो को मारकर खाने के भाव के समय यदि आयुका बन्ध हो गया तो भाई ! बिल्ली की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर चूहो को मारकर खाने के ही भावो मे पागल बना रहेगा।

प्रश्न २१—कोई कहे हमे 'बिल्ली' नहीं बनना है, क्योकि गृद्धि का भाव बहुत बुरा है ?

उत्तर—दूसरो को मारकर खाने के भावरहित अपना ज्ञायक स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो बिल्ली नही बनना पडेगा। बल्कि तेरी गिनती पचपरमेष्टियो मे होने लगेगी।

प्रश्न २२—क्या मनुष्य भव होने पर "निगोदिया" कहला सकता है ?

उत्तर—निगोद के कारण अनेक है। परन्तु उन सब को तीन मे समावेश करते है। ((१) अज्ञान मोह अन्धकार, (२) देव-गुरु-शास्त्र की विराधना, (३) नये-नये भेषो मे अपनेपने की मान्यता।

प्रश्न २३—"अज्ञान मोह अन्धकार" क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उत्तर—आत्मा की क्रिया ज्ञाता-दृष्टा है। इसके वदले मे मै पर जीवो को मारता हूँ, जिलाता हूँ। मैं झूठ बोलता हूँ, मैं सत्य बोलता हूँ। मैं चोरी करता हूँ, मैं चोरी नही करता हूँ। मैं कुशील सेवन करता हूँ, मैं ब्रह्मचर्य से रहता हूँ। मैं परिग्रह रखता हूँ, मै परिग्रह का त्याग करता हूँ ऐसी करोति क्रिया और विकारी क्रिया को अपना मानना यह अज्ञान मोह अन्धकार है। (२) मैं ज्ञायक भगवान हूँ, इसके वदले मे अपने को मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारकी आदिरूप मानना, यह अज्ञान मोह अन्धकार है। (३) आत्मा ज्ञान स्वरूप है इसके वदले मे पर पदार्थों से, ज्ञेय से अपना ज्ञान मानना, यह अज्ञान मोह अन्धकार है।

प्रश्न २४—यह तीनो प्रकार का अज्ञान मोह अन्धकार है। ऐसा कहाँ किन शास्त्रो मे कहा है ?

उत्तर—चारो अनुयोगो मे कहा है। परन्तु समयसार के बन्ध अधिकार गा० २६८ से २७३ तक इसका साक्षी है। तथा १६९वे कलश मे लिखा है कि "मैं देव, मै मनुष्य, मैं तिर्यंच, मैं नारकी, मैं दु खी, मैं सुखी ऐसी कर्म जनित पर्यायो मे है। आत्मबुद्धिरूप जो मग्नपना उसके द्वारा कर्म के उदय से जितनी क्रिया होती है। उसे मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करूँगा ऐसे-ऐसे अज्ञान को लिए मानते हैं। वह जीव कैसे है ? "आत्महन" अपने को घातनशील है। जो जीव मनुष्यभव होने पर ऐसे-ऐसे भाव करता है। वह उस समय तो

निगोदिया है ही, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है और यदि ऐसे भावो के समय आयु का बन्ध हो गया है, तो निगोद मे जाना पडेगा।

प्रश्न २५—देव-गुरु-शास्त्र की विराधना क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उत्तर—एकमात्र अपने त्रिकाल भगवान के आश्रय से ही सम्यक् दर्शन, श्रावक, मुनि-श्रेणी अरहत और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है। किसी परके या विकारीभावो के आश्रय से नही होती है। इसके बदले पर पदार्थों के आश्रय से दया दान, पूजा, अणुव्रत, महाव्रतादि के आश्रय से धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसी मान्यता ही देव-गुरु-शास्त्र की विराधना है। जिसका फल परम्परा निगोद है।

प्रश्न २६—नये नये भेषो मे अपनेपने की मान्यता क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उत्तर—श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ४१ के अर्थ मे श्री सदा-सुखदासजी ने लिखा है कि "मिथ्यादृष्टि परकृत पर्याय मे अपनापना माने है। मिथ्यादृष्टि का आपा जाति मे, कुल देह मे, धन मे, राज्य मे, ऐश्वर्य मे, महल मकान-नगर कुटम्बनि मे है। याकीलार हमारी घटी, हमारी बढी, हमारा सर्वस्व पूरा हुआ, मैं नीचा हुआ, मैं ऊचा हुआ मैं मरा, मैं जिया, हमारा तिरस्कार हुआ, हमारा सर्वस्व गया, इत्यादि परवस्तु मे अपना सकल्प करि महा आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान करि दुर्गति को पाय ससार परिभ्रमण करै है।" यह मान्यता नए-नए भेषो मे अपनेपने की मान्यता निगोद का कारण है। दिगम्बर धर्म धारण करने पर ऐसी मान्यता के समय वह जीव निगोदिया ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। नये-नये भेषो की मान्यता के समय यदि आयु का बन्ध हो गया। तो भाई निगोद मे जाना पडेगा, जहाँ निरन्तर उसमे पागल बना रहेगा।

प्रश्न २७—कोई कहे कि भाई ! निगोद की पर्याय तो बहुत बुरी

है। उसको प्राप्ति हमें ना हो, उसके लिए हम क्या करें ?

उत्तर—(१) अज्ञान मोह अधकार रहित (२) देव-गुरु-शास्त्र की विराधना रहित, (३) नए-नए भेपो मे अपनेपने की मान्यता रहित अनादिअनन्त तेरा स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो निगोद मे नही जाना पडेगा, वल्कि सादिसान्त है जो साधक दशा है। उसकी प्राप्ति होकर सादिअनन्त जो साध्यदशा है उसकी प्राप्ति हो जावेगी।

प्रश्न २८—क्या मनुष्यभव होने पर 'पृथ्वीकाय' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—हम पृथ्वी काय पर चलते हैं दवने से जो दुख का वह अनुभव करता है, लेकिन वह कुछ नही कह सकता है; उसी प्रकार मनुष्य भव होने पर मे सवको दवाऊ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके। ऐसा भाव करता है उस समय वह पृथ्वी काय ही है क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। ऐसे भाव के समय यदि आयु का वध हो गया तो 'पृथ्वीकाय' की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर तुझे सव दवायेगे और तू एक शब्द भी उच्चारण न कर सकेगा।

प्रश्न २९—कोई कहे हमे 'पृथ्वीकाय' न बनना पड़े, उसका क्या उपाय है ?

उत्तर—मैं सवको दवाऊ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके, ऐसे भाव रहित अस्पर्श स्वभावी भगवान आत्मा है। उसका आश्रय ले, तो भगवानपना पर्याय मे प्रकट हो जावेगा।

प्रश्न ३०—क्या मनुष्यभव होने पर 'जलकाय' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—तालाव का पानी ऊपर से देखने पर एक जैसा लगता है। लेकिन कही दो गज का खड्डा है, कही तीन गज का खड्डा है। कही ऊचा है, कही नीचा है; उसी प्रकार मनुष्य भव होने

पर ऊपर से चिकनी चुपडी बाते करता है। अन्दर कपट रखता है। वह जीव उस समय 'जलकाय' ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। ऐसे भाव के समय यदि आयु का वन्ध हो गया तो 'जल-काय' की योनि मे जाना पडेगा।

प्रश्न ३१—कोई कहे हमे 'जलकाय' न बनना पड़े, उसका कोई उपाय है ?

उत्तर—छल कपट रहित तेरी आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो जलकाय की योनि मे नही जाना पडेगा, वलिक मुक्ति-रूपी सुन्दरी का नाथ वन जावेगा।

प्रश्न ३२—क्या मनुष्यभव होने पर 'अग्निकाय' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—रोटी वनाने के वाद तवे को उतारते है। तो तवे मे टिम-टिम की चिगारियाँ दिखाती हैं। लोग कहते हैं कि तवा हँसता है। परन्तु वह वास्तव मे अग्निकाय के जीव हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य भव पाने पर दूसरो को वढता हुआ देखकर ईर्ष्या करता है। उस समय वह जीव 'अग्निकाय' ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि उस समय आयु का वन्ध हो गया तो 'अग्निकाय' की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर जलने में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न ३३—कोई कहे अरे भाई हमे 'अग्निकाय' की योनि मे ना जाना पड़े। ऐसा कोई उपाय है ?

उत्तर—ईर्ष्या रहित त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो अग्निकाय की योनि मे नही जाना पडेगा। बल्कि पर्याय मे तीन लोक का नाथ कहलायेगा।

प्रश्न ३४—क्या मनुष्यभव होने पर 'वायुकाय' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—हवा के झोके कभी तेज कभी मन्द चलते रहते है, स्थिर नही रहते है, उसी प्रकार जो मनुष्य भव पाने पर भी जहाँ

पर जन्म-मरण के अभाव की बात चलती है। उसके बदले अन्य बात का विचार करता है, ऊघता है या अन्य अस्थिरता करता हैं। वह जीव उस समय वायुकाय ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि अस्थिरता के भावो के समय आयु का बध हो गया तो "वायुकाय" की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर अस्थिरता ही बनी रहेगी।

प्रश्न ३५—कोई कहे हमे वायुकाय नहीं बनना है तो हम क्या करें ?

उत्तर—अस्थिरता के भावो से रहित परम पारिणामिक भाव है उसकी ओर दृष्टि करे तो वायुकाय की योनि मे नही जाना पडेगा। बल्कि क्रम से पूर्ण क्षायिकपना प्रगट करके पूर्ण सुखी हो जावेगा।

प्रश्न ३६—क्या मनुष्यभव होने पर 'वनस्पतिकाय' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—बाजार से सब्जी लाते है, आप उसे चाकू से काटते है। वह आपसे कुछ नही कहती है, उसी प्रकार मनुष्य भव पाने पर मैं दूसरो को ऐसा मारु, वह एक पग भी ना चल सकें। ऐसा भाव करता है। वह उस समय वनस्पति काय ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि ऐसे भावो के समय आयु का बध हो गया तो वनस्पति काय की योनि मे जाना पड़ेगा। जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर दुःख उठाना पड़ेगा।

प्रश्न ३७—कोई कहे हमे 'वनस्पतिकाय' में न जाना पड़े इसका कोई उपाय है ?

उत्तर—मैं सबको मारूँ और वह एक पग भी न आगे बढ सके इससे रहित तेरी आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो वनस्पतिकाय की योनि मे नही जाना पडेगा। बल्कि गुणस्थान-मार्गणा से रहित परमपद को प्राप्त करेगा।

प्रश्न ६८—क्या मनुष्यभव होने पर 'दो इन्द्रियवाला जीव'

कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—सीप, शख, कौडी, केंचुआ, लट आदि रसना इन्द्रिय मे मग्न हैं, उसी प्रकार जो जीव मनुष्यभव पाने पर रसना के स्वाद मे पागल हो रहा है। वह उस समय दो इन्द्रिय जीव ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। रसना के स्वाद मे पागल के समय यदि आयु का बध हो गया तो दो इन्द्रियो मे उत्पन्न होना पडेगा, जहाँ निरतर रस के स्वाद मे ही पागल बना रहेगा।

प्रश्न ३९—कोई कहे हमे दो इन्द्रिय की योनि मे ना जाना पड़े इसका कोई उपाय हैं ?

उत्तर—रसना इन्द्रिय के स्वाद रहित अरस स्वभावी भगवान आत्मा है। उसका आश्रय ले तो दो इन्द्रिय की योनि में नही जाना पडेगा। बल्कि अरस स्वभाव पर्याय मे प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न ४०—क्या मनुष्यभव होने पर 'तीन इन्द्रिय' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—चीटी, बिच्छू, घुन, खटमल, जूं आदि घ्राणेन्द्रिय मे पागल हैं; उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर भी जो जीव सुगध का सम्बन्ध मिलाने और दुर्गन्ध को हटाने मे पागल बना रहता है। वह उस समय तीन इन्द्रिय जीव ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि उस समय आयु का बध हो गया तो तीन इन्द्रिय की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर घ्राण इन्द्रिय के विषय में ही पागल बना रहेगा।

प्रश्न ४१—कोई कहे हमे तीन इन्द्रिय की योनि में न जाना पड़े ऐसा उपाय बताओ ?

उत्तर—सुगन्ध-दुर्गन्ध की इच्छा रहित अगंधस्वभावी भगवान आत्मा है। उसका आश्रय ले तो तीन इन्द्रिय की योनि मे नही जाना पडेगा। बल्कि अगध स्वभाव पर्याय मे प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न ४२—क्या मनुष्यभव होने पर 'चारइन्द्रिय जीव' कहला सकता है ?

उत्तर—जैसे—मक्खी, डाँस, मच्छर, भिरड, भ्रमर, पतगा आदि रूप के विषय मे पागल है; उसी प्रकार मनुष्यभव होने पर भी जो जीव रूप बनाने मे, सिनेमा आदि देखने मे पागल है। वह उस समय चार इन्द्रिय का ही जीव है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि उस समय आयु का बन्ध हो गया तो चार इन्द्रिय की योनि मे जाना पडेगा। जहां निरन्तर रूप में पागल रहेगा।

प्रश्न ४३—कोई कहे हमे चार इन्द्रिय ना बनना पडे इसका क्या उपाय है ?

उत्तर—रूप के देखने मे पागलपन से रहित अवर्ण स्वभावी भगवान आत्मा स्वय है। उसका आश्रय ले तो चार इन्द्रिय की योनि मे नही जाना पडेगा। वल्कि अवर्ण स्वभाव पर्याय मे प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न ४४—क्या मनुष्यभव होने पर 'नारकी' कहला सकता है ?

उत्तर—जो जीव मनुष्यभव होने पर भी सात व्यसनो को, पाँच पापो रूप महान् तीव्र अशुभभावो के सेवन मे मग्न हैं, वह उसी समय 'नारकी' ही है क्योकि 'जैसी मति वैसी गति' होती है। यदि तीव्र अशुभभावों के समय आयु का वन्ध हो गया तो नारकी की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर परस्पर एक-दूसरे से क्रोध करते हुए वचनप्रहार, शस्त्रप्रहार, कायप्रहार आदि से कष्ट देते व सहते रहते है। वहाँ कुछ खाने को मिलता नही, पीने को पानी मिलता नही, क्षुधा-तृषा से निरन्तर व्याकुल रहते है।

प्रश्न ४५—कोई कहे हमे नारकी ना बनना पड़े इसका क्या उपाय है ?

उत्तर—शुभाशुभभाव रहित आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो नारकी की योनि मे नही जाना पडेगा। वल्कि

सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति कर मोक्ष का पथिक बन जावेगा।

प्रश्न ४६—क्या मनुष्यभव होने पर 'तिर्यंच' कहला सकता है ?

उत्तर—मनुष्यभव होने पर भी जो जीव 'मायातैर्यग्योनस्य' अर्थात् माया छल कपट करता है वह जीव उस समय तिर्यंच ही है, क्योंकि 'जैसी मति वसी गति' होती है। माया छल-कपट के समय यदि आयु का बन्ध हो गया तो तिर्यंच की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ पर निरन्तर छल-कपट के भावो मे ही पागल बना रहेगा।

प्रश्न ४७—कोई कहे हमें तिर्यंच की योनि मे ना जाना पड़े इसके लिये क्या करें ?

उत्तर—छल-कपट रहित तेरा स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो तिर्यंच की योनि मे नही जाना पडेगा। बल्कि सम्यक्त्वादि की प्राप्ति कर क्रम से मुक्ति रूपी सुन्दरी का नाथ बन जावेगा।

प्रश्न ४८—क्या मनुष्यभव होने पर 'देव' कहला सकता है ?

उत्तर—जो जीव मनुष्यभव होने पर अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना शुक्ललेश्या आदि शुभभाव करता है। वह उस समय देव ही है क्योकि 'जैसी मति वैसी गति' होती है और ऐसे महान् शुभभाव के समय आयु का बन्ध हो गया तो सम्यक्त्व रहित देव की योनि मे जाना पडेगा जहाँ निरन्तर आकुलता का सेवन करता हुआ दुखी होता रहेगा।

प्रश्न ४९—कोई कहे भाई सम्यक्त्व रहित देव की पर्याय हमको न मिले इसका क्या उपाय है ?

उत्तर—महान् शुभभाव रहित आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले। तो धर्म की प्राप्ति होकर क्रम से वृद्धि करके पूर्ण परमात्म दशा की प्राप्ति हो जावेगी।

प्रश्न ५०—मनुष्यभव होने पर 'मनुष्यभव का भाव क्या है ?

उत्तर—जो जीव मनुष्यभव होने पर मन्दकषायरूप कभी शुभभाव कभी अशुभ करता है वह उस समय मनुष्य ही है, क्योकि 'जैसी मति

वैसी गति' होती है। यदि ऐसे भाव के समय आयु का वन्ध हो गया तो फिर मनुष्य योनि मे जाना पडेगा। 'जहाँ वालपने मे ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तारणी रत रह्यो। अर्धमृतक समवृद्धापनो, कैसे रूप लखै आपनो' ऐसी दशा मे ही जीवन पूरा हो जावेगा।

प्रश्न ५१—कोई कहे अव हम क्या करें जिससे मनुष्यगति का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो?

उत्तर—एक मात्र अपने त्रिकाली भगवान का आश्रय ले तो प्रथम औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होकर फिर श्रावक दशा, मुनिदशा, श्रेणीदशा, अरहत और सिद्धदशा की प्राप्ति हो, तो फिर मनुष्यभव की योनि का सम्वन्ध नही रहेगा। वल्कि अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदिरूप शुद्ध दशा की प्राप्ति हो जावेगी। पर्याय मे सादि अनन्त सुख दशा वनो रहेगी तव मनुष्यगति मे जन्म हुआ सार्थक कहलायेगा।

प्रश्न ५२—धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता के विषय मे जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो का क्या आदेश है?

उत्तर—हे भव्य! एक मात्र निज परम पारिणामिक भाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहतपना और सिद्धपने की प्राप्ति होती है। किसी पर पदार्थों के आश्रय से या विकारी भावो के आश्रय से धर्म की प्राप्ति आदि कभी भी नही होती है। यह जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो का आदेश जिनवाणी मे आया है।

प्रश्न ५३—सांप आदि पर्यायो पर से चार बातें कौन-कौन सी निकालनी चाहिए?

उत्तर—(१) क्या मनुष्य भव होने पर साँप कहला सकता है? (२) यह जीव मनुष्य से साँप क्यो वनता है? (३) साँप ना वनना पड़े-इसका क्या इलाज है? (४) स्वभाव का आश्रय कैसे ले?

✦✦✦✦✦✦

तृतीय प्रकरण

समयसार गाथा २८३ से २८५ तक तथा ३८३ से ३८९ तक का मर्म

प्रतिक्रमण, आलोचना और प्रत्याख्यान स्वरूप

प्रश्न १—कुन्दकुन्द भगवान ने प्रतिक्रमण का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर—नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं ।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमता मैं नहीं ।। ७७ ।।
मैं मार्गणा के स्थान नही, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं ।
कर्ता न, कारयिता नही, कर्तानुमंता भी नहीं ।। ७८ ।।
बालक नहीं मै, वृद्ध नहिं, युवक तिन कारण नहीं ।
कर्ता न कारयिता नही, कर्तानुमंता भी नहीं ।। ७९ ।।
मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं, नहिं मोह तिन कारण नहीं ।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमता मैं नहीं ।। ८० ।।
मैं क्रोध नहिं, मै मान नहिं, माया नहिं, मै लोभ नहिं ।
कर्त्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मै नहीं ।।८१।।
मिथ्यात्व आदिक भावकी, की जीव ने चिर भावना ।
सम्यक्त्व आदिक भावकी पर की कभी न प्रभावना ।।९०।।
है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का ।
अतएव है वस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का ।।९१।।

प्रश्न २—प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वास्थानात् यत्परस्थान, प्रमादस्य वशादगत. ।
भयोऽप्यागमनं तत्र प्रतिक्रमणमुच्यते ।।

अर्थ—प्रमाद के वश होकर स्वस्थान (अपना त्रिकाली स्वभाव) को छोडकर, परस्थान में (मोह राग-द्वेप भावो मे) गया हो, वहाँ से अपने स्थान मे वापस आ जाना, उसे प्रतिक्रमण कहते है ।

प्रश्न ३—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार में प्रतिक्रमण किसे कहा है?

उत्तर—शुभ और अशुभ अनेक विध, के कर्म पूरव जो किए।
उनसे निवर्ते आत्म को, वो आत्मा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥

अर्थ—पहले लगे हुए दोषो से आत्मा को निवृत्त करना सो प्रतिक्रमण है। इसलिए निश्चय से विचार करने पर, जो आत्मा भूतकाल के कर्मो से अपने को भिन्न जानता, श्रद्धा करता और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वय ही प्रतिक्रमण है।

प्रश्न ४—प्रतिक्रमण के कितने भेद है?

उत्तर—दो भेद है—द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण।

प्रश्न ५—द्रव्य प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर—वर्तमान मे भूतकाल के सयोगो को ज्ञेय रूप जानना द्रव्य प्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली मे बैठे हुए ज्ञानी को सम्मेदशिखर, गिरनार, ज्ञानी ध्यानियो का विचार आने पर उन सयोगो को ज्ञेय रूप जानना वह द्रव्य प्रतिक्रमण है।

प्रश्न ६—भाव प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर—वर्तमान मे भूतकाल के शुभाशुभभावो को ज्ञेयरूप ज्ञान मे लेना भावप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली मे बैठे हुए ज्ञानी को सम्मेदशिखर और गिरनार मे किये गये शुभाशुभभावो का ध्यान आने पर शुभाशुभभावो को ज्ञेयरूप जानना यह भाव प्रतिक्रमण है।

प्रश्न ७—अप्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रमाद के वश होकर स्वस्थान को छोड़कर परस्थान मे गया हो, फिर वहाँ से अपने स्थान मे वापस नही आना उसे अप्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्न ८—श्री कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार गाथा २८३ से २८५ तक में अप्रतिक्रमण किसे कहा है?

उत्तर—अतीतकाल मे जिन द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म को

ाहण किया था। उन्हे वर्तमान मे अच्छा समझना, उनके सस्कार हना, उनके प्रति ममत्व रहना अप्रतिक्रमण है।

प्रश्न ६—अप्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—द्रव्य अप्रतिक्रमण और भाव अप्रतिक्रमण।

प्रश्न १०—द्रव्य अप्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उत्तर—वर्तमान समय मे भूतकाल के गुजरे हुए सयोगो को इष्ट-अनिष्ट मानना द्रव्य अप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली मे बैठे हुए कोई जीव विचार कर रहा है कि सम्मेदशिखर-गिरनार-ज्ञानी-ध्यानियो का सयोग मुझे सदैव बना रहे और अनिष्ट सयोग कभी न रहे यह द्रव्य अप्रतिक्रमण है।

प्रश्न ११—भाव अप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे भूतकाल के शुभाशुभ भावो को इष्ट-अनिष्ट मानना भाव अप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली मे बैठे हुए कोई जीव सम्मेदशिखर और गिरनार मे किये हुए शुभाशुभ भावो मे अशुभ-भाव जरा भी न होवे और शुभभावो को बनाये रखने का भाव यह भाव अप्रतिक्रमण है। [समयसार कलश २२६ देखिये]

प्रश्न १२—प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—अनादिकाल से अज्ञानी भूतकाल की पर वस्तुओ को और शुभाशुभ भावो को स्मरण करके उन्हे इष्ट-अनिष्ट मानकर मिथ्यात्व की पुष्टि कर रहा था, तो सतगुरु कहते हैं कि हे जीव ! भूतकाल सम्बन्धी द्रव्य कर्म, नोकर्म भावकर्म से दृष्टि उठाकर एकमात्र अपने भूतार्थ स्वभाव पर दृष्टि दे, तो ज्ञेय-ज्ञायकपना प्रकट हो और शान्ति की प्राप्ति हो।

प्रश्न १३—कुन्दकुन्द भगवान ने आलोचना का स्वरूप नियमसार मे क्या बताया है ?

उत्तर—

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना ॥१०७॥
समभाव मे परिणाम स्थापे और देखे आतमा।
जिनवर वृषभ उपदेश मे वह जीव है आलोचना ॥१०८॥
जड़कर्म-तरु-जड़नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है॥
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥११०॥

प्रश्न १४—आलोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने स्वरूप की (परम पारिणामिक भाव की) मर्यादा में रहकर ज्ञान करना आलोचना है।

प्रश्न १४—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार मे आलोचना किसे कहा है ?

उ०—शुभ और अशुभ अनेक विध है उदित जो इस काल में।
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है।३८५।

अर्थ—वर्तमान दोष से आत्मा को पृथक् करना सो आलोचना है। इसलिए निश्चय से विचार करने पर जो आत्मा वर्तमान काल के द्रव्य कर्म, नोकर्म और भावकर्मो से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है और अनुभव करता है वह आत्मा स्वय ही आलोचना है।

प्रश्न १६—आलोचना के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—द्रव्य आलोचना और भाव आलोचना।

प्रश्न १७—द्रव्यआलोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे वर्तमान के सयोग सम्वन्ध ज्ञेयरूप ज्ञान में आना द्रव्य आलोचना है। जैसे—सम्मेदशिखर मे वैठे हुए वर्तमान के सयोग सम्बन्ध को (नन्दीश्वरदीप की रचना, २४ टोको, ज्ञानी ध्यानियो को) ज्ञेय रूप ज्ञान मे लेना, यह द्रव्य आलोचना है।

प्रश्न १८—भावआलोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे हुए शुभाशुभ भावो को ज्ञेयरूप ज्ञान मे लेना

भावआलोचना है। जैसे सम्मेदशिखर मे बैठे हुए वर्तमान मे होने वाले शुभ अशुभ भावो को ज्ञेयरूप ज्ञान मे लेना यह भाव आलोचना है।

प्रश्न १९—अनालोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने स्वरूप की मर्यादा मे रहकर नही जानना अनालोचना है।

प्रश्न २०—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार मे अनालोचना किसे कहा है ?

उत्तर—वर्तमान काल मे जिन द्रव्यकर्म नोकर्म और भावकर्म को ग्रहण किया है। उन्हे वर्तमान मे अच्छा समझना, उनके सस्कार रहना उनके प्रति ममत्व रखना अनालोचना है।

प्रश्न २१—अनालोचना के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद—द्रव्य अनालोचना और भाव अनालोचना।

प्रश्न २२—द्रव्य अनालोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे वर्तमान के सयोग सम्बन्धो को इष्ट-अनिष्ट मानना द्रव्य अनालोचना हैं। जैसे गिरनार पर बैठे हुए वहाँ के सयोग सम्बन्धो की (पाँचवी टोक-चौथी टोक की) चाहना करना और बुरे सयोग सम्बन्धो की चाहना न करना यह द्रव्य अनालोचना है।

प्रश्न २३—भावअनालोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे वर्तमान के शुभाशुभ भावो को इष्ट-अनिष्ट मानना भाव अनालोचना है। जैसे गिरनार पर्वत पर बैठे हुए वर्तमान के दया-दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रतादि भावो को इष्ट मानना और अनिष्टभाव तनिक भी ना आवे यह भाव अनालोचना है। [समयसार कलश २२७]

प्रश्न २४—वर्तमान मे हमको सच्चेदेव-गुरु-शास्त्र का संयोग मिला, शुभभाव का अवसर मिला, क्या इसे भी हम अच्छा न माने ?

उत्तर—वास्तव मे एक मात्र अपनी आत्मा ही भूतार्थ आश्रय

करने योग्य है। स्वभाव के आश्रय से शुद्ध वीतराग दशा प्रकट करने योग्य उपादेय है। ज्ञानियो को भूमिकानुसार जो राग होता है। उसे ज्ञानी हेय-ज्ञेय जानते है परन्तु अज्ञानी अनादि से एक एक समय करके वर्तमान मे देव-गुरु-शास्त्र के सयोगो को, वर्तमान के शुभभावो को अच्छा मानकर पागल वना रहता है और इन्हे मोक्षमार्ग मानता है। आचार्य भगवान कहते है कि अपनी आत्मा का अनुभव ना होने से शुभ अच्छा, अशुभ बुरा, यह अनन्त ससार का कारण है और महान पाप है।

प्रश्न ३५—कुन्दकुन्द भगवान ने प्रत्याख्यान का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर—

भावी शुभाशुभ छोड़कर, तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आतम, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥९५॥
कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूं वहीं, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को ॥९६॥
निज भाव को छोड़े नही, किंचित् ग्रहे पर भाव नहि।
देखे व जाने मै वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही ॥९७॥
जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंध विन आत्मा।
मै हू वही, यो भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ ॥९८॥
मम ज्ञान मे है आत्मा, दर्शन चरित्र मे आतमा।
है और प्रत्याख्यान सवर, योग मे भी आतमा ॥१००॥
दृगज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे हैं परे ॥१०२॥

प्रश्न ३६—प्रत्याख्यान किसे कहते है ?

उत्तर—आत्मा की वैसी प्रसिद्धि है वैसी ही उसकी मर्यादा मे (स्वभाव सन्मुख) रहना उसे प्रत्याख्यान कहते है।

प्रश्न २७—भगवान कुन्द कुन्द ने समयसार मे प्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उ०—शुभ अरू अशुभ भावी करम का बंध हो जिनभाव मे।
उनसे निर्वतन जो करे वो आतमा पचखाण है ॥३८४॥

अर्थ—भविष्य मे दोष लगने का त्याग करना, सो प्रत्याख्यान है। इसलिए निश्चय से विचार करने पर जो आत्मा भविष्यत् काल के द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है, और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वय ही प्रत्याख्यान है।

प्रश्न २८—समयसार गा० ३४ व ३५ मे "ज्ञान ही प्रत्याख्यान है" ऐसा क्यो कहा है ?

उत्तर—'सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावो का करे।
इसमे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३४॥
ये और का है जानकर, पर द्रव्य को को नर तजे।
त्यो और के हैं जानकर पर भाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥

अर्थ—जिससे अपने 'अतिरिक्त सर्व पदार्थों को पर हैं' ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है। उसमे प्रत्याख्यान ज्ञान ही है। ऐसा नियम से जानना। अपने ज्ञान मे त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है, दूसरा कुछ नही ॥३४॥ जैसे—लोक मे कोई पुरुष पर वस्तु को "यह पर वस्तु है" ऐसा जाने तो पर वस्तु का त्याग करता है। उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष समस्त पर द्रव्यो के भावो को "यह पर भाव है" ऐसा जानकर उनको छोड देता है।

प्रश्न २९—कलश टीका कलश २९ मे पंडित राजमलजी ने प्रत्याख्यान किसे वताया है ?

उत्तर—जैसे—किसी पुरुष ने धोवी के घर से अपने वस्त्र के धोखे मे दूसरे का वस्त्र आने पर विना पहिचान के उसे पहिन कर अपना जाना, वाद मे उस वस्त्र का धनी जो कोई था। उसने अचल

पकड कर कहा कि "यह वस्त्र तो मेरा है, पुन कहा कि मेरा ही है।" ऐसा सुनने पर उस पुरुष ने चिन्ह देखा, जाना कि मेरा चिन्ह तो मिलता नही। इससे निश्चय से यह वस्त्र मेरा नही है दूसरो का है। उसके ऐसी प्रतीति होने पर त्याग हुआ घटित होता है। वस्त्र पहिने ही है तो भी त्याग घटित होता है, क्योकि स्वामित्वपना छूट गया है। उसी प्रकार अनादि काल से जीव मिथ्यादृष्टि है। इसलिए कर्मजनित जो शरीर, दुख-सुख, रागद्वेष आदि विभाव पर्याय, उन्हे अपना ही जानता है। और उन्ही रूप प्रवर्तता है, हेय-उपादेय-ज्ञेय को नही जानता है। सत्गुरु का उपदेश सुना, हे भव्य! जितने है जो शरीर, सुख-दुख रागद्वेष, मोह जिनको तू अपना जानता है और इनमे रत हुआ है, वे तो सब ही तेरे नही है। तू तो ज्ञान-दर्शन का धारी शुद्ध चिद्रुप है। ऐसा निश्चय जिस काल हुआ उसी समय सकल द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म का त्याग है। याद रहे—शरीर, सुख-दुख, जैसे ही थे वैसे ही है, परिणामो से त्याग है, क्योकि स्वामित्वपना छूट गया है इसका नाम "ज्ञान ही प्रत्याख्यान है"। देखो! ज्ञान हो गया कि वे मेरा नही, पीछे क्या उनको छोडना पड़ता है? अरे भाई! नही, परन्तु छूट ही जाता है इसलिए ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

प्रश्न ३०—प्रत्याख्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर—दो भेद हैं—द्रव्य प्रत्याख्यान और भाव प्रत्याख्यान।

प्रश्न ३१—द्रव्य प्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर—वर्तमान मे जैसा सयोग सम्बन्ध है भविष्य के लिए भी ऐसा ही सयोग सम्बन्ध बना रहे ऐसे भाव का नही आना। यदि ऐसे सयोग आये तो ज्ञेयरूप से आये यह द्रव्य प्रत्याख्यान है। जैसे वर्तमान मे सच्चे देव-गुरु-धर्म का सयोग सम्बन्ध है। आगामी काल मे ऐसा ही बना रहे, ऐसा भाव का नही आना। परन्तु ज्ञेयरूप से ज्ञान मे आवे यह द्रव्य प्रत्याख्यान है।

प्रश्न ३२—भाव प्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर—वर्तमान के शुभभावो को आगामी काल मे बनाये रखने का भाव और अशुभभाव न आये ऐसा भाव, भविष्यत् के लिए नही आना। अथवा आने पर उन्हे ज्ञेयरूप ज्ञान मे लेना, भाव प्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान सम्मेदशिखर मे बैठे हुए शुभभाव तो आते हैं, अशुभभाव नही आते है, भविष्य के लिए शुभाशुभ भावो का ज्ञेयरूप ज्ञान मे आना, यह भाव प्रत्याख्यान है।

प्रश्न ३३—अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा की जैसी प्रसिद्धि है उसके सन्मुख ना रहकर उसकी मर्यादा का उल्लघन करना अप्रत्याख्यान है।

प्रश्न ३४—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार गाथा २८३ से २८५ तक मे अप्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उत्तर—आगामीकाल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म और भाव कर्मो की इच्छा रखना, ममत्व रखना, अप्रत्याख्यान है।

प्रश्न ३५—अप्रत्याख्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद है—द्रव्य अप्रत्याख्यान और भाव अप्रत्याख्यान।

प्रश्न ३६—द्रव्य अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे द्रव्यकर्म-नोकर्म का जैसा सम्बन्ध है। वैसा ही सम्बन्ध भविष्य मे भी बनाए रखने का भाव द्रव्य अप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान मे सच्चे देव-गुरु-धर्म का सयोग सम्बन्ध है। आगामीकाल मे ऐसा ही बना रहे ऐसा भाव, द्रव्य अप्रत्याख्यान है।

प्रश्न ३७—भाव अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान मे जैसे शुभभाव हैं, अशुभभाव नही है। आगामी काल मे ऐसे ही शुभभाव बना रहे तो अच्छा हो वह भाव अप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान सम्मेदशिखर मे बैठे हुए शुभभाव तो आते है और अशुभभाव जरा भी नही आते, भविष्य मे भी ऐसे शुभ-

भावो को वनाए रखने का भाव यह भाव अप्रत्याख्यान है। [समयसार कलश २९८]

प्रश्न ३८—आपने वर्तमान मे जो अच्छा संयोग सम्बन्ध है और शुभभाव हैं। उन्हे आगामी काल मे बनाए रखने के भाव का क्या निषेध किया है ?

उत्तर—वर्तमान मे जैसा अच्छा सयोग सम्बन्ध है, शुभभाव है वैसे ही आगामी काल मे वने रहने का तात्पर्य यह हुआ कि ससार मे ही घूमता रहे और निर्वाण की प्राप्ति ना हो। अरे भाई ! ऐसे भाव अनन्त ससार का कारण है, इसलिए एक मात्र परम पारिणामिक रूप अपने आत्मा का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति ही सुख पाने का उपाय है।

प्रश्न ३९—श्री भगवान कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्राचार्य ने प्रतिक्रमण-अप्रतिक्रमण, आलोचना-अनालोचना और प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान का स्वरूप किन-किन गाथाओ और टीका से वताया है?

उत्तर—(१) समयसार गा० २८३ से २८५ तक अप्रतिक्रमणादि का स्वरूप समझाया है। (२) समयसार गा० ३०६ तथा ३०७ मे प्रतिक्रमण क्या है तथा गा० ३८३ से ३८९ तक प्रतिक्रमण-आलोचना आदि का स्वरूप स्पष्ट किया है। (३) समयसार गा० २१५ मे "ज्ञानी के त्रिकाल सम्बन्धी परिग्रह नही है" ऐसा वताया है।

प्रश्न ४०—क्या नियमसार में प्रतिक्रमणादि का स्वरूप वताया है ?

उत्तर—(१) नियमसार गा० ३८से ५० तक किसके आश्रय से प्रतिक्रमणादि उत्पन्न होते है, यह वताया है। (२) गा० ७७ से १५८ तक की गाथाओ मे प्रतिक्रमण आदि निश्चय चारित्र का वर्णन किया है। (३) नियमसार गा० ११९ की टीका तथा फुटनोट मे बताया है कि "मात्र परम पारिणामिकभाव का—शुद्धात्म द्रव्य सामान्य का—आलम्वन लेना चाहिए। उसका आलम्बन लेने वाला भाव ही (वीत

राग भाव ही) महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित आदि सब कुछ है। (आत्म स्वरूप का आलबन, आत्म स्वरूप का आश्रय, आत्म स्वरूप के प्रति सन्मुखता, आत्म स्वरूप के प्रति झुकाव, आत्म स्वरूप का ध्यान, परम पारिणामिक भाव की भावना, मैं ध्रुव शुद्ध-आत्म द्रव्य सामान्य हूँ, ऐसी परिणति—इन सबका एक ही अर्थ है।

प्रश्न ४१—समयसार मे विषकुम्भ किसे कहा है ?

उत्तर—

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण, त्यो परिहरण, निवृत्ति धारणा।
अरु शुद्धि, निन्दा, गर्हणा, ये अष्ट विध विष कुम्भ है ॥३०६॥

प्रश्न ४२—समयसार मे अमृतकुम्भ किसे कहा है ?

उत्तर—

अन प्रतिक्रमण अन प्रतिसरण, अनपरिहरण अन धारणा।
अनिवृत्ति, अनगर्हा, अनिन्द, अशुद्धि-अमृत कुंभ है ॥३०७॥

आत्मज्ञान से शाश्वत सुख

जो जाने शुद्धात्म को अशुचि देह से भिन्न,
वे ज्ञाता सब शास्त्र के शाश्वत सुख मे लीन ॥

[योगसार ८५]

जो शुद्ध आत्मा को अशुचिरूप शरीर से भिन्न जानते हैं वे सर्वशास्त्र के ज्ञाता हैं और शाश्वत सुख में लीन होते हैं।

चतुर्थ प्रकरण

समयसार गाथा ३९० से ४०४ तक का रहस्य

भगवान आत्मा की छह बोलो से सिद्धि

भगवान आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वभावी है ।

प्रश्न १—भगवान आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न है। उसके लिए कुन्द-कुन्द भगवान ने समयसार गाथा ३९० से ४०४ तक मे क्या बताया है ?

उत्तर—

रे ! शास्त्र है नहि ज्ञान, क्योकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, शास्त्र अन्य प्रभु कहे ॥३९०॥

रे ! शब्द है नहि ज्ञान क्योकि शब्द कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, शब्द अन्य प्रभू कहे ॥३९१॥

रे ! रूप है नहि ज्ञान, क्योकि रूप कुछ जाने नही।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू रूप अन्य प्रभु कहे ॥३९२॥

रे ! वर्ण है नहि ज्ञान क्योकि वर्ण कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान, अन्य रू, वर्ण अन्य प्रभू कहे ॥३९३॥

रे गंध है नहि ज्ञान, क्योकि गंध कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान, अन्य रू, गंध अन्य प्रभू कहे ॥३९४।

रे रस नहीं है ज्ञान क्योकि रस जु कुछ जाने नही।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू अन्य रस जिनवर कहे ॥३९५॥

रे स्पर्श है नहि ज्ञान, क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, स्पर्श अन्य प्रभू कहे ॥३९६॥

रे कर्म है नहीं ज्ञान, क्योकि कर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, कर्म अन्य जिनवर कहे।३९७।

रे! धर्म नहिं है ज्ञान क्योकि धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, धर्म अन्य जिनवर कहे।३९८।

नहिं है अधर्म जु ज्ञान, क्योकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य, अधर्म अन्य जिनवर कहे।३९९।

रे! काल है नहिं ज्ञान, क्योंकि काल कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, काल अन्य प्रभू कहे।४००।

आकाश है नहिं ज्ञान, क्योकि आकाश कुछ जाने नही।
इस हेतुसे आकाश अन्य रू, ज्ञान अन्य प्रभू कहे।४०१।

रे! ज्ञान, अध्यवसान नहिं क्योकि अचेतन रूप है।
इस हेतुसे ज्ञान अन्य रू, अन्य अध्यवसान है।४०२।

रे! सर्वदा जाने हि इससे जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरु ज्ञान है ज्ञायक से, अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है।४०३।

सम्यक्त्व अरु संयम तथा पूर्वांगत सब सूत्र, जो।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञान को।४०४।

प्रश्न २—कुन्दकुन्द आचार्य ने इन १५ गाथाओ मे क्या बताया है?

उत्तर—भगवान आत्मा का शास्त्र, शब्द, गुरु का वचन, दिव्य-ध्वनि किसी प्रकार के आकार के साथ, काला-पीला, नीला, लाल, सफेद रूप के साथ, सुगध, दुर्गन्ध रूप गन्ध के साथ, खट्टा-मीठा-कडुआ चर्परा-कषायला-रूप रस के साथ, हल्का-भारी ठडा-गरम रुखा चिकना कडा-नरमरूप स्पर्श के साथ, आठ कर्मों के साथ, धर्म-अधर्म,

आकाश काल के साथ, कर्म के उदयरूप अध्यवसान के साथ सम्बन्ध नही है। ऐसा अनादि से जिनदेव कहते हैं। क्योकि आत्मा निरन्तर जानता हे इसलिए ज्ञायक ऐसा जीव ज्ञानवाला है और ज्ञान ज्ञायक से अभिन्न है ऐसा जानना चाहिए। यहाँ ज्ञान कहने से आत्मा ही समझना चाहिए। ज्ञानी ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, सयम, अग पूर्वगत सूत्र, पुण्यपाप, दीक्षा मानते है। तात्पर्य यह है कि अनादि अज्ञान से होने वाली शुभाशुभ उपयोगरूप परसमय की प्रवृत्ति को दूर करके सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मे प्रवृत्ति रूप स्वसमय को प्राप्त करके उस स्व समय परिणमन स्वरूप मोक्षमार्ग मे अपने को परिणमित करके जो सम्पूर्ण विज्ञानघन स्वभाव को प्राप्त हुआ है और जिसमे कोई त्याग ग्रहण नही है। ऐसे साक्षात् समयसार स्वरूप परमार्थभूत, निश्चल रहा हुआ, शुद्ध पूर्ण आत्म द्रव्य को देखना चाहिये।

प्रश्न ३—आत्मा क्या करता है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञान स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽय व्यवहारिणाम् ॥६२॥

अर्थ—चेतना आत्मा चेतन मात्र परिणाम को करता है अत. आत्मा स्वय चेतना परिणाम मात्र स्वरूप है। आत्मा पर भाव का कर्ता है ऐसा मानना सो व्यवहारी जीव का मोह (अज्ञान) है।

प्रश्न ४—क्या चेतन परिणाम से भिन्न अचेतन पुद्गल परिणाम-रूप कर्म का जीव करता है ?

उत्तर—सर्वथा नही करता है। चेतन द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म को करता है, ऐसा जानपना, ऐसा मानना मिथ्यादृष्टि जीवो का अज्ञान है। ज्ञानावरणीय कर्म का कर्ता जीव है सो कहना उपचार है। [देखो समयसार कलश २१० तथा २१४]

प्रश्न ५—आत्मा का कार्य ज्ञान है। उस ज्ञान का परसे सम्बन्ध नहीं है, इसके ऊपर से कितने बोल निकल सकते हैं ?

उत्तर—हजारो बोल निकल सकते हैं। परन्तु उन सबका छह बोलो मे समावेश करते हैं।

प्रश्न ३—छह बोल कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) ज्ञान अरूपी है। (२) ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नही कर सकता है (३) ज्ञान अविकारी है। (४) ज्ञान चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है। (५) ज्ञान पर का कुछ भी नही कर सकता है। (६) ज्ञान सर्व समाधान कारक है।

प्रश्न ७—'ज्ञान अरूपी है' यह किस प्रकार है ?

उत्तर—भगवान आत्मा अरूपी है। उसके गुण अरूपी है और उस की पर्याय भी अरूपी है। इसलिए आत्मा का रूपी पदार्थो से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही हैं।

प्रश्न ८—क्या शास्त्रो से, भगवान की दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनो से ज्ञान होता है ?

उत्तर—(१) बिल्कुल नही होता है, क्योकि शास्त्र, दिव्यध्वनि, गुरु का शब्द-पुद्गल की स्कन्धरूप पर्याय हैं, इनमे ज्ञानपना नही है। इसलिये जो रूपी है और जिसमे ज्ञान नही है ऐसा जो शास्त्र दिव्यध्वनि, शब्द आदि अरूपी ज्ञानघन आत्मा को ज्ञान का कारण बने, ऐसा नही हो सकता है। अत ज्ञान अरूपी है ऐसा सिद्ध होता है (२) यह हजारो शास्त्र हैं, यह स्थूल-स्थूल स्कन्ध है। इनमे वजन है। देखो, हजारो पुस्तको का वजन उठाया नही जा सकता लेकिन हजारो पुस्तको का ज्ञान होने मे जरा भी वजन नही लगता। इससे सिद्ध होता है कि "ज्ञान अरूपी है।"

प्रश्न ९—शास्त्रो से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनो से, द्रव्यकर्म के क्षयोपशमादि से, और ज्ञेयो से ज्ञान होता है, ऐसा शास्त्रो मे क्यो कहा है ?

उत्तर—कहने को तो है वस्तु स्वरूप विचार ने पर उसमे कर्ता-कर्म सम्बन्ध नही है झूठा व्यवहार दृष्टि से ही जीव इनका कर्त्ता है।

यह कहने के लिए सत्य है, क्योकि व्याप्य-व्यापकना एक ही द्रव्य मे होता है, दो द्रव्यो मे कभी भी नही होता है । [कलश २१४]

प्रश्न १०—जहाँ दो द्रव्यो का कर्त्ता-कर्म लिखा हो, वहाँ क्या अर्थ जानना चाहिए ?

उत्तर—जहाँ पर दो द्रव्यो का कर्त्ता-कर्म लिखा हो वहाँ पर व्यवहार नय की मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे "ऐसा है नही, किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है" ऐसा जानना ।

प्रश्न ११—कोई कहे हम तो शास्त्रो से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनो से, कर्म के क्षयादि से और ज्ञेयों से ही ज्ञान मानेंगे, तो उसके लिये जिनवाणी मे उसे किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) "तस्य देशना नास्ति" वह जिनवाणी सुनने के अयोग्य है । (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय) (२) वह पद-पद पर धोखा खाता है; (प्रवचनसार) (३) ज्ञेयो से ज्ञान होता है ऐसी श्रद्धा को मिथ्या-दर्शन, ऐसे ज्ञान को मिथ्याज्ञान और ऐसे आचरण को मिथ्याचारित्र कहा है, (समयसार गा० २७०) (४) पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा अहकार रूप अज्ञान अन्धकार है, जो अत्यन्त दुर्निवार है । (समयसार कलश ५५)

प्रश्न १२—'ज्ञान अरूपी है' इससे क्या तात्पर्य रहा ?

उत्तर—अरे भाई ! जैसे ज्ञान से पर का सम्बन्ध नही है, उसी प्रकार सुख के लिए पाचो इन्द्रियो के विषयो का, सम्यक् दर्शन के लिए दर्शन मोहनीय के उपशमादिक का और चारित्र के लिए बाहरी क्रिया तथा शुभभावो की आवश्यकता नही है ।

प्रश्न १३—"ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नहीं कर सकता है" यह किस प्रकार है ?

उत्तर—(अ) ज्ञान को कोई काल विघ्न नही कर सकता है । विचारो, पाँच मिनट पहले समय का ज्ञान करने मे पाँच मिनट लगे और पाँच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने मे पाँच वर्ष लगे ।

क्या ऐसा होता है ? आप कहेगे नही, क्योकि पाँच मिनट पहले और पांच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने मे समान समय ही लगता है। इससे निर्णय हुआ "ज्ञान को कोई काल विघ्न नही कर सकता है।" [आ] ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नही कर सकता है। विचारो। जैसे—हम दिल्ली मे वैठे हैं तो दिल्ली का ज्ञान करने मे थोडा समय लगे और दूर क्षेत्र वम्वई का ज्ञान करने मे ज्यादा समय लगे, क्या ऐसा होता है ? आप कहेगे नही, क्योकि क्षेत्र नजदीक का हो या दूर का हो दोनो के ज्ञान करने मे वरावर ही समय लगता है। इससे यह निर्णय हुआ ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नही कर सकता है। इसलिये ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नही कर सकता है, ऐसा पात्र जीव जानते है।

प्रश्न १४—कोई ऐसा कहता है कि जहाँ सीमधर भगवान है वहाँ पर चौथा काल विदेह क्षेत्र है वहा से मोक्ष होता है—और जहाँ पर हम रहते हैं यहाँ पर पचम काल है भरत क्षेत्र है यहाँ से मोक्ष नहीं होता है। देखो, मोक्ष प्राप्ति के लिए काल और क्षेत्र ने विघ्न डाला और आप कहते हो 'ज्ञान को कोई काल और क्षेत्र विघ्न नहीं करता' इसलिए आपकी बात झूठी साबित होती है ?

उत्तर—(१) तुम कभी चौथे काल और विदेहक्षेत्र मे थे या नही ? तुम कहोगे कि थे। तो हम पूछते हैं तुमको मोक्ष क्यो नही हुआ ? (२) जम्बुस्वामी आदि पचम काल मे ही मोक्ष गये हैं। (३) पूर्व भव का कोई वैरी देव विदेहक्षेत्र के भावलिंगी मुनि को यहाँ पटक जावे तो वह मुनि उग्र पुरुषार्थ करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यदि काल और क्षेत्र विघ्न करता हो तो इनका मोक्ष नही होना चाहिए था, इसलिए याद रक्खो, काल अच्छा हो या खराव हो क्षेत्र अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, किसी भी जीव को किसी भी समय क्षेत्र या काल विघ्न नही कर सकता है।

प्रश्न १५—फिर शास्त्रों में क्यो लिखा है कि पचमकाल मे मोक्ष

नहीं होता ?

उत्तर—जो जीव पचमकाल मे उत्पन्न होगा, वह जीव इतना तीव्र पुरुषार्थ नही कर सकेगा कि वह दृष्टिमोक्ष को छोडकर मोह मुक्त मोक्ष, जीवनमुक्त मोक्ष और विदेह मोक्ष को प्राप्त कर सके। ऐसा केवलज्ञानी के ज्ञान मे आया है इस अपेक्षा अर्थात् तीव्र पुरुषार्थ ना करने की अपेक्षा पचमकाल मे मोक्ष नही होता है इसलिए ऐसा शास्त्रो मे लिखा है।

प्रश्न १६—क्या मोक्ष कई प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—मोक्ष पाँच प्रकार के हैं, (१) शक्तिरूप मोक्ष, (२) दृष्टि मोक्ष, (३) माह मुक्त मोक्ष, (४) जीवन मुक्त मोक्ष, (५) विदेह मोक्ष।

प्रश्न १७—इन पाँच मोक्ष को गुणस्थान की अपेक्षा समझाओ ?

उत्तर—(१) शक्तिरूप मोक्ष ता निगोद से लेकर सिद्धदशा तक प्रत्येक जीव के पास अनादिअनन्त है। (२) दृष्टिमोक्ष शक्ति रूप मोक्ष का आश्रय लेने से चौथे गुणस्थान मे प्रकट होता है। (३) शक्तिरूप मोक्ष मे विशेष एकाग्रता करने से दृष्टिमोक्ष के पश्चात् १२वे गुणस्थान मे मोह मुक्त मोक्ष प्रकट होता है। (४) जीवन मुक्त मोक्ष १३, १४ वे गुणस्थान मे प्रकट होता है। (५) विदेहमोक्ष १४वें गुणस्थान से पार सिद्ध दशा मे प्रकट होता है।

प्रश्न १८—सब मोक्ष किसके आश्रय से प्रगट होते है ?

उत्तर—एक मात्र शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय से ही चारो प्रकार के मोक्ष पर्याय मे प्रगट होते है। इसलिए शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय लिए बिना दृष्टिमोक्ष का प्राप्ति नही होती है। (२) दृष्टिमोक्ष प्राप्त किये बिना मोह मुक्तमोक्ष की प्राप्ति नही होती है। (३) मोह मुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना जीवन मुक्त मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। (४) जीवन मुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना विदेह मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। यह जिन, जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित अनादिअनन्त नियम है।

प्रश्न १९—पंचम काल मे इन पाच मोक्षों में से कौन-कौनसे मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे जीवो के नाम बताओ, जिनको इनकी प्राप्ति हुई हो ?

उत्तर—पचम काल मे दृष्टि मोक्ष ही पर्याय मे प्रगट हो सकता है। (१) क्योंकि (१) शक्ति-मोक्ष तो प्राणी मात्र के पास हैं। (२) दृष्टि-मोक्ष प्राप्त पचम काल मे कुन्दकुन्द भगवान, अमृतचन्द्राचार्य, समन्तभद्राचार्य, धरसेनाचार्य, रविषेणाचार्य, प टोडरमल जी, राजमल जी, दीपचन्द्र जी, दौलतराम कानजी स्वामी आदि हो चुके है। और जीव भी दृष्टि मोक्ष प्राप्त विचरते है। ऐसा पात्र भव्य जीव जानते हैं।

प्रश्न २०—पंचम काल में दृष्टि मोक्ष की ही प्राप्ति हो सकती है। ऐसा कहीं शास्त्रों मे उल्लेख है ?

उत्तर—(१) भगवान कुन्दकुन्द ने मोक्ष पाहुड गा० ७७ मे कहा है कि "अभी इस पचमकाल मे भी जो मुनि सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता युक्त होते है। वे आत्मा का ध्यान कर इन्द्र पद अथवा लौकान्तिक देव पद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चय कर निर्वाण को प्राप्त होते है।" (२) आचार्यकल्प प० टोडरमल जी ने आठवें अधिकार मे लिखा है कि "यह काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिक द्वारा सम्यक्त्वादिक होना इस काल मे मना नही हैं, इसलिए आत्मानुभवनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना।" (३) कार्तिकेयानुप्रेक्षा के धर्मानुपेक्षा भावना मे गाथा ४८७ की टीका मे बताया है कि "इस काल मे शुक्ल ध्यान तो नही होता, किन्तु धर्मध्यान होता है" तथा मोक्ष प्राभृत का हवाला दिया है। धर्मध्यान शुद्ध भाव है। यह चौथे गुणस्थान से सातवे गुणस्थान तक होता है।

प्रश्न २१—कोई कहे, हमको तो दृष्टि मोक्ष वाले जीव भी कहीं दिखाई नही देते हैं ?

उत्तर—जैसे—सूर्य का प्रकाश होने पर उल्लू को दिखाई नही देता; उसी प्रकार अज्ञानी मूढो को दृष्टिमोक्ष वाले जीव नही दिखते है।

प्रश्न २२—बहुत से कहते है कि पंचम काल मे निश्चय सम्यक्त्व होता ही नहीं। क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, क्योकि ज्ञानार्णव मे लिखा है कि इस काल मे दो-तीन सत्यपुरुष है, अर्थात् थोडे है।" यह सिद्ध हुआ पचम काल मे मोक्ष है। इसलिए पात्र-जीवो को जानना चाहिए कि जिन-मत मे जो मोक्ष का उपाय कहा है इससे मोक्ष होता ही होता है। इसलिए "ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नही कर सकता।" यह सिद्ध हो गया।

प्रश्न २३—'ज्ञान अविकारी है' यह किस प्रकार है ?

उत्तर—ज्ञान अविकारी है अर्थात् ज्ञान मे विकार नही है। जैसे दस दिन पहले हमारी किसी के साथ लड़ाई हो गयी। लडाई के समय खूब लाल-पीले हुए। विचारो, वर्तमान समय मे लड़ाई का ज्ञान तो कर सकते है। लेकिन लडाई के समय जैसे—लाल-पीले हो रहे थे वैसे अब नही हो सकते और ज्ञान करते समय क्रोधादि भी मालूम नही पडता है। इसलिए यदि ज्ञान मे विकार हो तो ज्ञान के समय क्रोधादि भी होना चाहिए, परन्तु ऐसा नही होता। इससे सिद्ध होता है ज्ञान मे विकार नही है।

प्रश्न २४—'ज्ञान अविकारी है' इसका कोई दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—आज से पाँच वर्ष पहले हमने किसी को कटुवचन कह दिया हो। तो आज ज्ञान करते समय ज्ञान मे कटुता आवेगी ? आप कहेगे, कभी नही। इसलिए यह सिद्ध हुआ ज्ञान अविकारी है।

प्रश्न २५—क्या शुभाशुभ विकारी भाव भी आत्मा से पृथक हैं ?

उत्तर—हाँ पृथक् है। उपयोग उपयोग मे है, क्रोधादि मे उपयोग

'ही है, क्रोध-क्रोध मे ही है, उपयोग मे निश्चय से क्रोध नही है।

प्रश्न २६—शुभाशुभ भाव आतमा मे नहीं है। ऐसा कहीं शास्त्रो' । आया ह ?

उत्तर—(१) समयसार गा० ७१ की टीका मे "क्रोधादि के और ात्मा के निश्चय से एक वस्तुत्व नही।" तथा ऐसा भी लिखा है कि 'ज्ञान होते समय जैसे ज्ञान होता हुआ मालूम पडता है; उसी प्रकार ोधादि भी होते हुए मालूम नही पडते है।" (२) समयसार गा० ।८१ से १८३ तक मे जैसे द्रव्यकर्म-नोकर्म आतमा से भिन्न है उसी ।कार भावकर्म भी आतमा से भिन्न है। क्रोधादि मे और ज्ञान मे प्रदेश ।द होने से अत्यन्त भेद है, ऐसा कहा हैं। (३) समयसार गा० २९४ । रागादि का और आत्मा का निज-निज लक्षण जान कर अपनी ।ज्ञा रूप छैनी को अपनी ओर सन्मुख करने से अलग-अलग हो ाते है।

इसलिए समयसार गा० ७१, १८१ से १८३ तक २९४ की टीका ावार्थ सहित अभ्यास करना चाहिए। इससे सिद्ध होता है 'ज्ञान अविकारी है।"

प्रश्न २७—बहुत से आदमी शुभभावो से धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसा क्यो कहते हैं ?

उत्तर—(१) शुभभावो से धर्म की प्राप्ति होती है ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। क्योकि जैसे लहसुन खाने से कस्तूरी की डकार नही आती, उसी प्रकार शुभभावो से कभी भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति नही होती।

प्रश्न २८—शुभभावो को समयसार मे क्या क्या कहा है ?

उत्तर—(१) पुण्य भाव को धर्म का कारण मानने वाले को समय सार गा० १५४ मे 'नपुसक' कहा है। (२) गा० ७२ मे पुण्यभाव को मल, मैल, अपवित्र, घिनावना, अशुचि, जडस्वभावी, चैतन्य से अन्य स्वभाव वाला, आकुलता को उत्पन्न करने वाला और दु ख का कारण

कहा है। (३) गा० ७४ में विरुद्धस्वभावी, अध्रुव, अनित्य, अशरण, वर्तमान मे दु खरूप और भविष्य मे भी दु ख का कारण कहा है। (४) गा० ३०६ मे विषकुम्भ कहा है। (५) समयसार गा० १५२ मे आत्मा का अनुभव हुए बिना व्रत-तप को बालव्रत और बालतप कहा है।

प्रश्न २९—शुभभावो को छहढाला मे क्या क्या कहा है ?

उत्तर—(१) पाँचवी ढाल मे "आस्रव दु खकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हे निरवेरे। जिन पुण्य-पाप नहि कीना, आतम अनुभव चित दीना तिन ही विधि आवत रोके, सम्वर लहि सुख अवलोके।" (२) छठी ढाल मे 'यह राग-आग दहै सदा" कहा है। (३) दूसरी ढाल मे "शुभ-अशुभ बन्ध के फल मभार, रति-अरति करे निजपद विसार" कहा है। (४) पहली ढाल मे "जो विमानवासी हू थाय, सम्यक्दर्शन विन दु ख पाय," कहा है।

प्रश्न ३०—प्रवचनसार मे शुभभावो को क्या कहा है ?

उत्तर—गाथा ११ की टीका मे "शुभोपयोग हेय" कहा है। गाथा ७७ मे 'पुण्यपाप मे जो अन्तर डालता है वह घोर अपार ससार मे भ्रमण करता है' ऐसा कहा है।

प्रश्न ३१—सोलह कारण की पूजा में पुण्यभाव को क्या कहा है ?

उत्तर—'पुण्य-पाप सब नाश के, ज्ञानभानु परकाश।' तथा मगल विधान मे 'पुण्य समग्रमहमेकमना जुहोमि' अर्थात् समस्त पुण्य को एकाग्र चित्त से अग्नि मे हवन करता हू। देव-गुरु-शास्त्र की पूजा मे 'शुभ और अशुभ की ज्वाला से झुलसा है मेरा अन्तस्तल' ऐसा कहा है।

प्रश्न ३२—योगसार मे पुण्य को क्या कहा है ?

उत्तर—दोहा ७१ मे ज्ञानी पुण्य को पाप जानते हैं ऐसा कहा है ?

प्रश्न ३३—पुरुषार्थसिद्धि उपाय में पुण्य को क्या कहा है ?

उत्तर—गा० २२० मे शुभोपयोग 'अपराध' ऐसा कहा है।

श्न ३४—शुभभाव को नपुंसक, अपराध आदि कहने से तात्पर्य
है ?

त्तर—ज्ञान अर्थात् आत्मा अविकारी है। उसकी प्राप्ति किसी
कार के शुभभावो से नही हो सकती है। एक मात्र भूतार्थ का
। लेकर अपना अनुभव करे तो 'ज्ञान अविकारी है' ऐसा
।

श्न ३५—"ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" यह किस प्रकार

त्तर—केवलज्ञान मे त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों का सम्पूर्ण स्वरूप
समय मे सर्व प्रकार से एक साथ स्पष्ट ज्ञात होता है। ऐसी
ज्ञान की अचिन्त्य अपार शक्ति है और प्रत्येक आत्मा मे शक्ति
से ऐसा ही स्वभाव है। ऐसा अरहत-सिद्ध भगवान दर्शा रहे हैं।
जिसने जाना, माना-तब 'ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है' कहा
गा।

श्न ३६—'ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है' ऐसा छहढाला में
बताया है ?

उत्तर—"सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारण।
इहि परमामृत जन्म जरामृति-रोग निवारन॥
इसी कारण से ज्ञान को चैतन्य चमत्कार स्वरूप कहा है।'

[प्रवचनसार गाथा २०० देखिएगा]

श्न ३७—'ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है' जरा इसे खोल कर
ाइये ?

उत्तर—(१) अनेक प्रकार की अलग-अलग चीजे कभी इकठ्ठी
हो सकती। परन्तु वे सब वस्तुएँ ज्ञान की एक समय की पर्याय
क साथ जानी जा सकती हैं। इसलिए 'ज्ञान चैतन्य चमत्कार

स्वरूप है' कहा जाता है। (२) बहुत वस्तुओ का भोगना एक साथ नही हो सकता, परन्तु ज्ञान बहुत वस्तुओ का भोग एक समय मे एक साथ कर सकता है। इसलिए 'ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है' कहा जाता है। (३) एक बडे कमरे मे कुर्सी, मेज, पलग, आदि अनेक चीजें पडी है आप उन्हे इकट्ठी नही कर सकते परन्तु ज्ञान मे एक साथ ले सकते है, इसीलिए 'ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है' कहा जाता है। (४) थाली मे ५० चीजो का एक साथ भोग नही हो सकता। परन्तु ज्ञान मे एक साथ भोग कर सकते हैं। इसलिए 'ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है' कहा जाता है।

प्रश्न ३८—परवस्तु का विस्मय क्यो आता है ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमकर निगोद मे जाने की तैयारी है। इसलिए अज्ञानियो को पर वस्तु का विस्मय आता है।

प्रश्न ३९—पर वस्तु का विस्मय अज्ञानी किस-किस प्रकार करता है। उसका दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—(१) किसी के पास भूत-व्यन्तर आवे उसे सब नमस्कार करने पहुच जाते हैं क्योकि अज्ञानी को उसकी महिमा है इसलिए पर वस्तु का विस्मय आता है आत्मा का विस्मय नही आता है। (२) रूस ने बिना ड्राईवर का राकेट छोडा। उसका विस्मय अज्ञानी को आता है। परन्तु ज्ञान करने वाला स्वय ज्ञान स्वरूप है। उसका (अपनी आत्मा का) विस्मय नही आता है, क्योकि पर की महिमा है। (३) अज्ञानी २४ घण्टे नौ प्रकार के पक्षो मे पागल बन रहा है क्योकि वह अनादि से एक एक समय करके पर के विस्मय मे पागल है।

प्रश्न ४० – पर का विस्मयपना कैसे मिटे ?

उत्तर – विस्मय करने वाले का जब तक विस्मय ना आवे, तब तक पर वस्तु का विस्मयपना नही मिटता है। इसलिए पात्र जीव को अपनी आत्मा का विस्मय लाना चाहिए।

प्रश्न ४१—अपनी आतमा का विस्मय कैसे आवे ?

उत्तर—[उत्तर के लिए पहिले पाठ का प्रश्न ४५ देखो]

प्रश्न ४२—अपनी आतमा का विस्मय लाने का कोई दूसरा भी उपाय है ?

उत्तर—जब तक सच्चे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ना हो, अर्थात् जब तक अपना विस्मय ना आवे, तब तक इनको भी अनुक्रम ही से अंगीकार करना। (१) प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरू और कुधर्म की मान्यता छोडकर, अरिहन्त देवादिक का श्रद्धान करना चाहिए। क्योकि उनका श्रद्धान करने से गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होता है। मोक्षमार्ग मे विघ्न करने वाले कुदेवादिक का निमित्त दूर होता है। (२) फिर जिनमत मे कहे हुए छह द्रव्य, सात तत्त्व, हेय-उपादेय-ज्ञेय, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादिक का स्वरूप और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक का स्वरूप, निश्चय-व्यवहार, उपादान उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, छह कारक, चार अभाव और छह सामान्य गुण आदि के नाम लक्षणादि सीखना चाहिए, क्योकि इस अभ्यास से तत्त्व श्रद्धान की प्राप्ति होती है। (३) फिर जिनसे स्व-पर का भिन्नत्व भासित हो, वैसे विचार करते रहना चाहिए, क्योकि इस अभ्यास से भेद ज्ञान होता है। (४) तत्पश्चात् एक स्व मे स्वपना मानने के हेतु स्वरूप का विचार करते रहना चाहिए, क्योकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अनुक्रम से अंगीकार करके फिर उसी मे से किसी समय देवादिक के विचार मे, कभी तत्त्व विचार मे, कभी स्व-पर के विचार मे तथा कभी आत्मविचार मे उपयोग लगाना चाहिए .. जीव पुरुषार्थ चालू रक्खे तो उसी क्रम से उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अर्थात् अपनी आत्मा का विस्मय आ जाता है।

प्रश्न ४३—मोक्षमार्ग मे विघ्न करने वाले कुदेवादिक की क्या पहिचान है ?

उत्तर—(१) शरीर की क्रिया से, कर्म के क्षयादि से, शुभभाव करने से धर्म की प्राप्ति होती है। (२) निमित्त मिले तो कल्याण हो। (३) दया-दान, पूजा-यात्रा-अणुव्रत-महाव्रतादि के शुभभावो से मोक्ष होता है आदि कथन करने वाले कुदेवादिक है और जो एक मात्र अपनी आत्मा के आश्रय से ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है ऐसा कथन करने वाले वही सच्चे देवादिक है। इस सच्चे निमित्त से अपना आश्रय ले, तो 'ज्ञान चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है' माना कहलायेगा।

प्रश्न ४४—'ज्ञान पर का कुछ नही कर सकता है' यह किस प्रकार है ?

उत्तर—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही कर सकता; उसे परिणमित नही कर सकता, प्रेरणा नही कर सकता; लाभ-हानि नही कर सकता, उस पर प्रभाव नही डाल सकता; उसकी सहायता या उपकार नही कर सकता। उसे मार-जिला नही सकता—ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियो ने पुकार-पुकार कर कही है। क्योकि जगत मे छहो द्रव्य नित्य स्थिर रहकर प्रति समय अपनी अवस्था का उत्पाद-व्यय करते रहते है। इस प्रकार अनन्त जड और चेतन द्रव्य एक-दूसरे से स्वतत्र है। इसलिए वास्तव मे किसी का नाश नही होता, कोई नया उत्पन्न नही होता है और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते है, इसलिए ज्ञान पर का कुछ नही कर सकता है।

प्रश्न ४५—'ज्ञान पर का कुछ नही कर सकता है।' कुछ दृष्टांत देकर समझाइये ?

उत्तर—(१) शरीर की बाल्य अवस्था के बाद कुमार अवस्था आती है। कुमार अवस्था के बाद युवा अवस्था आती है। युवा अवस्था के बाद प्रौढ अवस्था आती है। प्रौढ अवस्था के समय बाल्य अवस्था का, कुमार अवस्था का, युवा अवस्था का ज्ञान एक साथ है।

सकता है, परन्तु आत्मा इन सब अवस्थाओ को एक साथ नही ला सकता, क्योकि 'ज्ञान पर का कुछ नही कर सकता है। (२) शरीर की नीरोग अवस्था या शरीर की रोग अवस्था मे से एक अवस्था हो, उस समय आत्मा दूसरी अवस्था का ज्ञान कर सकता है, परन्तु दूसरी अवस्था को नहीं ला सकता, क्योकि 'ज्ञान पर का कुछ नही कर सकता है।' (३) एक क्षेत्रावगाही रूप से रहने वाला इस शरीर की एक अवस्था के समय, दूसरी अवस्थाओ का ज्ञान आत्मा कर सकता हैं। परन्तु आत्मा उन अवस्थाओ को ला नही सकता, बदल नही सकता है। तब अत्यन्त भिन्न, पर क्षेत्र मे रहने वाले पदार्थों की कोई भी अवस्था आत्मा ला सके, बदल सके, ऐसा त्रिकाल मे नही हो सकता है, क्योकि 'ज्ञान पर का कुछ नही कर सकता है।' (४) बुखार आया, खाँसी हुई, क्षय रोग हुआ; बुढापा आया, बाल सफेद हो गए, मुह साँपो जैसा भट्टा बन जाता है, सिनक बहता है, दस्त लग जाते हैं फोडा हो जाता है, लडका मर जाता है, माल चोरी हो जाता है, आग लग जाती है, आत्मा इन सबका ज्ञान कर सकता है परन्तु इनमे जरा भी हेर-फेर नही कर सकता है।'

प्रश्न ४६—कोई मनीषी कहता है कि आप कहते हो कि जीव शरीर आदि पर द्रव्यो का कुछ नहीं कर सकता लेकिन हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमने भाव किया तो हाथ उठाया, हमने चलने का भाव किया तो चल निकले, हमने भाव किए—तो शब्द निकाला, यह बात कैसे है ?

उत्तर—अज्ञानी को मिथ्यात्वरूपी पीलिया रोग हो गया है, इसलिए उसे जिनेन्द्र भगवान से विरुद्ध ही दिखता है। अच्छा भाई, तुम्हारे विचार मे जीव शरीरादि पर का कार्य कर सकता है। तो हम तुमसे पूछते हैं— देखो, यह हाथ सीधा था, अब टेढा हो गया, यह हमने किया। अब तुम इस हाथ को पीछे की तरफ लगा दो। वह कहता है कि ऐसा नही हो सकता, क्योकि शरीर का ऐसा

स्वभाव नही है। तो याद रखो, हाथ टेडा भी अपने स्वभाव से ही हुआ है, जीव से नही।

(१) वाल सफेद हैं, आप तो नही चाहते, तो कर दो काले। (२) शरीर का रग काला है, आप तो नही चाहते, तो कर दो गोरा (३) शरीर मे बुखार है, आप तो नही चाहते, तो कर दो दूर। (४) वहरा है; वह तो नही चाहता, तो कर दो ठीक। (५) अन्धा है, वह तो नही चाहता, कर दो ठीक। (६) जुखाम-खाँसी हो गया, आप तो नही चाहते, कर दो दूर। (७) फोडा हो गया, आप तो नही चाहते, कर दो ठीक। (८) ववासीर हो गई, आप तो नही चाहते, कर दो ठीक। (९) बुढापा आ गया, आप तो नही चाहते, कर दो ठीक (१०) घन सव चाहते है क्यो नही होता, ला दो तुम। (११) माल खाया जाता है, वनता है विष्टा, आप तो खून चाहते हैं, वना दा। (१२) टाँग कट गई, आप तो नही चाहते, जोड दो।

याद रखो, शरीर मे जुकाम-खाँसी, फोडा-फुन्सी, काला-गोरा यह पुदगल का स्वतन्त्र परिणमन है यह अपने स्वभाव से ही स्वय वदलता है क्योकि प्रत्येक द्रव्य कायम रहता हुआ, अपना प्रयोजनभूत कार्य करता हुआ स्वयं वदलता है—ऐसा वस्तु स्वभाव है।

(अ) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किए, लेकिन एक रजकण भी अपना नही वना। (आ) केवली भगवान को अनन्त चतुष्टय प्रगटा है वह उसी समय चार अघातिकर्म और औदारिक-शरीर का अभाव नही कर सकते है। उनका भक्त कहलाने वाला कहे, हम कर सकते है, यह आश्चर्य है। (इ) अज्ञानी को शरीरादि का कार्य मैं कर सकता हू ऐसा दिखता है। जैसे—चलती रेल मे वैठ कर वाहर देखे, तो पेड चलते दिखते हैं। घोड़े के अण्डे के दृष्टान्त के समान समझना चाहिए।

प्रश्न ४७—आत्मा पर का कुछ नहीं कर सकता, ऐसा कहीं समयसार में लिखा है ?

उ०—(१) नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्ध पर द्रव्यात्मतत्वयो ।
कर्तृकर्मत्व सम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥कलश २००

अर्थ—पर द्रव्य और आत्म तत्व का (कोई भी) सम्बन्ध नही है तब फिर उनमे कर्ता कर्म सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? इस प्रकार जहाँ कर्ता-कर्म सम्बन्ध नही है वहाँ आत्मा के परद्रव्य का कर्तृत्व कैसे हो सकता है ? कभी भी नही हो सकता है । (२) कलश १९९ मे "जोअज्ञान अन्धकार से आच्छादित होकरआत्मा को पर का कर्ता मानते हैं, वे चाहे मोक्ष के इच्छुक हो, तो भी लौकिक जनो की तरह उनको भी मोक्ष नही होता ।" तथा कलश २०१ मे "जो व्यवहार से मोहित होकर पर द्रव्य का कर्तापना मानते हैं । वह लौकिक जन हो या मुनिजन हो—वह मिथ्यादृष्टि ही है ।"(३) समयसार गा० ३०८ से ३११ तक मे बताया है कि "समस्त द्रव्यो के परिणाम जुदे-जुदे हैं सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामो के कर्ता हैं निश्चय से वास्तव मे किसी का किसी के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध नही है इसलिए जीव अपने परिणाम का ही कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है । इसी तरह अजीव अपने परिणाम का ही कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है । इस प्रकार जीव दूसरे के परिणामो का अकर्ता है । (४) अज्ञानीजन ही व्यवहार विमूढ होने से पर द्रव्य को ऐसा देखते मानते हैं कि "यह मेरा है ।" (समयसार गा० ३२४ से ३२७ की टीका से) । (५) इस जगत मे अज्ञानी जीवो का "पर द्रव्य का मैं करता हू" ऐसा पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा अहकार रूप अज्ञान अन्धकार जो अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि ससार से चला आ रहा है । (समयसार कलश ५५) (६) दो द्रव्य की क्रियाओ को एक द्रव्य करता है । ऐसा मानना जिनेन्द्र भगवान का मत नही है । (समयसार गा० ८५ का भावार्थ) (७) समयसार कलश ५१ से ५५ तक देखो । (८) इस लोक मे

एक वस्तु का अन्य वस्तु के साथ समस्त सम्बन्ध ही का निषेध किया गया है। भिन्न-भिन्न वस्तुओ मे कर्त्ता-कर्म की घटना नही होती, इसलिए ऐसा श्रद्धान करो कि कोई किसी का कर्त्ता नही है। पर द्रव्य पर का अकर्त्ता ही है।"

प्रश्न ४८—मोक्षमार्ग प्रकाशक मे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता ऐसा कहीं कहा है ?

उत्तर—"अनादिनिधन वस्तुयें भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है। कोई किसी के आधीन नही है। कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नही होती। उन्हे परिणमित कराना चाहे, वह कोई उपाय नही है, वह तो मिथ्यादर्शन ही है।"

प्रश्न ४९—'ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है' इसका रहस्य क्या है ?

उत्तर—हे आत्मा ! तेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। तू पर मे जरा भी हेर-फर नही कर सकता है ऐसा जाने-माने तो उसकी दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है वह पर्याय मे भगवान वन जाता है इस प्रकार धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ५०—'ज्ञान सर्व समाधान कारक है' यह किस प्रकार है ?

उत्तर—जैसे—किसी जगह एक पागल बैठा था। वहाँ अन्य स्थान से आकर मनुष्य, घोडा और धनादिक उतरे, उन सबको वह पागल अपना मानने लगा किन्तु वे सब अपने-अपने आधीन हैं अत. इसमे कोई आवे, कोई जाय और कोई अनेक रूप से परिणमन करता है। इस प्रकार सव की क्रिया अपने-अपने आधीन है तथापि वह पागल उसे अपने आधीन मानकर पागल होता है और उस पागल को किसी भले आदमी ने कहा, तू तो अलग है और यह सब अलग हैं, इनसे तेरा कोई सम्बन्ध नही है। उस पागल के दिमाग मे यह बात आते ही वडा आनन्दित हुआ, उसी प्रकार यह जीव जहाँ शरीर धारण करता है वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोडा, धनादिक स्वय

प्राप्त होते है यह जीव उन सबको अपना जानता है परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते, कोई जाते और कोई अनेक अवस्था रूप से परिणमते हैं। क्या यह उसके आधीन है ? वास्तव मे उसके आधीन नही है तो भी अज्ञानी जीव उसे अपने आधीन मान कर खेद खिन्न होता है। ऐसे समय मे सद्गुरु देव ने कहा, तू तो अमूर्तिक प्रदेशो का पुज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो का धारक, अनादि-निधन, वस्तुस्व है तथा शरीर मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिंड, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित, नवीन ही जिसका सयोग हुआ है, ऐसे यह शरीरादि पुद्गल जो कि तेरे से पर है। इनसे तेरा सम्बन्ध नही है। इतना सुनते ही सर्वसमाधान हो गया अर्थात शान्ति की प्राप्ति हो गई। इसलिए 'ज्ञान सर्व समाधान कारक है' कहा जाता है।

प्रश्न ५१—'ज्ञान सर्व समाधान कारक है' इसको जरा और स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—अज्ञानी जीव तो रागादि भावो के द्वारा सर्व द्रव्यो को अन्य प्रकार से परिणमाने की इच्छा करता है। किन्तु ये सब द्रव्य जीव की इच्छा के आधीन नही परिणमते इसलिए अज्ञानी को आकुलता होती है। यदि जीव की इच्छानुसार सब ही कार्य हो, अन्यथा न हो तो ही निराकुलता रहे। तब सद्गुरुदेव ने कहा ऐसा तो हो ही नही सकता। क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नही है। इसलिए सम्यक् अभिप्राय द्वारा स्व सन्मुख होने से ही रागादि भाव दूर होकर निराकुलता होती है। ऐसा सुनते ही सर्व समाधान हो गए और पर मे कर्त्ता-भोक्ता को खोटी बुद्धि का अभाव हो गया। इसलिए कहा जाता है "ज्ञान सर्व समाधान कारक है ?"

प्रश्न ५२—कोई लौकिक दृष्टान्त समझाइए 'ज्ञान सर्व समाधान कारक है ?'

उत्तर—एक सेठ जी थे उनकी उम्र ८० वर्ष की थी। उनके एक

ही इकलौता लड़का श्यामसुन्दर था। उनके पास १० लाख रुपया नकद था। सेठ जी ने श्यामसुन्दर को बुलाकर कहा, देखो बेटा श्याम सुन्दर हमारे पास १० लाख रुपया नकद है बाकी जेवर-दुकान-मकान है ही। तुम तमाम उम्र कुछ न करो तो भी यह रुपया समाप्त ना होगा। इसका बैंक सूद ही इतना बैठता है कि तुम रुपए-पैसो की तरफ से दुखी ना रहोगे। लेकिन तुम याद रखना कि तुम किसी भी प्रकार का व्यापार ना करना। लडके ने पिताजी के सामने तो हाँ करली। लेकिन बाद मे उसने विचारा यह रुपया तो पिताजी का कमाया हुआ है, मुझे स्वय भी कमाना चाहिए। ऐसा विचार कर सट्टे का काम किया। उसमे जल्दी ही ५ लाख रुपया का घाटा हो गया। अब रुपया देने को चाहिए, यदि ना दिया जावे तो सात दिन बाद दिवाला करार दे दिया जाता था। चार दिन तो जैसे तैसे बीत गये। पाँचवे दिन श्यामसुन्दर ने अपने पिताजी के मित्र से कहा, चाचाजी, मैने पिताजी के मने करने पर भी सट्टे का काम किया उसके ५ लाख रुपया का घाटा हो गया। पिताजी को पता चलेगा, वह मुझे मारेंगे और घर से बाहर निकाल देंगे। अब आप किसी प्रकार कृपा करके पिताजी से यह रुपया दिलवाओ। वह मित्र उसके पिताजी के पास गया और कहा, कि श्यामसुन्दर ने सट्टे में ५ लाख रुपया का घाटा दे दिया है। यह सुनते ही सेठजी आपे से बाहर हो गये और कहा मैंने तो उसे व्यापार करने की मनाही की थी। उसने व्यापार क्यो किया? मै ५ लाख रुपया नही दूंगा, चाहे वह पकडा जावे—मर जावे। मैं तो अब उसका मुह भी देखना नही चाहता।

मित्र ने कहा कल १२ बजे तक ५ लाख रुपया ना दोगे तो श्याम सुन्दर जहर खाकर मर जावेगा फिर मित्र ने कहा जरा विचारो! तुम्हारी उम्र ८० वर्ष की हो गयी। अब दो चार साल ही जीना है। परलोक मे रुपया साथ जावेगा नही। सब रुपया आपने उसी को दे देना ही तो था। उसने उसमे से ५ लाख रुपया खो दिया। उसमे

तुम्हारा क्या गया ? उसी का गया। सेठजी को यह बात जँच गयी। उनका सर्व समाधान हो गया और आकुलता मिट गयी। इससे सिद्ध हुआ "ज्ञान सर्वसमाधान कारक है।"

प्रश्न ५३—इन छह बोलो से क्या तात्पर्य रहा ?

उत्तर—शरीर, धन, सुख-दुख अथवा शत्रु-मित्र जन (यह सब कुछ) जीव के ध्रुव नही है ध्रुव तो ज्ञानात्मक, दर्शनरूप, इन्द्रियो के बिना सबको जानने वाला महापदार्थ, ज्ञेय-पर्यायो का ग्रहण-त्याग न करने से अचल और ज्ञेय-पर द्रव्यो का आलम्बन न लेने से निरालम्ब है। इसलिए भगवान आत्मा एक है, एक होने से वह शुद्ध है। शुद्ध होने से ध्रुव है। ध्रुव होने से एक मात्र वही उपलब्ध करने योग्य है। ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-अनुभव होना, यह ज्ञान के छह बोलो के जानने का तात्पर्य है। (प्रवचनसार गा० १९२ से १९३ तक का सार)।

प्रश्न ५४—इन छह बोल समझने वाले जीव को कैसे-कैसे भाव उत्पन्न नहीं होते हैं ?

उत्तर—(१) ऐसा क्यो, (२) इससे यह, (३) यह हो, यह ना हो आदि प्रश्न उपस्थित नही होते हैं। इन तीनो बोल का स्पष्टीकरण इसी शास्त्र के दसवें पाठ मे देखो।

"अब हमारा मन अन्यत्र कहीं नहीं लगता"

जिस प्रकार अमृत भोजन का स्वाद चखने के बाद देवो का मन अन्य भोजन मे नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य के निधान चैतन्यमात्र चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं लगता। [नियमसार कलश १३०]

पंचम प्रकरण

समयसार गा० १४ तथा कलश १० का रहस्य

प्रश्न १—शुद्धनय क्या है ?

उत्तर—आदि अन्त पूरन-सुभाव-सयुक्त है।
पर-स्वरूप पर-जोग कल्पना मुक्त है।।

सदा एक रस प्रगट कही है जैन मे।
शुद्धनयातम वस्तु विराजे बैन मे।।

अर्थ—जीव निगोद से लगाकर सिद्ध दशा तक परिपूर्ण स्वभाव से सयुक्त है और पर द्रव्यो की कल्पना से रहित है। सदैव एक चैतन्य रस से सम्पन्न है। ऐसा शुद्धनय की अपेक्षा जिनवाणी मे कहा है। ऐसे त्रिकाली एक रूप का अनुभव होना, तब शुद्धनय का पता चलता है अपने आपका अनुभव हुए बिना शुद्धनय का ज्ञान अज्ञान है। (१) बुधजनजी कहते हैं कि "जो निगोद मे सो ही मुझ मे, सो ही मोक्ष मझार, निश्चय भेद कुछ भी नाही, भेद गिनै ससार।। (२) इसी बात को नियमसार मे कहा है कि 'जैसे सिद्ध आत्मा है; वैसे ससारी जीव है, जिससे (वे ससारी जीव सिद्धात्माओ की भाँति) जन्म-जरामरण से रहित और आठ गुणो से अलकृत है ।।४७।। जिस प्रकार लोकाग्र मे सिद्ध भगवन्त अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा है, उसी प्रकार ससार मे (सर्व) जीव जानना ।।४८।।

प्रश्न २—दसवें कलश में 'शुद्धनय को कैसा बताया है ?

उत्तर—आत्म स्वभाव परभाव भिन्नमापूर्णमाद्यंत विमुक्तमेकम्।
विलीन संकल्प-विकल्प जालं प्रकाशयन् शुद्ध नयोऽभ्युदेति ।।१०।।

अर्थ—शुद्धनय आत्म स्वभाव को प्रगट करता हुआ उदय रूप हुआ है। (१) वह शुद्धनय कैसा है ? (परभाव भिन्नम्) पर द्रव्यो

और पर भावो से भिन्न है । (२) और कैसा है ? (आपूर्णम्) आत्म स्वभाव समस्त रूप से पूण है। (३) और कैसा है ? (आद्यन्त विमुक्त) आदि और अन्त से रहित अर्थात् अनादिअनन्त है । (४) और कैसा है ? (एक, एक है । (५) और कैसा है ? (विलीन सकल्प विकल्प जाल) सकल्प और विकल्पो से रहित है ।

प्रश्न ३—समयसार गाथा १४ मे इन पाँचो बोलो को किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—'अनबद्ध स्पृष्ट अनन्य अरू जो नियत देखे आत्म को ।
अविशेष अनसयुक्त उसको शुद्धनय तू जान जो ।।१४।।

अर्थ—(१) [अवद्धस्पृष्टम्) बन्ध रहित और पर के स्पर्श से रहित । (२) [अनन्यक] अन्य-अन्य पने से रहित है । (३) [नियतम्] चलाचल रहित । (४) [अविशेषम्] विशेष रहित अर्थात् भेद रहित (५) [असयुक्त] अन्य के सयोग से रहित ऐसा बताया है ।

प्रश्न ४—दसवें कलश और गा० १४ मे जो पाँच-पाँच बोल हैं । वह किस-किस अपेक्षा से है ?

उत्तर—(१) [द्रव्य अपेक्षा] पर द्रव्य और पर भावो से भिन्न । अवद्धस्पृष्ट अर्थात् वन्ध रहित पर के स्पर्श से रहित, ऐसा शुद्धनय है । (२) [क्षेत्र अपेक्षा] आपूर्ण अर्थात् समस्त रूप से पूर्ण । अनन्य अर्थात् अन्य-अन्य पने से रहित, ऐसा शुद्धनय है । (३) [काल अपेक्षा] अनादि अनन्त । नियम अर्थात् चलाचलता रहित, ऐसा शुद्धनय है । (४) [भाव अपेक्षा] एक अर्थात अभेद । अविशेप अर्थात् विशेप रहित ऐसा शुद्धनय है (५) [भव अपेक्षा] सकल्प विकल्प जालो से रहित असयुक्त अर्थात् अन्य के सयोग रहित, ऐसा शुद्धनय है । जो भव्यजीव ऐसे पाँच भाव रूप से एक अपनी आत्मा को देखता है । वह मोक्षरूप लक्ष्मी का नाथ वन जाता है ।

प्रश्न ५—द्रव्य अपेक्षा से आत्मा अबद्ध-अस्पृष्ट, पर द्रव्य और

परभावो से भिन्न है। इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—जैसे—कमलिनी का पत्र जल मे डूबा हुआ है। उसका जल से स्पर्शित रूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर जल से स्पर्श रूप अवस्था भूतार्थ है—सत्यार्थ है। उसी समय कमलिनी पत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्श रूप दशा अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा अनादि पुद्गल कर्म से वद्ध-स्पर्श रूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर वद्ध-स्पर्शपना भूतार्थ है—सत्यार्थ हे। उसी समय पुद्गल से किंचित् मात्र भी वद्ध-स्पर्श न होने योग्य आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर वद्ध-स्पर्शता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा कर्मों से वधा हुआ-स्पर्शा हुआ है उसी समय स्वभाव की अपेक्षा से देखने पर कर्मों से बन्धा और स्पर्शा हुआ नही है ऐसा जानकर अपने स्वभाव की दृष्टि करे, तो आठो कर्मों का अभाव होकर 'स मुक्त एव' वन जाता है।

प्रश्न ६—क्या आत्मा का कर्मों से सम्वन्ध होते हुए भी आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका क्या फल है ?

उत्तर—हाँ, हो सकता है, क्योकि कर्मों का सम्बन्ध अभूतार्थ है। और भगवान आत्मा भूतार्थ है। भगवान अमृत चन्द्राचार्य ने यही वात इसमे वतलायी है और इसका फल (आत्मा के अनुभव का फल) आठो कर्मो का अभाव वताया है।

प्रश्न ७—सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव कैसे हो जाता है ?

उत्तर—(१) जीव अज्ञान दशा मे अपने स्वरूप की असावधानी रखना था उसमे मोहनीय कर्म का उदय निमित्त होता था अव अपना अनुभव होने पर अपने स्वरूप की सावधानी रखता है। इससे मोहनीय कर्म का अभाव हो गया। (२) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव अपना ज्ञान पर की ओर मोडता था। उसमे ज्ञाना-

वरणीय कर्म निमित्त होता था। अब अपना ज्ञान अपनी ओर लगाने से ज्ञानावरणीय कर्म का अभाव हो गया। (३) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव अपना दर्शन पर की ओर मोडता था। उसमे दर्शनावरणीय कर्म निमित्त होता था। अब अपना दर्शन अपनी ओर लगाने से दर्शनावरणीय कर्म का अभाव हो गया। (४) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव अपना वीर्य पर की ओर मोडता था। उसमे अन्तराय कर्म निमित्त होता था। अब अपना वीर्य अपनी ओर लगाने से अन्तराय कर्म का अभाव हो गया। (५) पर की ओर झुकाव से अज्ञानी जीव को पर का सयोग होता था। इसमे नाम कर्म का उदय निमित्त होता था। अब पर की ओर झुकाव ना होने से, अपनी ओर झुकाव होने से नाम कर्म का अभाव हो गया। (६) जहाँ शरीर हो वहाँ ऊँच-नीच कुल मे उत्पत्ति होती थी। उसमे गोत्रकर्म का उदय निमित्त होता था। अब ऊच-नीच पना से रहित ज्ञायक स्वभाव की ओर झुकाव होने से गोत्र कर्म का अभाव हो गया (७) जहाँ शरीर होता है वहाँ बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता रोग-निरोग आदि होते थे। उसमे वेदनीयकर्म का उदय निमित्त होता था। अब शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि का भाव ना होने की अपेक्षा वेदनीय कर्म का अभाव हो गया। (८) अज्ञानदशा मे भव के भाव जीव न किये होने से आयु का बध होता था। अब भव के भाव का अभाव होने से आयु का अभाव हो गया ।

इस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन होते ही आठो कर्मों का अभाव हो जाता है। इसलिए अबद्धस्पृष्टादि रूप अपने एक भगवान का आश्रय लेकर शान्ति की प्राप्ति करना, भव्य जीव का परम कर्त्तव्य है।

प्रश्न ८—क्षेत्र अपेक्षा से आत्मा अनन्य, समस्त प्रकार से पूर्ण है। इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—जैसे—मिट्टी का ढक्कन, घडा, झारी इत्यादि पर्यायो से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है—सत्यार्थ है। उसी समय

सर्व पर्याय भेदो से किंचित् मात्र भी भेदरूप न होने वाले एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यन्व अभूतार्थ है—असत्यार्थ है, उसी प्रकार आत्मा का नारक आदि पर्यायो के अन्य-अन्य रूप से अन्यत्व भूतार्थ है –सत्यार्थ है। उसी समय सर्व पर्याय भेदो से किंचित् मात्र भेद रूप न होने वाले एक चैतन्याकार असख्यात प्रदेशी आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि गति सम्बन्धी शरीर होने पर, शरीर सम्बन्धी नाम कर्मादि का उदयादि होने पर और गति सम्बन्धी भाव होने पर भी गति रहित स्वभाव का एक रूप पडा है। जरा उसकी ओर दृष्टि करते ही चारो गतियो का अभाव होकर पचम गति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ९—क्या चारो गतियो का शरीर, कर्मादि और भावकर्म होने पर भी आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका फल क्या है?

उत्तर—हाँ हो सकता है, क्योंकि गति सम्बन्धी शरीर, कर्म का उदय और गति सम्बन्धी भाव अभूताथ है और भगवान आत्मा का गति रहित स्वभाव भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात दूसरे बोल मे समभायी है और इसका फल चारो गतियो के अभाव रूप मोक्ष की प्राप्ति बताया है। इसलिये शरीर, कर्म और शरीर सम्बन्धी भावो से रहित अगति स्वभाव पर दृष्टि करके पात्र जीवो को अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए।

प्रश्न १०—क्या आत्मा का अनुभव होते ही चारो गतियो के अभाव रूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है?

उत्तर—जैसे—लडकी का रिश्ता पक्का करने पर सगाई, विवाह न होने पर भी विवाह हो गया, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर एक दो भव होने पर भी ज्ञानी की दृष्टि अगति स्वभाव पर होने से चारो गति के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति कही जाती है। वास्तव मे जब

तक सम्यग्दर्शन नही है; तब तक चार गति रूप निगोद है और सम्यग्दर्शन होते ही चार गति के अभाव रूप मोक्ष है। क्योंकि चार गतियो के भाव का फल अन्त मे निगोद है और अगति रूप स्वभाव के लक्ष्य से मोक्ष है।

प्रश्न ११—मोक्ष कितने प्रकार का है ?

उत्तर—पाँच प्रकार का है—(१) शक्तिरूप मोक्ष, (२) दृष्टि मोक्ष, (३) मोहमुक्त मोक्ष, (४) जीवनमुक्त मोक्ष, (५) विदेह मोक्ष। याद रखना चाहिए, (अ) शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय से ही दृष्टि मोक्ष की प्राप्ति होती है। (आ) दृष्टि मोक्ष प्राप्त होने पर मोह मुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। (इ) मोहमुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर ही जीवन मुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है (ई) जीवन मुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर ही विदेह मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही अनादि-अनन्त नियम है।

प्रश्न १२—काल अपेक्षा से आत्मा नियत, अनादिअनन्त है। इसका रहस्य क्या है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—जैसे—समुद्र का वृद्धि-हानि रूप अवस्था मे अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ-सत्यार्थ है। उसी समय नित्य स्थिर समुद्र स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है, उसी प्रकार आत्मा का वृद्धि-हानि रूप पर्याय भेदो से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है—सत्यार्थ है उसी समय नित्य स्थिर आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा की पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी हानि-वृद्धि रहित एकरूप स्वभाव पृथक् पडा है। उसकी ओर दृष्टि करे, तो पच परावर्तन रूप ससार का अभाव हो जाता है।

प्रश्न १३—क्या पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी पंच परावर्तन रूप संसार का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर—हाँ हो सकता है, क्योकि पर्याय मे हानि-वृद्धिपना अभूतार्थ है और स्वभाव भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने तीसरे बोल मे यही बात बतलायी है और हानि-वृद्धि रहित स्वभाव के आश्रय का फल पच परावर्तन का अभाव बताया है।

प्रश्न १४—पच परावर्तन का स्वरूप संक्षेप मे क्या है ?

उत्तर—(१) जीव का विकारी अवस्था मे कर्म—नोकर्म रूप पुद्गलो के साथ जो सम्बन्ध होता है उसे द्रव्य परावर्तन कहते हैं। इस जीव ने लोकाकाश मे जितने पुद्गल हैं उनका अनन्तवार ग्रहण किया और छोडा। लेकिन मैं भगवान आत्मा हू ऐसा नही समझा। अत द्रव्य परावर्तन करना पडा। (२) जीव की विकारी अवस्था मे आकाश के क्षेत्र के साथ होने वाले सम्बन्ध को क्षेत्र परावर्तन कहते हैं। यह जीव सम्पूर्ण लोकाकाश के क्षेत्रो मे अनन्तबार जन्मा और मरा। लेकिन मैं भगवान आत्मा हू ऐसा अनुभव नही किया अत क्षेत्र परावर्तन करना पडा। (३) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे ऐसा कोई काल नही, जहाँ यह जीव अनन्तबार जन्मा और मरा ना हो परन्तु मैं भगवान आत्मा हू ऐसा अनुभव नही किया। अतः काल परावर्तन करना पडा। (४) मिथ्यात्व के ससर्ग सहित नरकादि की जघन्य आयु वाले भव से लेकर नववे ग्रैवेयक तक भवो की स्थिति को इस जीव ने अनन्तबार प्राप्त की और छोडी। परन्तु मैं भगवान आत्मा हू ऐसा अनुभव नही किया अत भव परावर्तन करना पडा। (५) अशुभ भाव से लेकर शुक्ललेश्या तक के भाव इस जीव ने अनन्तबार किये और छोड़े। परन्तु मैं भगवान आत्मा हू ऐसा अनुभव नही किया अत भाव परावर्तन करना पडा। यदि एक वार हानि-वृद्धि रहित स्वभाव की दृष्टि कर ले, तो उसी समय पच परावर्तन का अभाव हो जाता है।

प्रश्न १५—पंच परावर्तन के विषय मे परमात्म प्रकाश गाथा ७७ में क्या बताया है ?

उत्तर—मिथ्यात्व परिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ्मुख अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है। जिनसे कि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव रूपी पाँच प्रकार के ससार मे भटकता है। (१) द्रव्य परावर्तन=ऐसा कोई शरीर नही, जो इसने न धारण किया हो। (२) क्षेत्र परावर्तन=ऐसा कोई क्षेत्र नही जहाँ न उपजा हो-मरण न किया हो। (३) काल परावर्तन=ऐसा कोई काल नही है कि जिसमे इसने जन्म-मरण न किये हो। (४) भव परावर्तन=ऐसा कोई भव नही जो इसने न पाया हो। (५) भावपरावर्तन=ऐसे अशुद्धभाव नही है जो इसके न हुये हो। इस तरह अनन्त परावर्तन इसने किये हैं ऐसा बताया है।

प्रश्न १६—यदि मनुष्य भव मे जहां सच्चेदेव-गुरु-धर्म का सम्बंध मिला। वहाँ जीव अपना कल्याण ना करे, व्यर्थ के कोलाहल मे लगा रहे तो क्या होगा ?

उत्तर—चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद मे चला जायेगा।

प्रश्न १७—मनुष्य भव मे दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी यदि व्रतादिक मे ही लाभ मानता रहा तो निगोद जाना पड़ेगा। यह कहां लिखा है ?

उत्तर—(१) जब तक लोहा गरम है तब तक उसे पीट लो-गढ लो, इस कहावत के अनुसार इसी मनुष्य भव मे जल्दी आत्म स्वरूप को समझ लो, अन्यथा थोडे ही समय मे त्रस काल पूरा हो जायेगा और एकेन्द्रिय निगोद पर्याय प्राप्त होगी और उसमे अनन्तकाल तक रहना होगा। इसलिए इस मनुष्य भव मे ही पात्र जीवो को आत्मा का सच्चा स्वरूप समझ कर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर लेना चाहिए, क्योकि आचार्यकल्प प० टोडरमल ने कहा है कि "यदि इस अवसर मे भी तत्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गँवाये यातो मन्द रागादि सहित विषय-कषायो के कार्यों मे ही प्रवत या व्यवहार धर्म कार्यों मे प्रवत, तब अवसर चला जावेगा

और ससार मे ही भ्रमण होगा।........"ऐसे समय मे मोक्षमार्ग मे प्रवर्तन नही करे, तो किंचित् विशुद्धता पाकर फिर तीव्र उदय आने पर निगोदादि पर्याय को प्राप्त करेगा, इसलिए अवसर चूकना योग्य नही है। अब सर्व प्रकार से अवसर आया है ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है इसलिए वर्तमान मे श्री गुरु दयाल होकर मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे है, उसमे भव्य जीवो को प्रवृत्ति करना योग्य है।" [मोक्षमार्ग प्रकाशक]

प्रश्न १८—भाव अपेक्षा से आत्मा अविशेष—एक है। इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर— जैसे—सोने का चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुण रूप भेदो से अनुभव करने पर विशेपता भूतार्थ है—सत्याथ है। उसी समय जिसमे सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे स्वर्ण स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान—दर्शन आदि गुणरूप भेदो से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है—सत्यार्थ है उसी समय जिसमे सब विशेष विलय हो गये हैं ऐसे आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा मे गुण भेद सज्ञा, सख्या प्रयोजन आदि की अपेक्षा से है, प्रदेश भेद नही है। आत्मा मे गुणभेद होने पर भी तू अभेद भगवान ज्ञायक स्वभावी है। ऐसा जानकर अभेद स्वभावी का आश्रय ले तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव होकर शान्ति की प्राप्ति हो।

प्रश्न १९—क्या गुणभेद होने पर भी संसार के पाँच कारणो का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर— हाँ, हो सकता है क्योकि गुणभेद अभूतार्थ है और भगवान आत्मा अभेद भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने चौथे बोल मे यही बात समझाई है कि तू अभेद स्वभाव की दृष्टि करे तो

मसार के कारणो का अभाव होकर सिद्धदशा की प्राप्ति हो।

प्रश्न २०—संसार के पाँच कारण कौन-कौन से हैं, जिनसे संसार परिभ्रमण होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय और योग है जो ससार परिभ्रमण के कारण हैं।

प्रश्न २१—मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व—अनादि से एक-एक समय करके अज्ञानी की मिथ्यात्व दशा है। सम्पूर्ण दु खो का मूलकारण मिथ्यात्व ही है। जीव के जैसा श्रद्धान है, वैसा पदार्थ स्वरूप न हो और जैसा पदार्थ का स्वरूप ना हो वैसा यह माने यह मिथ्यादर्शन है। अज्ञानी जीव स्व और शरीर को एक मानता है किसी समय अपने को पतला, मोटा, बुखार वाला, कडा, नरम, गोरा, आदि मानता है यह मिथ्यादशन है।

प्रश्न २२—मिथ्यादर्शन को समझाने के लिए आचार्यकल्प पं० टोडरमल ने क्या दृष्टान्त और सिद्धान्त समझाया है ?

अर्थ—[अ] (१) जैसे—पागल को किसी ने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अग जानकर अपने को और वस्त्र को एक मानता है, उसी प्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया। यह जीव इस शरीर को अपना अग जानकर अपने को और शरीर को एक मानता है। (२) जैसे—वह वस्त्र पहिनानें वाले के आधीन होने से कभी वह फाडता है, कभी जोडता है, कभी खोसता है, कभी नया पहिनाता है इत्यादि चरित्र करता है, उसी प्रकार वह शरीर के कर्म के आधीन (निमित्त से) कभी कृष होता है। कभी स्थूल होता है, कभी नष्ट होता है, कभी नवीन उत्पन्न होता है इत्यादि चरित्र होते हैं। (३) जैसे—वह पागल उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीन क्रिया होती है, उससे वह महा खेदखिन्न

होता है, उसी प्रकार यह जीव उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीन क्रिया होती है इससे वह महा खेद खिन्न होता है।

[आ] (१) जैसे—जहाँ वह पागल ठहरा था वहाँ अन्य स्थान से आकर, मनुष्य, घोडा और धनादिक उतरे। उन सबको वह पागल अपना मानने लगा किन्तु वे सभी अपने-अपने आधीन हैं अत. इसमे कोई आवे कोई जावे और अनेक अवस्था रूप से परिणमन करता है इस प्रकार सबकी क्रिया अपने-अपने आधीन है। तथापि वह पागल उसे अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है; उसी प्रकार यह जीव जहाँ शरीर धारण करता है वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोडा, और धनादिक स्वय प्राप्त होते है यह जीव उन सबको अपना जानता है परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते हैं कोई जाते है, और अनेक अवस्था रूप से परिणमते है। क्या यह उसके आधीन है ? ये जीव के आधीन नही है तो भी यह जीव उसे अपने आधीन मानकर खेद खिन्न होता है यह सब मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न २३—यह जीव स्वयं जिस प्रकार है उसी प्रकार अपने को नहीं मानता और किन्तु जैसा नहीं है वैसा मानता है; यह मिथ्यादर्शन है इसे जरा खोलकर समझाइये ?

उत्तर—जीव स्वय (१) अमूर्तिक प्रदेशो का पुज (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो का धारक (३) अनादिनिधन (४) वस्तु स्व है तथा (१) शरीर मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिण्ड (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित (३) नवीन ही जिसका सयोग हुआ है (४) ऐसे यह शरीरादिक पुद्गल पर हैं। इन दोनो के सयोग रूप मनुष्य तिर्यंचादि अनेक प्रकार की अवस्थाये होती हैं। मूढ जीव इनमे अपनापना मानता है। स्व और पर का विवेक ना होने से यह मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न २४—मिथ्यादर्शन की कुछ पहिचान बताइए ?

उत्तर—(१) नौ प्रकार के पक्षो मे अपनेपने की बुद्धि, (२)

स्वपर की एकत्व बुद्धि; (३) शुभभावों से धर्म होता है ऐसी बुद्धि, (४) ज्ञेय से ज्ञान होना मानना, (५) शुभाशुभ भावो का ग्रहण-त्यागरूप बुद्धि, (६) अपने को नरकादि रूप मानने की बुद्धि, (७) पर मे इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि; (८) मनुष्य-तिर्यचो के प्रति करुणाभाव आदि मान्यताये, मिथ्यादर्शन के चिन्ह हैं।

प्रश्न २५—मिथ्यात्व की पहिचान क्यों बताई है ?

उत्तर—मिथ्यात्व का स्वरूप जानकर, भव्य जीवो को मिथ्यात्व छोड देना चाहिए क्योकि सब प्रकार के बध का मूल कारण मिथ्यात्व हैं। मिथ्यात्व नष्ट हुए बिना अविरति आदि दूर नहीं होते, इसलिए प्रथम मिथ्यात्व को छोडना चाहिए।

प्रश्न २६—अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) चारित्र सम्बन्धी निर्विकार स्वसम्वेदन से विपरीत अणुव्रत परिणामरूप विकार को अविरति कहते है। (२) पांच इन्द्रिय और मन के विषय एव पाँच स्थावर और त्रस की हिंसा, इन १२ प्रकार के त्याग रूप भाव का न होना, सो १२ प्रकार की अविरति है। अविरति को असयम भी कहते हैं।

प्रश्न २७—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्तम क्षमादि दश धर्मों मे उत्साह न रखना, यह प्रमाद है।

प्रश्न २८—कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व तथा क्रोधादिरूप आत्मा की अशुद्ध परिणति को कषाय कहते हैं। (२) कष्=ससार। आय=लाभ। जिस भाव से ससार का लाभ हो वह कषाय है अर्थात जो आत्मा को दु ख दे, उसे कषाय कहते है। कषाय २५ होती है।

प्रश्न २९—योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) मन-वचन-काय के निमित्त से आत्म प्रदेशो के परिस्पदन को योग कहते है। (२) आत्मा के प्रदेशो का सकम्प होना

सो योग है। योग के १५ भेद निमित्त को अपेक्षा से है। आत्मा मे योग नाम का गुण है। इसमे शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का परिणमन है।

प्रश्न ३०—क्या सम्यग्दर्शन होते ही संसार के पांच कारणों का अभाव हो जाता है?

उत्तर—(१) जैसे किसी को ९९९९९) रुपया देना है। वह यदि ९०००० हजार रुपया दे दे। तो ९९९९) रुपया बाकी रहता है, ९००००) हजार दे दिया तो बाकी आ ही जाता है। उसी प्रकार प्रकार मिथ्यात्व का अभाव होना ९००००) देने के बराबर है। जहां मिथ्यात्व का अभाव हो गया वहां अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव अल्पकाल मे हो ही जाता है इसलिए सम्यक्त्व होते ही ससार के पांच कारणों का अभाव हो जाता है।

(२) अनन्त ससार का कारण तो मिथ्यात्व है। उसका अभाव हो जाने पर अन्य बंध की गणना कौन करता है? जैसे वृक्ष को जड़ कट जाने पर फिर हरे पत्ते की अवधि कितनी रहती है? इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर जो कुछ कमी होती है वह सहज मिट ही जाती है। अत. मिथ्यात्व का अभाव होते ही ससार के पांच कारणो का अभाव हो जाता है।

प्रश्न ३१—भव अपेक्षा से आत्मा असंयुक्त, संकल्प-विकल्प जालो से रहित है। इसका क्या रहस्य है, जरा दृष्टान्त देकर समझाइए?

उत्तर—जैसे—जलका अग्नि जिसका निमित्त है ऐसी उष्णता के साथ सयुक्तारूप तप्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर (जल का) उष्णता रूप सयुक्तता भूतार्थ है—सत्यार्थ है। उसी समय एकान्त शीतलतारूप जल स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) सयुक्तता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है, उसी प्रकार आत्मा का कर्म जिसका निमित्त है ऐसे मोह के साथ सयुक्तारूप अवस्था से अनु-

भव करने पर सयुक्तता भूतार्थ है—सत्यार्थ है। उसी समय जो स्वय एकान्त ज्ञायक जीव स्वभाव (पर के, निमित्त के, भेद से रहित स्वाश्रित रूप से स्थायी ज्ञान स्वभाव) है उसके (चैतन्य स्वभाव) के समीप जाकर अनुभव करने सयुक्तता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा की पर्याय मे मोह राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी आत्मा का परम पारिणामिक भाव एक रूप पडा है उसकी ओर दृष्टि करे तो औदयिक भावो के अभावरूप औप-शमिक भाव तथा धर्म का क्षयोपशमपना प्रगट होकर क्रम से पूर्ण क्षायिकपना प्रगट होता है। ऐसा जानकर अपने पारिणामिक भाव का आश्रय लेकर क्षायिक दशा प्रगट करना पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न ३२—क्या पर्याय मे मोह, राग द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी औदयिक भावो का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर—हाँ, हो सकता है क्योकि पर्याय मे मोह राग-द्वेष भाव अभतार्थ है और भगवान आत्मा भूतार्थ है भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात इस पाँचवें बोल मे समझाई है कि तेरी पर्याय मे मोह राग-द्वेष होने पर भी जरा तू अपने परम पारिणामिक भाव की दृष्टि करे तो पूर्ण क्षायिक दशा प्रगट होती है ?

प्रश्न ३३—पाँच भावो का विशेष खुलासा समझाओ ?

उत्तर—पांच भावो का विशेष खुलासा के लिए जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग चार मे 'जीव के पाँच असाधारण भावो का वर्णन' किया है वहाँ से देखियेगा आपका कल्याण होगा।

प्रश्न ३४—कलश १० तथा गाथा १४ मे जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट आदि पांच भाव रूप से देखता है। उसे तू शुद्धनय जान, इसको समझाने से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—पाँच रूप से नही परन्तु एक रूप से जानता-अनुभवता

और स्थिर करता है उसने शुद्धनय को जाना। वास्तव मे इस गाथा मे पाँच प्रकार से कथन किया है। आचार्य भगवान को पात्र भव्य जीवो के प्रति करुणा है कि किसी भी प्रकार इस अज्ञानी जीव का अज्ञान मिटकर धर्म की प्राप्ति हो वास्तव मे प्रथम वोल के समझने से ही कल्याण हो जाना चाहिए जो इतने से नही समझा उसे दूसरे वोल से; फिर तीसरे वोल से; फिर चौथे वोल से और फिर पाँचवे वोल से समझाया है। यदि पात्र जीव समझ जावें तो स्वय भगवान वन जाता है और यदि ना समझे तो चारो गतियो मे घूमकर निगोद चला जाता है। अवद्धस्पृष्टादि को समझने से मोक्ष का पथिक वने। यह तात्पर्य पाँच वोलो से है।

प्रश्न ३५—जो शुद्धनय को जान जाता है। उसका फल अनादि से जिन, जिनवर और जिनवर वृषभो ने क्या-क्या वताया है?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँच कारणो का अभाव होकर मोक्ष का पथिक वन जाता है। (२) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच परावर्तन का अभाव होकर क्रम से सिद्ध दशा को प्राप्ति इसका फल है। (३) पच परमेष्टियो मे उसकी गिनती होने लगती है। (४) चारो गतियो का अभाव होकर पचम गति मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। (५) औदायिकादि-भावो से दृष्टि हटकर परम पारिणामिक भाव का महत्व आ जाता है (६) आठो कर्मो का अभाव हो जाता है। (७) गुणस्थान, मार्गणा और जीवसमास से दृष्टि हटकर अपने भगवान का पता चल जाता है। (८) श्री समयसार गाथा ५० से ५५ तक कहे २९ वोलो से दृष्टि हटकर अपने भगवान का पता चल जाता है। (९) मैं ज्ञायक और लोकालोक ज्ञेय है ऐसा पता चल जाता है। (१०) शुद्धनय का पता चलते ही (अ) सिद्ध भगवान क्या करते है ओर सिद्धदशा क्या है। (आ) अरहत भगवान क्या करते हैं और अरहत दशा क्या है। (इ) आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु क्या करते है और आचार्य उपाध्याय

और साधुपना क्या है। (ई) श्रावकपना सम्यग्दृष्टिपना क्या है और श्रावक सम्यग्दृष्टि क्या करते हैं। (उ) अनादि से मिथ्यादृष्टि क्या करते हैं और मिथ्यादृष्टिपना क्या है। आदि सब बातों का पता चल जाता है (११) समस्त जिन शासन का पता चल जाता है। (१२) देव गुरुशास्त्र क्या है इसका पता भी शुद्धनय के जानने पर ही होता है। इसलिए हे जीव! तू एक बार अनादिअनन्त अपने शुद्ध नय का आश्रय ले तो सादिसाँत दशा प्रगट होकर सादिअनन्त दशा को प्राप्ति हो जाती है। यह १०वाँ कलश तथा गा० १४ का रहस्य है।

श्रावक का आचरण

रात्रि भोजन में त्रसहिंसा होती है, इसलिए श्रावक को उसका त्याग होता ही है। इसी प्रकार अनछने पानी मे भी त्रसजीव होते हैं। शुद्ध और मोटे कपडे से छानने के पश्चात् ही श्रावक पानी पीता है। अस्वच्छ कपड़े से छाने तो उस कपडे के मैल मे ही जीव होते हैं; इसलिये कहते हैं कि शुद्ध वस्त्र से छने हुए पानी को काम मे लेवें। रात्रि को तो पानी पिये ही नहीं और दिन मे छानकर पिये। रात्रि को त्रसजीवो का संचार बहुत होता है; इसलिये रात्रि के खान-पान में त्रसजीवों की हिंसा होती है। जिसमे त्रसहिंसा होती है—ऐसे किसी कार्य के परिणाम व्रती श्रावक को नहीं हो सकते।

—पूज्य श्री कानजी स्वामी

श्रावक धर्म प्रकाश, पृष्ठ ५३-५४ (नया सस्करण)

छठा प्रकरण

समयसार गाथा ३४९ से ३८२ तक का रहस्य

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता

प्रश्न १—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है। इस विषय मे नाटक समयसार सर्व विशुद्धि द्वार ५३ मे क्या बताया है ?

उत्तर—

ज्ञेयाकार ग्यान की परिणति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहि होइ।
ज्ञेयरूप षट दरव भिन्न पद, ग्यानरूप आतमपद सोइ ।।

जानै भेद भाउ सु विचछन, गुन लच्छन सम्यक द्रिग जोइ।
मूरख कहै ग्यानमय आकृति, प्रगट कलंक लखै नहि कोई ।।

विशेष अर्थ—जीव पदार्थ ज्ञायक है ज्ञान उसका गुण है वह अपने ज्ञान गुण से जगत के छहो द्रव्यो को जानता है और अपने को भी जानता है। इसलिए जगत के सब जीव-अजीव पदार्थ और वह स्वय आत्मा ज्ञेय है और आत्मा स्वपर को जानने से ज्ञायक है। भाव यह है आत्मा ज्ञेय भी है और ज्ञायक भी है। आत्मा के सिवाय सब पदार्थ ज्ञेय है। जब कोई ज्ञेय पदार्थ ज्ञान मे प्रतिभासित होता है तब ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है। पर ज्ञान ज्ञान ही रहता है ज्ञेय नही हो जाता और ज्ञेय ज्ञेय ही रहता है, ज्ञान नही हो जाता, न कोई किसी मे मिलता है। ज्ञेय का स्वचतुष्टय जुदा रहता है और ज्ञायक का स्वचतुष्टय जुदा रहता है। परन्तु विवेकशून्य वैशेषिक आदि ज्ञान मे ज्ञेय की आकृति देखकर ज्ञान मे अशुद्धता ठहराते है यह मिथ्या मान्यता है।

प्रश्न २—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड़

अनुसार ज्ञेय जाना जाता है। इस विषय में समयसार गाथा ३७३ से ३८२ तक २२२ कलश का क्या रहस्य है।

उत्तर—जैसे दीपक का स्वभाव घट पटादि को प्रकाशित करनें का है। उसी प्रकार ज्ञान का स्वभाव ज्ञेय को जानने का है ऐसा वस्तु स्वभाव है। (२) ज्ञेय को जानने मात्र मे ज्ञान मे विकार नही होता। ज्ञेयो को जानकर उन्हे अच्छा-बुरा मानकर, आत्मा रागी-द्वेषी-विकारी होता है जो कि अज्ञान है। (३) इसलिए आचार्य देव ने सोच किया हैं कि—वस्तु का स्वभाव तो ऐसा है, फिर भी यह आत्मा अज्ञानी होकर राग-द्वेष रूप क्यो परिणामित होता है ? अपनी स्वभाविक उदासीन अवस्यारूप क्यो नही रहता ? (४) इस प्रकार आचार्यदेव ने जो सोच किया है सो उचित ही है। क्योकि ज्ञानियों को जव तक शुभ राग है तब तक प्राणियो का अज्ञान से दुखो देखी कर करुणा उत्पन्न होती है और उससे सोच भी होता है।

प्रश्न ३—श्री समयसार गा० ३५६ से ३६५ तक का सार क्या है ?

उत्तर—(१) जिसे सम्यग्ज्ञान हो जाता है। वह जानता है कि आत्मा वास्तव मे अपने ज्ञान की पर्याय को जानता है और परज्ञेय तो ज्ञान का निमित्त मात्र है। 'पर ज्ञेय को जाना ऐसा कथन व्यवहार है। (२) यदि परमार्थ दृष्टि से देखा जावे तो आत्मा पर को जानता हैं' सो मिथ्या है, क्योकि ऐसा होने पर आत्मा और ज्ञेय (ज्ञान और ज्ञेय) दोनो एक हो जावेंगे। 'जिसका जो होता है वह होता है' यह कानून है। इसलिए वास्तव मे यदि यह कहा जावे कि 'पुद्गल का ज्ञान है' तो ज्ञान पुद्गलरूप-ज्ञेय रूप हो जावेगा। अतः यह समझना चाहिए कि निमित्त सम्बन्धी अपने ज्ञान की पर्याय को आत्मा जानता है। (३) आत्मा-आत्मा को जानता है यह भी स्व-स्वामी अश है ऐसे भेद से भी धर्म की प्राप्ति नही होगी क्योकि लक्षण से लक्ष्य का ज्ञान कराना, यह भी भेद है। जब तक भेद मे पड़ा रहेगा

तब तक सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति नही होगी। अत "ज्ञायक ज्ञायक ही है"—यह निश्चय है।

प्रश्न ४—समयसार गाथा ३५६ से ३६५ तक दश गाथाओ की टीका में श्री अमृतचन्द्राचार्य जी ने छह बार क्या बात बतलाई है ?

उत्तर—"एक द्रव्य का अन्य द्रव्यरूप मे सक्रमण होने का निषेध किया है।" इस बात को टीका मे छह बार बताया है।

प्रश्न ५—समयसार कलश २१४ का सार क्या है ?

उत्तर—कोई आशका करता है कि जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि जीव ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को करता है—भोगता है। उसका समाधान किया है कि झूठे व्यवहार से कहने को है। द्रव्य के स्वरूप का विचार करने पर पर द्रव्य का कर्त्ता जीव नही है इससे यह समझना चाहिए पर द्रव्य रूप ज्ञेय पदार्थ अपने भाव से परिणमित होते हैं और ज्ञायक आत्मा अपने भावरूप परिणमन करता है। वे एक दूसरे का परस्पर कुछ नही कर सकते। इसलिए यह व्यवहार से ही कहा जाता है कि "ज्ञायक पर द्रव्यो को जानता है" निश्चय से ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है।

प्रश्न ६—इस विषय मे प्रवचनसार गा० १७३ से १७४ तक मे क्या बताया है ?

उत्तर—उन दोनो गाथाओ मे प्रश्न और उत्तर हैं।

प्रश्न ७—आत्मा अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक कर्म-पुद्गलो के साथ कैसे बंधता है ?

उत्तर—आत्मा अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक पदार्थों को कैसे जानता है ? जैसे वह मूर्तिक पदार्थों को जानता है, उसी प्रकार मूर्तिक कर्म पुद्गलो के साथ बधता है।

प्रश्न ८—शास्त्रो में आता है कि "वास्तव मे अरूपी आत्मा का रूपी पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध न होने पर भी अरूपी आत्मा का

रूपी के साथ सम्बन्ध होने का व्यवहार भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है, इसे स्पष्ट करके समझाइए ?

उत्तर—(अ) जहाँ यह कहा जाता है कि "आत्मा मूर्तिक पदार्थों को जानता है' वहाँ परमार्थत अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक पदार्थों के साथ कोई सम्वन्ध नही है उसका तो मात्र उसे मूर्तिक पदार्थ के आकार रूप होने वाले ज्ञान के साथ ही सम्वन्ध है और उस पदार्थ का ज्ञान के साथ के सम्बन्ध के कारण ही 'अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पदार्थ को जानता है' ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का सम्वन्ध रूप व्यवहार सिद्ध होता है। उसी प्रकार जहाँ यह कहा जाता है कि 'अमुक आत्मा का मूर्तिक कर्म पुद्गलो के साथ बध है' वहाँ परमार्थत अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक कर्म-पुद्गलो के साथ कोई सम्वन्ध नही है। आत्मा का तो कर्म-पुद्गल जिसमे निमित्त है ऐसे रागद्वेषादि भावो के साथ ही सम्वन्ध (वन्ध) है और उन कर्म निमित्तक राग-द्वेपादि भावो के साथ सम्बन्ध होने से ही 'इस आत्मा का मूर्तिक कर्म पुद्गलो के साथ बन्ध है' ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का बन्ध रूप व्यवहार सिद्ध होता है। (आ) मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादिक के साथ वास्तव मे कोई सम्वन्ध नही है वे उस मनुष्य से सर्वथा भिन्न हैं तथापि स्त्री-पुत्र-धनादिक के प्रति राग करने वाले मनुष्य को राग का वन्धन होने से और उस राग मे स्त्री पुत्र-धनादि के निमित्त होने से व्यवहार से यह अवश्य कहा जाता है कि 'इस मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादि का बन्धन है। उसी प्रकार आत्मा का कम-पुदगलो के साथ वास्तव मे कोई सम्वन्ध नही है वे आत्मा से सर्वथा भिन्न है तथापि राग-द्वेपादि भाव करने वाले आत्मा को राग-द्वेषादि भावो का बन्धन होने से और उन भावो मे कर्म पुदगल निमित्त होने से व्यवहार से यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'इस आत्मा को कर्म पुदगलो का बन्धन है।' [प्रवचनसार १७४ के भावार्थ से]

प्रश्न ६—इस निश्चय-व्यवहार के बताने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—(१) आत्मा का ज्ञान पर्याय के साथ सम्बन्ध है ज्ञेय पदार्थो के साथ सम्बन्ध नही है—यह बात यथार्थ है। (२) अज्ञानी आत्मा का भी रागद्वेषादि भावो से सम्बन्ध है द्रव्यकर्म-नोकर्म के साथ सर्वथा सम्बन्ध नही है—यह बात यथार्थ है। (३) सुख-दुःख का सम्बन्ध सुख गुण की सुख-दुख पर्याय से है पदार्थों के साथ संबध नही है—यह बात यथार्थ है। (४) सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध आत्मा के श्रद्धा गुण से है देव-गुरु-शास्त्र से, दर्शन मोहनीय उपशमादि से सर्वथा सम्बन्ध नही है—यह बात यथार्थ है। (५) केवलज्ञान का सम्बन्ध ज्ञान गुण से है वज्रवृषभ नाराचसंहनन, चौथाकाल, ज्ञानावरणीय के अभाव से सर्वथा सम्बन्ध नही है—यह बात यथार्थ है।

तात्पर्य है कि 'निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नही है कि जिससे शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति के लिए बाह्य सामग्री ढूंढने की व्यग्रता से जीव व्यर्थ ही परतन्त्र-दुखी होकर आकुलित होते है।' [प्रवचनसार गाथा १६ की टीका से]

प्रश्न १०—शास्त्रो मे आता है जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप पुद्गल पिण्ड का कर्ता है ज्ञेय से ज्ञान होता है—सो वहाँ क्या समझना चाहिए?

उत्तर—कहने को तो है, वस्तु स्वरूप विचारने पर कर्त्ता नही है, क्योकि व्यवहार दृष्टि से ही कहने के लिए सत्य है वस्तु स्वरूप का विचार करने पर झूठा है।

प्रश्न ११—शास्त्रो मे व्यवहार कथन किस प्रकार के होते हैं, उनके लिए जिन वाणी मे क्या दृष्टान्त दिए हैं?

उत्तर—(१) जैसे हाथी के दांत बाहर देखने के जुदे हैं तथा भीतर चबाने-खाने के जुदे हैं। वैसे ही जैन ऋषि, मुनि और आचार्यों के रचे हुए सिद्धान्त शास्त्र, सूत्र और पुराणादि है वे तो हाथी के बाहर के दांतो समान समझना तथा भीतर का यथार्थ आशय जिसका जो वही जानता है। यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि शास्त्रो मे

अनेक उपचार कथन है, उनका आशय पकडकर परमार्थ अर्थ समझना यदि शब्दो को पकडा जावेगा, शास्त्र का आशय समझ मे नही आवेगा।

(२) एक साहूकार ने अपने पुत्र को परदेश भेजा। कितने ही दिन के बाद बेटे की बहू बोली, "मैं तो विधवा हो गई" तब सेठ ने अपने पुत्र के नाम पत्र भेजा उसमे ऐसा लिखा कि "बेटा! तेरी बहू तो विधवा हो गई" तब वह सेठ का पुत्र उस पत्र का पढकर शोक करने लगा। किसी ने पूछा—"तुम शोक क्यो करते हो?" उसने कहा "हमारी स्त्री विधवा हो गयी। यह सुनकर वह बोला तुम तो प्रत्यक्ष जीवित मौजूद हो फिर तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो गयी? तब वह सेठ का पुत्र बोला 'तुमने कहा वह तो सच है परन्तु मेरे दादा जी का लिखा हुआ पत्र आया है उसे झूठा कैसे मानूँ?" यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि अज्ञानी शास्त्र का आशय जानते नही और आशय समझे बिना ही कहते हैं कि "शास्त्र मे कर्म के उदय से निमित्त से लाभ हानि होने है ऐसा लिखा है वह क्या झूठ है? ज्ञानी कहते हैं "भाई! शास्त्रकार का आशय तो यह है कि—आत्मा स्वय मौजूद है और उसकी परिणति कर्म के उदय से या निमित्त से होती है ऐसा मानना यह तो मेरी मौजूदगी मे तेरी स्त्री विधवा हो और "मेरी स्त्री विधवा हो गई" ऐसा कहकर जोर-जोर से रोने जैसा है। शास्त्र के वे कथन तो उपचार मात्र कर्म की अवस्था का तथा निमित्त का ज्ञान कराने के लिए है।

(३) व्यवहार अभूतार्थ है सत्य स्वरूप का निरूपण नही करता किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है। इसलिए निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और व्यवहार नय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना—

ऐसा शास्त्रो मे बताया है।

प्रश्न १२—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है इसे दृष्टान्त से समझाइए ?

उत्तर—एक शिकारी था। उसकी तीन पत्नियाँ थी। एक ने कहा मुझे प्यास लगी है पानी लाओ। दूसरी ने कहा "बिछाने के लिए मृग चर्म लाओ" तीसरी ने कहा "मुझे गायन सुनाओ।" शिकारी ने तीनो को एक ही उत्तर दिया "सरो नात्थी" यह प्राकृत का शब्द है इस शब्द से तीनो का मतलब हल हो गया। पहली ने समझा "सर न अस्ति" तालाब नही है पानी कहाँ से लाऊँ। दूसरा ने समझा 'शरो न अस्ति" बाण नही है मृग चर्म कहाँ से लाऊँ। तीसरी ने समझा "स्वर न अस्ति" मेरा स्वर ठीक नही है गायन कैसे सुनाऊँ। विचारिए! क्या शब्द से ज्ञान हुआ ? नही, परन्तु तीनो को अपने-अपने ज्ञान के उघाड के कारण ज्ञान हुआ। यदि शब्द से ज्ञान होता तो तीनो को एक सा ही ज्ञान होना चाहिए था सो हुआ नही। इससे सिद्ध हुआ शब्द मे ज्ञान नहीं, ज्ञान ज्ञान से आता है। इसलिए ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता है परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न १३—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है इसके लिए दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—तीर्थंकर भगवान को ओ गर्जना रूप दिव्यध्वनि खिरती है समवसरण मे बारह प्रकार की सभा होती है। क्या सब जीवो को एक सा ज्ञान होता है ? आप कहेगे नही। वास्तव मे जिस जीव को जितना ज्ञान का उघाड होता है, उतना-उतना भगवान की दिव्य-ध्वनि पर आरोप आता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न १४ भगवान महावीर स्वामी की वाणी सुनकर गौतम

गणधर ने अन्तर्मुहूर्त मे १२ अग की रचना की और आप कहते हैं कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता है ?

उत्तर—गौतम गणधर को मति, श्रुति, अवधि और मन.पर्यय ज्ञान था। वह दिव्यध्वनि से नही हुआ क्योंकि यदि दिव्यध्वनि से ज्ञान होता तो वहाँ सब जीवो को होना चाहिए था सो हुआ नही। इसलिए दिव्यध्वनि से ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न १५—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड के कारण ज्ञेय जाना जाता है। तीसरा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर—हमारे सामने आम रखा है उसमे स्पर्श-रस-गध वर्ण चारो एक साथ हैं। जिस समय हम रग का ज्ञान करते हैं उस समय स्पर्श-रसादि का ज्ञान नही है। जिस समय रस का ज्ञान करते हैं उस समय स्पर्श गधादि का ज्ञान नही है। यदि आम से ज्ञान होता तो स्पर्शादि चारो का ज्ञान एक साथ होना चाहिए सो होता नही। इससे सिद्ध हुआ, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न १६—क्या पाँच इन्द्रियाँ—छठा मन से भी ज्ञान नहीं होता है ?

उत्तर—बिल्कुल नही, क्योंकि यह सब पुद्गल स्कधो की पर्याये है इनमे ज्ञान नही है। जिसमे स्वय ज्ञान नही वह ज्ञान का कारण कैसे बन सकती हैं ? कभी भी नही। इससे सिद्ध हुआ, सयोग के अनुसार ज्ञान नही, परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार सयोग जाना जाता है।

प्रश्न १७—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है। चौथा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर—सामने अमरूद का बाग है। बाग मे पानी दिया। देखो पेड के ज्ञान का उघाड़ मात्र स्पर्श का ही है। पानी मे स्पर्श-रस-गंध-वर्णादि सब है, लेकिन पेड को रस-गंध-वर्णादि का ज्ञान नही है। इससे सिद्ध होता है ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न १८—सामने लोकालोक है हमे ज्ञान क्यो नही होता और केवली को क्यो होता है ?

उत्तर—केवली को अपने ज्ञान के उघाड के कारण ही ज्ञान होता है लोकालोक के कारण नही। यदि लोकालोक के कारण ज्ञान होता तो हमे भी उसका ज्ञान होना चाहिए। अत सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड के कारण ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न १९—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड के कारण ज्ञेय जाना जाता है—पांचवां उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर—सामने आदमी सो रहा है। उसे देखकर दूसरा आदमी कहता है कि देखो। इसके सिर पर कितने मच्छर उड रहे हैं। वे उसके लम्बे-लम्बे बाल हैं और ज्ञान किया मच्छरो का। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है तो बालो का ज्ञान होना चाहिए था, मच्छरो का नही। अत सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नही परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न २०—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है—छठा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर—रात्रि के समय मे अन्धेरे मे जा रहे हैं लकडी के ठूठ को भूत मान लिया और डर के मारे दुखी हो रहे हैं। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता तो लकडी के ठूंठ को भूत न मानता। इससे सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता, परन्तु ज्ञान के उघाड के कारण ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न २१—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड के कारण ज्ञेय जाना जाता है कोई और उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर—कालिज मे प्रिंसिपल बहुत से लडकों को एक साथ एक सा पाठ पढाता है। क्या सब लडको को एक सा ज्ञान होता है ? आप कहेंगे—कभी भी नही। अत यह सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न २२—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है—इसमे क्या रहस्य है ?

उत्तर—जैसे आत्मा मे अनन्त गुण हैं। उस प्रत्येक गुण का उसकी पर्याय से तो सम्बन्ध कहो परन्तु पर से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। क्योकि विश्व मे जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म अधर्म, आकाश एक-एक और काल लोक प्रमाण असख्यात हैं। प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण अनादिअनन्त कायम रहता हुआ अपनी-अपनी प्रयोजन भूत क्रिया करता हुआ स्वय बदलता रहता है ऐसा वस्तु स्वभाव है। यह बात जिसके ज्ञान मे आ जावे तो अनन्त ससार का अभाव होकर मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावे। ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नही होता परन्तु ज्ञान के उघाड के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है यह उसका रहस्य है।

प्रश्न २३—ज्ञेय-ज्ञायक के सबध मे कलश २१६ का भाव क्या है ?

उत्तर—वास्तव मे किसी द्रव्य का स्वभाव किसी अन्य द्रव्य रूप नही होता। जैसे— चाँदनी पृथ्वी को उज्ज्वल करती है किन्तु पृथ्वी चाँदनी की किंचित मात्र भी नही होती, उसी प्रकार ज्ञान ज्ञेय को जानता है किन्तु ज्ञेय ज्ञान का किंचित् मात्र भी नही होता। आत्मा का ज्ञान स्वभाव है इसलिए ज्ञान की स्वच्छता मे ज्ञेय स्वयमेव झलकता है किन्तु ज्ञान मे ज्ञेयो का प्रवेश नही होता है।

प्रश्न २४—ज्ञेय-ज्ञायक के सम्बन्ध मे कलश २१५ मे क्या बताया है ?

उत्तर—जिसने शुद्ध द्रव्य के भाव मे बुद्धि को लगाया है और जो तत्व का अनुभव करता है उस पुरुष को एक द्रव्य के भीतर कोई भी अन्य द्रव्य रहता हुआ कदापि भासित नही होता। ज्ञान ज्ञेय को जानता है, सो तो यह ज्ञान से शुद्ध स्वभाव का उदय है। जबकि ऐसा है तब फिर लोग ज्ञान को अन्य ज्ञेय के साथ स्पर्श होने की मान्यता से आकुलबुद्धि वाले होते हुए शुद्ध स्वरूप से क्यो च्युत होते हैं? अर्थात् आत्मा ने द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्म को छुआ ही नही तब मैं पर का कर्ता-भोक्ता हू—यह बुद्धि कहाँ से आयी? अज्ञान से आयी है। इसलिए हे भव्य! तेरा तेरे से बाहर कुछ नही है। जरा अपने अन्दर देख, अपूर्व शान्ति का वेदन होगा। तात्पर्य यह है कि जीव समस्त ज्ञेय को जानता है तथापि समस्य ज्ञेय से भिन्न है ऐसा चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक सब जानते हैं।

प्रश्न २५—ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध को समझने के लिए किस शास्त्र की, कौन-कौन सी गाथायें-टीकायें देखना चाहिए?

उत्तर—(१) समयसार गा० ३५६ से ३६५ तक तथा गाथा ३७३ से ३८२ तक टीका सहित और कलश २१४ से २२२ तक देखना चाहिए। (२) प्रवचनसार गाथा १७३ से १७४ तक टीका सहित देखना चाहिए।

प्रश्न २६—ज्ञेय ज्ञायक के दोहे सुनाओ?

उत्तर—

सकल वस्तु जग मे असहाई। वस्तु वस्तु सो मिलै न काई॥
जीव वस्तु जानै जग जेती। सोऊ भिन्न रहे सब सेती॥

सुद्ध दरब अनुभव करे, शुद्ध दृष्टि घट माँहि।
तातै समकित वत नर, सहज उच्छेदक नाँहि॥
सकल ज्ञेय-ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन॥

—०—

सप्तम प्रकरण

समयसार गाथा १९ से ३८ तक का रहस्य

निश्चय स्तुति

प्रश्न १—जितेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—

कर इन्द्रियजय ज्ञान स्वभाव रू, अधिक जाने आत्म को।
निश्चय विषे स्थित साधुजन, भाषें जितेन्द्रिय उन्हीं को ।।३१।।

अर्थ—जो इन्द्रियो को जीतकर ज्ञान स्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (भिन्न) आत्मा को जानते है (अनुभवते है) उन्हे जो निश्चयनय मे स्थित साधु है वे वास्तव मे जितेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न २—तीर्थंकर की वस्तु स्थिति क्या है ?

उत्तर—जिससे तिरा जाता है, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह तीर्थ अपने मे ही है। 'कर' अर्थात् प्रगट करे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपनी आत्मा मे प्रगट होवे, वह तीर्थंकर की निश्चय स्तुति है।

प्रश्न ३—निश्चय स्तुति की शुरूआत कब से होती है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान से निश्चय स्तुति की शुरूआत होती है।

प्रश्न ४—निश्चयस्तुति कितने प्रकार की है और वह किस-किस जीव को होती है तथा उसका फल क्या है ?

उत्तर—तीन प्रकार की है। (१) ४, ५, ६ गुणस्थान मे जघन्य निश्चय स्तुति होती है। (२) सातवे गुणस्थान से ११ वे गुणस्थान तक मध्यम निश्चयस्तुति होती है। (३) सांतवे से १२ वे गुणस्थान तक उत्तम निश्चयस्तुति होती है और १३, १४ वाँ गुणस्थान तथा सिद्धदशा निश्चयस्तुति का फल है।

प्रश्न ५—हम मन्दिर मे स्तुति बोलते हैं। अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा करते हैं। क्या यह हमारी निश्चयस्तुति नहीं है ?

उत्तर—अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना चाहे वह द्रव्यलिगी मुनि हो, किसी को भी निश्चयस्तुति नही हो सकती है क्योकि स्तुति का उच्चारण भाषा वर्गणा का कार्य है हाथ जोडना, सामग्री चढाना आदि सब जड का कार्य है इसमे स्तुति की बात ही नही है। परन्तु जो जीव यह मानता है कि मैं पाठ बोलता हू, सामग्री चढाता हूँ, यह पर मे अपने पने की बुद्धि मिथ्यात्व भाव है। उस समय जितनी मन्द कषाय है, वह पापानुबन्धी पुण्य है; जैसे बहू का गाना गाने से बताशा मिलता है, बहू नही मिलती है, उसी प्रकार पुण्य से सयोग मिलता है, मोक्षमार्ग और मोक्ष नही मिलता है। अज्ञानी पुण्य के सयोग मे पागल बना रहता है वह परम्परा निगोद का कारण है। वास्तव मे अज्ञानी की स्तुति पूजा आदि सब राग की स्तुति-पूजा है, मोह भजन है जो ससार के लिए कार्यकारी है।

प्रश्न ६—अज्ञानी की स्तुति-पूजा आदि मोह भजन है, संसार के लिए कार्यकारी है मोक्ष और मोक्षमार्ग के लिए कार्य कारी नहीं है ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर—

'वो धर्म को श्रद्धे प्रतीत, रुचि स्पर्शन करे।

वो भोग हेतु धर्म को, नहि कर्म के क्षेय के हेतु को ॥२७५॥

टीका—अभव्य जीव नित्य कर्मफल चेतनारूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञान चेतनामात्र वस्तु की श्रद्धा नही करता, क्योकि वह सदा (स्व-परके) भेद विज्ञान के अयोग्य है। इसलिए वह कर्मों से छूटने के निमित्तरूप, ज्ञान मात्र भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नही करता (किन्त) भोग के निमित्तरूप, शुभकर्म मात्र अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा करता है इसलिए वह अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा, प्रतीत, रुचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोग-मात्र को प्राप्त होता है किन्तु कभी भी कर्मों से मुक्त नही होता। इसलिए उसे भूतार्थ धर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ)

श्रद्धान भी नही है। ऐसा चारो अनुयोगो मे बताया है। [समयसार गा० २७५]

प्रश्न ७—निश्चय स्तुति कैसे प्रगट होवे ?

उत्तर—जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार तत्त्व का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब निश्चय स्तुति प्रगट होती है।

प्रश्न ८—वर्तमान मे जितने दिगम्बर धर्मी आत्मा के अनुभव बिना स्तुति, पूजा, सामायिक करते हैं और उसे करते-करते मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा ऐसा मानते हैं। क्या वे सब पागल ही हैं ?

उत्तर—जैसे—कोई दिल्ली जाने के लिए कलकत्ता की सडक पर चले तो कभी भी दिल्ली नही पहुच सकता है, उसी प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना स्तुति, पूजा, सामायिक, महाव्रतादि करके मर भी जावें तो उससे मोक्षमार्ग कभी भी प्रगट नही होगा। परन्तु मोक्षमार्ग के बदले चारो गतियो की हवा खाता हुआ निगोद पहुच जावेगा। जैसे—एक के अक बिना बिन्दियो की कीमत नही होती, उसी प्रकार आत्मा के अनुभव हुए बिना दिगम्बर धर्मियो के पूजा-स्तुति आदि सब अरण्य रुदन है। इसलिए आत्मा को समझे बिना व्रतादि करने वाले सब पागल ही हैं। क्योकि कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार गा० १५३ मे कहा है—व्रत और नियमो को धारणा करते हुए भी तथा शील तप करते हुए जो परमार्थ से वाह्य है अर्थात् आत्म अनुभव-ज्ञान से रहित हैं वे निर्वाण को प्राप्त नही होते है।

प्रश्न ६—कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार गा० ३१ मे निश्चय स्तुति किसे कहा है ?

उत्तर—मूल गाथा मे इन्द्रियो को जीतकर ज्ञान स्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (जुदा) आत्मा को जानते है (अनुभवते हैं) उन्हे जो निश्चयनय मे स्थित साधु है वे वास्तव मे जितेन्द्रिय (निश्चय स्तुति) कहते हैं।

प्रश्न १०—अपनी आत्मा को अन्य द्रव्यो से अधिक (जुदा) जानता है, इस पर से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर—चार बोल निकलते है—(१) जब अपनी आत्मा को कहा, तब अन्य सब अद्रव्य है। (२) जब अपनी आत्मा को जीव कहा, तब अन्य सब अजीव है। (३) जब अपनी आत्मा को अतीन्द्रिय कहा, तब अन्य सब इन्द्रिय है। (४) जब अपनी आत्मा को ज्ञायक कहा, तब अन्य सब ज्ञेय हैं अर्थात् अपनी आत्मा को जब द्रव्य, जीव, अतीन्द्रिय और ज्ञायक कहा, तब उसकी अपेक्षा अन्य सब द्रव्य, अद्रव्य, अजीव, इन्द्रिय और ज्ञेय है।

प्रश्न ११—'इन्द्रिय' शब्द पर से भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कितने बोल निकाले हैं ?

उत्तर—तीन बोल निकाले है—(१) द्रव्येन्द्रियो, (२) भावेन्द्रियो (खडखड ज्ञान), (३) इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थो (शास्त्र पढना, दिव्यध्वनि सुनना, पूजा-पाठ आदि।

प्रश्न १२—भगवान अमृतचन्द्रचार्य ने द्रव्येन्द्रियो का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर—(१) अन्तरग मे, (२) प्रगट अति सूक्ष्म, (३) चैतन्य स्वभावी अपनी भगवान आत्मा को, (४) बहिरग मे, (५) प्रगट अतिस्थूल, (६) जड स्वभावी जड इन्द्रियो से, (७) निर्मल, (८) भेदाभ्यास की; (९) प्रवीणता के द्वारा सर्वथा अलग किया, उसे द्रव्येन्द्रियो को जीतना कहा है। इस प्रकार नौ बोल आए हैं। जड इन्द्रियो से ज्ञायक को भिन्न रूप से अनुभव करना द्रव्येन्द्रियो का जीतना है।

प्रश्न १३—अज्ञानी द्रव्येन्द्रियो का जीतना किसे कहता है ?

उत्तर—आँख फोड लो, कान मे डट्ठे ठोक लो, मुह को बन्द कर लो, आदि को द्रव्येन्द्रियो को जीतना कहता है। यह सब जड की क्रिया है, इसे अपनी मानना, अनन्त ससार का कारण है।

प्रश्न १४—भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'भावेन्द्रियो' का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर—कर्ण भावेन्द्रिय शब्द को जानती है, उसी प्रकार एक-एक इन्द्रिय अपने अपने विषय द्वारा ज्ञान को खण्ड-खण्ड रूप जानती है वह भावेन्द्रिय=खण्ड-खण्ड ज्ञान क्षयोपशमिक रूप है। भावेन्द्रियो के सामने अपना अखण्ड ज्ञायक स्वभाव है। पात्र जीव ऐसा जाने कि क्षायोपशमिक खण्ड-खण्ड ज्ञान जितना मेरा स्वभाव नही है, परन्तु अखण्ड ज्ञान मेरा स्वभाव है ऐसा अनुभव ज्ञान-आचरण करे तो यह भावेन्द्रियो को जीतना कहा है। अखण्ड ज्ञायक स्वभाव द्वारा भावेन्द्रियो को सर्वथा अपने से भिन्न अनुभव करना, भावेन्द्रिय का जीतना है।

प्रश्न १५—रागद्वेष वाले मे और भगवान मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—(१) रागद्वेष वाले की वाणी खण्ड-खण्ड रूप होती है, भगवान की वाणी अखण्ड होती है। (२) राग-द्वेष वाला क्रम से जानता है, भगवान युगपत् परिपूर्ण जानते है। (३) राग द्वेप वाला मन द्वारा विचारता है, भगवान का ज्ञान परिपूर्ण होने से उनको विचार नही करना पडता है। (४) राग द्वेष वाले का पैर आगे-पीछे पडता है भगवान डग नही भरते हैं। (५) रागद्वेष वाले को क्षायोपशमिक ज्ञान अल्प है। भगवान का क्षायिक ज्ञान पूर्ण है। (६) रागद्वेष वाले को क्षायोपशमिक ज्ञान मे पूर्ण ज्ञेय नही आता है, भगवान को सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञेय हैं। (७) रागद्वेप वाले की आँखे निमेष (पलक) मारती है, भगवान की आँखे निमेष (पलक) नही मारती है।

प्रश्न १६—'भावेन्द्रियो का जीतना' कौन से गुणस्थान से शुरू हो जाता है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान मे अपना ज्ञायक अखण्ड स्वभाव अनुभव मे आ जाता है। तब से खण्ड-खण्ड क्षायोपशमिक ज्ञान समाप्त हो

जाता है, क्योकि अखण्ड स्वभाव पर दृष्टि आने से उसके ज्ञान को भी अखण्ड कहा जाता है।

प्रश्न १७—भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थों का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर—भगवान की वाणी, शास्त्रादि भावेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने मे आवे, वे इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थ है वे सगरूप हैं और भगवान आत्मा असग स्वभावी है। पात्र जीव ऐसा जाने कि 'इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थ तो सगरूप है, परन्तु मेरा असग स्वभाव एक रूप है ऐसा जानकर असग स्वभाव का आश्रय-ज्ञान-आचरण वर्ते, उसे इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थों का जीतना कहा है।

प्रश्न १८—इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थों का ग्राह्य-ग्राहक के ज्ञान का असंगपना कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—(१) जो कोई इन्द्रियो के विषय है तथा रागादि हैं। वे सब जानने योग्य पर ज्ञेय है। वे (परज्ञेय) ग्राह्य है और इन सबको जानने वाली ज्ञान पर्याय वह ग्राहक है। वास्तव मे परज्ञेय और ज्ञान की पर्याय सर्वथा भिन्न है परन्तु जहाँ तक ग्राहक ऐसी जो ज्ञान की पर्याय पर ज्ञेयो को ग्राह्य बनाती है। वहाँ तक अज्ञानी को दोनो का (परज्ञेय और ज्ञान पर्याय का) एकपना अनुभव मे आता है। (२) जब ग्राहक ऐसी जो ज्ञान की पर्याय परज्ञेयो की तरफ से हटकर स्वज्ञेय ऐसा जो निज चैतन्य तत्त्व को ग्राह्य बनाती है। तब अपनी चैतन्य शक्ति का असगपना अनुभव मे आता है। यह ही इन्द्रियो के विषयो का जीतना है। इसलिए ज्ञान की पर्याय जो ग्राहक है वह (ज्ञान की पर्याय ग्राहक) अपने पारिणामिक भाव को ग्राह्य बनाती है तब सच्चा ग्राहक-ग्राह्यपने का असगपना दृष्टि मे आता है।

प्रश्न १९—ज्ञान का स्वभाव कैसा है ?

उत्तर—समस्त पदार्थों को जानने पर भी उस रूप नही होता है और उन सब पदार्थों से भिन्न ही रहता है। समस्त विश्व को जानने

पर भी उनसे अलिप्त रहता हुआ, विश्व के ऊपर रहता हुआ रहना यह ज्ञान का स्वभाव है।

प्रश्न २०—द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इद्रियो के विषयभूत पदार्थ, इन तीनो में से प्रथम किसे जीतना चाहिए ?

उत्तर—अन्तरग मे प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्य स्वभावी, अखड, असग आत्मा का आश्रय लेते ही तीनो एक साथ जीते जाते हैं। कथन करने मे क्रम पडता है। अरे भाई, एक वार अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो सव झगडा निवट जावेगा और अपने भगवान का पता चल जावेगा। अपने आपका अनुभव हुए विना तीन काल तीन लोक मे 'इनको जीतने' का उपचार भी नही आ सकता है।

प्रश्न २१—स्तुति कितने प्रकार की है ?

उत्तर—स्तुति तो एक ही प्रकार की है परन्तु उसका कथन पाँच प्रकार से है। जिस जीव ने अपने शक्ति रूप चैतन्य स्वभाव जो 'शक्तिरूप स्तुति' हैं उसका आश्रय लिया तो एकदेश भावस्तुति जो सवर-निर्जरा रूप है, उसकी प्राप्ति होती है। पूर्ण भाव स्तुति की की प्राप्ति न होने से भूमिका के अनुसार जो अस्थिरता का राग हैं, वह द्रव्यस्तुति है और द्रव्यस्तुति का जडस्तुति के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्वन्ध है।

प्रश्न २२—तीर्थंकर की निश्चयस्तुति में नौ पदार्थ, काल, औपशमिकादिक पाँचभाव, देव-गुरु-धर्म हेय-उपादेय-ज्ञेय, सुखदायक, दु.खदायक, समयसार, सयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ ताकि स्पष्ट रूप से समझ मे आवे ?

उत्तर—(१) शक्तिरूप स्तुति=जीव तत्व। (२) एकदेश भाव स्तुति-सवर-निर्जरा। (३) द्रव्यस्तुति=आस्रव वध, पुण्य-पाप। (४) जड स्तुति-अजीव। (५) पूर्ण भावस्तुति-मोक्ष। इस प्रकार नौ पदार्थ आ गये। बाकी के बोल इसी प्रकार जबानी बताओ।

प्रश्न २३—क्या अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना स्तुति नहीं हो सकती है ?

उत्तर—कभी नही हो सकती है। जैसे—हीरे जवाहरात की दुकान पर जिसको हीरे जवाहरात की पहिचान हो और लेना देना जानता हो वही दुकान पर बैठ सकता है, उसी प्रकार जिनको अपनी आत्मा का अनुभव ज्ञान आचरण वर्तता हो, वह ही भगवान की स्तुति कर सकता है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि स्तुति नही कर सकता है।

प्रश्न २४—वर्तमान मे जो जीव साँसारिक प्रयोजन के लिए भक्ति-पूजादि करते है। क्या वह कुछ कार्यकारी है ?

उत्तर—(१) भक्ति-पूजादि ससार भ्रमण के लिए कार्यकारी है। आचार्यकल्प प० टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक मे लिखा है कि "जो जीव कपटकरि आजीविका के अर्थि वा वडाई के अर्थि वा किछु विषय-कषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारि जैनी होते हैं, वे तो पापी ही है। अति तीव्र कषाय भये ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। क्योकि जैनधर्म ससार का नाश के अर्थि सेइए है। ताकर जो साँसारिक प्रयोजन साध्या चाहै सो वडा अन्याय करै है। तातै ते तो मिथ्यादृष्टि है ही। इसलिए साँसारिक प्रयोजन लिए जो धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो है ही।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २१६]

प्रश्न २५—भक्ति आदि शुभभावो के विषय मे मोक्षमार्ग प्रकाशक मे क्या-क्या बताया है ?

उत्तर—(१) (अ) जो जीव प्रथम से ही साँसारिक प्रयोजन सहित भक्ति करता है। उसके तो पाप का ही अभिप्राय हुआ। [आ] परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बँध है। इसलिए मोक्ष का कारण नही है। [इ] यथार्थता की अपेक्षा तो ज्ञानी के सच्ची भक्ति है अज्ञानी के नही है [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२२] (२) साँसारिक प्रयोजन के हेतु अरहतादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने

के कारण पाप बंध ही होता है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ८] (३) कितने ही पुरुषो ने पुत्रादिक की प्राप्ति के अर्थ अथवा रोग-कष्टादि दूर करने के अर्थ चैत्यालय पूजनादि कार्य किये, स्तोत्रादि किये, नमस्कार मंत्र स्मरण किया। परन्तु ऐसा करने से तो निःकाँक्षित गुण का अभाव होता है। निदान बंध नामक आर्त्तध्यान होता है। पाप का ही प्रयोजन अन्तरंग मे है। इसलिए पाप का ही बंध होता है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २७९] (४) बाह्य मे अणुव्रत-महाव्रतादि साधते है। परन्तु अन्तरंग परिणाम नही है और स्वर्गादिक की वाँछा से साधते है सो इस प्रकार साधने से तो पाप बंध होता है इसलिए पात्र जीवो को साँसारिक प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नहीं है।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४२]

प्रश्न २६—भाव स्तुति, द्रव्य स्तुति और जड़ स्तुति क्या है ?

उत्तर—(१) भावस्तुति=निर्विकल्प दशा है। (२) द्रव्य स्तुति=पुण्य बंध का कारण है और जडस्तुति=पुण्य-पाप या धर्म का कारण नही है, ज्ञान का ज्ञेय है।

↔ इति निश्चय स्तुति ↔

वहाँ सब से पहले पूरे प्रयत्न द्वारा सम्यग्दर्शन को भले प्रकार अंगीकार करना चाहिये, क्योंकि उसके होने पर ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र होता ॥२१॥

आचार्य अमृतचन्द्र . पुरुषार्थ सिद्धि-उपाय

आठवाँ प्रकरण

मुनि का स्वरूप

प्रश्न १—मुनि का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर – निर्ग्रन्थ हैं, निर्मोह है, व्यापार से प्रविमुक्त हैं।

हैं साधु, चउ आराधना मे, जो सदा अनुरक्त है ।।गा० ७५।।

अर्थ—समस्त व्यापार से रहित, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप रूप चार आराधना मे सदा रक्त, निग्रन्थ और निर्मोह, ऐसे साधु होते हैं।

प्रश्न २—रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक १० मे मुनि का स्वरूप क्या बताया है ?

उत्तर—

विषयाशावशातीतो निरारम्भो ऽपरिग्रहः।

ज्ञान ध्यान तपोरक्त स्तपस्वी स प्रशस्यते ।।१०।।

अर्थ—पाँच इन्द्रियो के विषयो की आशा से रहित आरम्भ परिग्रह रहित, ज्ञान-ध्यान तप मे लीन वह साधु प्रशसा योग्य हैं। कैसे है दिगम्बर यति ? इसी ग्रन्थ के १११ श्लोक मे लिखा है सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इत्यादि गुणनिका निधान है। और कैसे हैं ? नही है अन्तरग-बहिरग परिग्रह जिनके-ऐसे मठ-मकान-उपासरा-आश्रमादि रहित एकाकी अथवा गुरुजनो की चरणो की लार कभी वन मे, कभी पर्वत की निर्जन गुफा मे, कभी घोर वन मे, कभी नदी किनारे मे नियम रहित है नित्य बिहार जिनका, असयमी गृहस्थो के सगम रहित, आत्मा की विशुद्धता जो परम वीतराग का साधन करता हुआ और लौकिक जनकृत पूजा स्तवन-प्रशसादि को नही चाहता, परलोक मे देवलोकादिक के भोगो को तथा इन्द्र, अहमिन्द्र ऐश्वर्य को रागरूप अगारे तप्त महान आताप उपजावने वाली, तृष्णा के बधाने वाले जानकर, परम अतीन्द्रिय आकुलता रहित

आत्मिक सुख को सुख जानकर, देहादिक मे ममत्व रहित आत्म कार्य साधे है।

प्रश्न ३—आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी ने सामान्यरूप से साधु का स्वरूप क्या बताया है ?

उत्तर—जो विरागी होकर समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग रूप मुनि धर्म अगीकार करके अन्तरग मे तो शुद्धोपयोग के द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते है, अपने उपयोग को बहुत नही भ्रमाते हैं। जिनके कदाचित् मन्दराग के उदय मे शुभोपयोग भी होता है, परन्तु उसे भी हेय मानते हैं। तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोगयोग का तो अस्तित्व ही नही रहता है, ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३]

प्रश्न ४—मुनि किसका भोक्ता होता है ?

उत्तर—अतीन्द्रिय आनन्द का ही मुनि भोक्ता होता है।

प्रश्न ५—मुनि नग्न ही क्यों होना चाहिए ?

उत्तर—अनादिकाल से आज तक कोई भी संसारी जीव स्पर्शन इन्द्रिय के बिना रहा नही। विचारिये, एक तरफ स्पर्शन इन्द्रिय है, दूसरी तरफ अतीन्द्रिय आत्मा है। स्पर्शन इन्द्रिय को जीते बिना अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति नही हो सकती, अत स्पर्शन इन्द्रिय रहित अखण्ड आत्मा की प्राप्ति के लिए अखण्ड स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना चाहिए। इसको जीते बिना मुनि नही हा सकता, इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए अर्थात् बाह्य मे कपडे का धागा भी मुनि को नही होना चाहिए।

प्रश्न ६—अखण्ड आत्मा की प्राप्ति वाले मुनि को नग्न क्यों होना चाहिए ?

उत्तर—रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड रूप है। देखो ! सुनना हो तो कान से होता है। देखना हो तो आँख से हाता है, सूँघना हो तो नाक से होता है और चखना हो तो रसना से होता है। इसलिये ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड रूप है और

स्पर्शन इन्द्रिय तमाम शरीर मे अखड है। अत अखड स्पर्शन इन्द्रिय को जीते विना अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नही हो सकती है। इसलिए अखड आत्मा की प्राप्ति करने वाले मुनि नग्न ही होते है।

प्रश्न ७—लोक में क्यो कहा जाता है, कि रसना इन्द्रिय को जीतना मुश्किल है और लोकोत्तर मार्ग मे कहा जाता है कि स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना मुश्किल है ऐसा क्यों है ?

उत्तर—[अ] कान दो, काम एक सुनना होता है। आँख दो, काम एक देखना होता है। नाक के छेद दो, काम एक सूँघना होता है। जीभ एक, काम दो होते है, एक बोलना और दूसरा चखना। इस प्रकार कर्ण, चक्षु और घ्राण दो दो हैं और काम एक-एक है। लेकिन रसना एक, काम दो हैं। इस प्रकार जीभ का चार गुना काम हुआ, इसलिए लौकिक मे कहा जाता है कि जीभ को जीतना मुश्किल है। [आ] नग्न शरीर वाले को विकार होने पर सबको पता चल जाता है इसलिए विकार को जीतने वाला मुनि नग्न ही होना चाहिए इसी से लोकोत्तर मार्ग मे स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना मुश्किल कहा है।

प्रश्न ८—जीभ हमे क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर—जीभ अन्दर अधेरी गुफा मे पड़ी है। इसके ऊपर पैने ३२ दान्त पुलिस जैसे खडे । ऊपर दो होठ किवाड सरीखे हैं। जीभ ऐसी प्रतिकूल अवस्था मे पडी है तो भी वह अपने स्वभाव को नही छोडती और चखने योग्य पदार्थ कटु हो या स्वादिष्ट हो तो भी वह उसका स्वाद ले लेती है। उसी प्रकार हे आत्मा ! तुझे भी जीभ की तरह, अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को प्रतिकूल या अनुकूल सयोग मिलने पर भी नही छोडना चाहिए। यह जीभ से पात्र जीव को शिक्षा मिलती है।

प्रश्न ९—विशेष रूप से बंध का निमित कारण कौन है ?

त्तर—पुद्गल मे स्पर्श, रस, गध, वर्ण ये चार विशेष गुण है। े रस की पाँच पर्याये, गन्ध की दो पर्यायें, वर्ण की पाँच पर्याये पर्श की आठ पर्यायें हैं। इन आठ मे से स्निग्ध और रूक्ष को र बाकी छह पर्यायो के कारण तो स्कघरूप बध होता ही नही स्निग्ध और रुक्ष पर्याय के कारण परमाणुओ मे परस्पर वध है, उसी प्रकार आठ कर्मों मे से चार अघाति कर्म तो बध के नही है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का ा उघाड है वह भी बध का कारण नही है और जितना उघाड ;, वह भी बध का कारण नही, मात्र मोहनीय कर्म ही बध का त कारण है और मोहनीय कर्म मे भी विशेष रूप से दर्शन ीय कर्म बध का निमित्त कारण है।

श्न १०—मात्र मोहनीय कर्म बंध का निमित्त कारण है। इसमे ्या बताना चाहते हैं ?

त्तर—जैसे – परमाणुओ मे स्निग्ध-रुक्ष के कारण बध होता है। प्रकार आत्मा मे भी राग द्वेष ही बध का कारण हैं। राग-द्वेप ीतना जभी बनेगा, जबकि स्पर्शन इन्द्रिय को जीता जावे। इस- मुनि नग्न ही होना चाहिए।

श्न ११—दीपक क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—जैसे-जब तक दीपक मे तेल रहता है, तव तक वह जलता है, उसी प्रकार जब तक जीव से मोह रहेगा तब तक वह के बैल की तरह चारो गतियो मे जन्म-मरण के दु ख उठाता । अत मुनि राग-द्वेप, मोह रहित होता है। इसलिए मुनि ही होना चाहिए।

श्न १२—जीभ हमे और क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर—जैसे—हाथ पर चिकनाहट लग जावे तो हम हाथो को पानी से धोते हैं तथा जीभ कितने ही चिकने पदार्थ खावे उस ाबुन और पानी की आवश्यकता नही है क्योकि जीभ का स्वभाव

लूखा है। जीभ अपने लूखे स्वभाव के कारण चिकनाई को तोडे विना नही रहती है, उसी प्रकार जो जीव अपने त्रिकाली ज्ञायक भगवान का आश्रय लेता है उसको रागद्वेष उत्पन्न ही नही होता। तब व्यवहार से कहा जाता है कि इसने रागद्वेष को छोडा है। मुनि को अपना आश्रय ही वर्तता है इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होता है।

प्रश्न १३—क्या मुनि को नग्न देखने से विकार उत्पन्न होता है?

उत्तर—बिल्कुल नही। जैसे—छोटा बच्चा है, नग्न है। यदि वह राजमहल मे चला जावे, तो रानियाँ उसे प्यार करती है और बच्चे को नग्न देखने से किसी को भी विकार उत्पन्न नही होता है। यदि जवान विषयासक्त महल मे चला जावे, तो उसका सिर काट दिया जाता है; उसी प्रकार मुनि को स्वय तो विकार उत्पन्न नही होता इतना ही नही, बल्कि वीतरागी मुनि को देखकर किसी को भी विकार उत्पन्न नही होता है क्योकि मुनि की नग्नता निर्दोषता का सूचक है, इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होता है।

प्रश्न १४—वीतरागी साधु को भूमिकानुसार कैसा-कैसा राग हेय बुद्धि से होता है, स्पष्ट खोलकर समझाइए ?

उत्तर—अनन्तानुबधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादि के अभाव रूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है, जो शुद्धि है वह वीतराग रूप है, उसे सकलचारित्र कहते है। छठे गुणस्थान मे आने पर हेय बुद्धि से २८ मूलगुणो का पालन, बाईस परिषहो का सहन, बारह प्रकार के तप, कदाचित अध्ययनादिक बाह्य धर्म क्रियाओ मे प्रवर्तते हैं कदाचित आहार-विहारादि क्रियाये होती हैं। उनकी दृष्टि तो एक मात्र अपने त्रिकाली भगवान पर होती है अप्रमत्तदशा और प्रमत्तदशा पर भी उनकी दृष्टि नही होती है, वन खण्डादि मे वास करते हैं, उद्दिष्ट आहारादि का ग्रहण उनके नही होता है। मुनि पद है, वह यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होते हुए था वैसा नग्न है।

पीछी-कमण्डल के अलावा उनके पास तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं होता। ऐसे जैन मुनि को तीन चौकडी कषाय के अभाव रूप शुद्धि के साथ राग हेय बुद्धि से होता है करते नही है।

प्रश्न १५—क्या भावलिगी मुनि को छठे गुणस्थान मे उद्दिष्ट आहारादि का विकल्प भी नहीं आता, यह बात जरा दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उत्तर—(१) रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता ने जगल मे अपने हाथ से वने मिट्टी के वर्तनो मे आहार वनाया। दूसरी तरफ मुनि आहार के निमित्त नियम लेकर चलते हैं कि राजकुमार हो, जगल मे हो, अपने हाथ से मिट्टी के बर्तन वनाए हो और स्वय आहार बनाया हो तो हम आहार लेगे। आहार बनाने के वाद रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता आहार निमित्त विचारते हैं। आकाश मार्ग से मुनि को आते देखकर हे स्वामी तिष्ठो-तिष्ठो! हमने मिट्टी के वर्तनो मे स्वय आहार बनाया है। देखो! ऐसा सहज ही स्वत निमित्त-नैमित्तिक सम्वन्ध होता है। (२) एक मुनि दो महीनो के उपवास के वाद आहार के निमित्त नियम ले के निकले कि केले का साग हो, इसमे नमक, मिर्चादि ना हो, तो हम आहार ले। दूसरी तरफ एक गरीव श्राविका एक वाग मे गई, वहाँ के मालो ने कहा बुढिया—ले यह केले का गुच्छा है। बुढिया ने घर पर आकर केले का साग वनाया। वनने के बाद सामने से मुनिराज आते देखे, तो पडगाने को खडी हो गई हे स्वामी! तिष्ठो-तिष्ठो, मैंने केले का साग बनाया है ना नमक है, ना मिर्च है देखो आहार हो गया। श्रावक अपने निमित्त शुद्ध आहार वनावे, तव मुनियो के आने का योग हो, तव सहज रूप से स्वयँ स्वत: निमित्त नैमित्तिक सम्वन्ध वन जाता है। वनाना नही पडता है।

मुनि आहार के निमित्त पधारे और उन्हे यह सशय हो जावे कि इस श्रावक ने हमारे लिए आहार बनाया है तो वह आहार नही लेंगे वापस चले जावेगे। क्योंकि मुनि के उद्दिष्ट आहार का त्याग है।

यदि उद्दिष्ट आहार लेने का विकल्प आ जावे, तो वह मुनि ही नही है।

प्रश्न १६—भावलिंगी मुनि को कैसा-कैसा भाव नहीं आता और कैसा भाव आ जावे, तो वह मुनि नहीं रहे। जरा खोलकर समझाइये ?

उत्तर—(१) भावलिंगी मुनि को अष्ट द्रव्य से पूजन का भाव आ जावे तो मुनिपना नही रहेगा। (२) एक मुनि रास्ते मे जा रहे थे। रास्ते मे प्यास से मरते हुए आदमी को देखा। देखकर मुनि ने विचारा "मैं इसको पानी दे देता, तो यह बच जाता, लेकिन भगवान की आज्ञा नही है।" ऐसा भाव मुनि को आने पर जिनवाणी मे आया है कि वह मुनि नही है। गुलाममार्गी है। क्योकि मुनि स्वय इस प्रकार पानी लेते नही, तब देने का विचार भी भावलिगी मुनि को नही आता है। लेकिन श्रावक को पानी देने का भाव न आवे, तो वह श्रावक नही। (३) दो मुनि है, एक ध्यान मे बैठा है। दूसरा आहार के निमित्त जा रहा है। सामने से एक भयकर सिंह ध्यानस्थ मुनि पर हमलावर है। आहार के निमित्त जाने वाले मुनि मे इतनी ताकत है कि उस सिंह को कान पकड कर बैठा दे, तो भी भावलिगी मुनि को उसे बचाने का भाव नही आवेगा। यदि बचाने का भाव आ जावे तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा और उसी समय वहाँ श्रावक हो उसे मुनि को बचाने का भाव ना आवे, तो श्रावकपना नष्ट हो जावेगा। (४) मुनि के पास पीछी-कमण्डल के अलावा और कुछ नही होता है। शास्त्र भी किसी श्रावक ने दिया तो पढकर वही छोड देते हैं। मुनि ने किसी को शास्त्र दिया वह शास्त्र मुनि ने पढा भी नही है। ऐसे समय मे कोई श्रावक उनसे माँगे, तो भावलिगी मुनि तुरन्त दे देगे। यदि मना करदे या देने का भाव ना आवे, तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा। (५) पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुष मात्र भी मुनि परिग्रह नही रखते है। यदि रखे, तो निगोद जाता है।

प्रश्न १७—भरतक्षेत्र पंचम समय, साधु परिग्रह वत्त, कोटि सात अरू अर्ध सब, नरकहि जाय परन्तु ॥२८॥ ब्रह्मविलास पृष्ठ २७८ में ऐसा क्यो कहा है ?

उत्तर—मुनि नाम रखा कर ग्रन्थमाला चलावे, मन्दिर बनवाने का तथा मन्दिरो को प्रतिष्ठा कराने का कार्य करे, चेला-चेलियो से अपने को बडा माने, हीटर लगावे, घडी, चश्मा आदि अपने पास रक्खे, शहरो मे रहे, श्रावको को बैल की तरह हाँके, दातार की स्तुति करके दानादि ग्रहण करे, वस्त्रो मे आसक्त हो, परिग्रह ग्रहण करने वाला हो, याचना सहित हो, अध कर्म दोषो मे रत हो। यन्त्र-मन्त्र तन्त्रादि करते हो। गृहस्थो के बालको को प्रसन्न करना, समाचार कहना मन्त्र-औपधि ज्योतिषादि कार्य बतलाना तथा किया कराया अनुमोदित भोजन लेना आदि कार्यों मे रत रहते हो तथा शुभ भावो से मोक्षमार्ग और मोक्ष होता है। निमित्त से उपादान मे कार्य होता है व्यवहार के कथन को सच्चा कथन मानने और अनुमोदना करने वाले भरतक्षेत्र से पचमकाल मे साढे सात करोड मुनि नरक जावेगे। ऐसा ब्रह्म विलास का तात्पर्य है। क्योकि शास्त्रो मे कृत, कारित अनुमोदना का एक सा फल कहा है।

प्रश्न १८—जैसा ब्रह्म विलास पृष्ठ २७८ के २८ वें दोहे मे कहा है। ऐसा कहीं क्या और आचार्यों ने भी कहा है ?

उत्तर—'धरये पचम काला, जिनवर लिग धार सव्वेसि। साढे सात करोडम्, जाइये निगोद मज्झमी। ऐसा आचार्यो ने कहा है।

प्रश्न १९—'धरये पंचम काला' यह श्लोक किस शास्त्र का है ?

उत्तर—शास्त्र का नाम हमारे याद नही है, एक भाई ने हमे यह श्लोक बताया था। [शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश पृष्ठ ३५८]

प्रश्न २०—क्या आजकल सच्चे मुनि-क्षुल्लक देखने मे नहीं आते हैं ?

उत्तर—हाँ, भाई, पचमकाल मे भावलिगी मुनिश्वर-अर्जिका-

क्षुल्लक का समागम देखने मे नही आता है ।

प्रश्न २१—पंचमकाल मे भावलिगी मुनि आदि का समागम देखने में नहीं आता है। ऐसा कहीं रत्नकरण्ड श्रावकाचार जो श्रावको का ग्रन्थ है, ऐसा कहीं लिखा है ?

उत्तर—रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ११७ के अर्थ मे लिखा है कि "और इस पचमकाल मे वीतरागी भावलिंगी साधु ही कोई विरला देशान्तर मे तिष्ठै है तिनका पावना होय नाही। पात्र का लाभ होना चतुर्थ काल मे ही वडे भाग्य तें होय था। परन्तु इस क्षेत्र मे पात्र तो बहुत थे। अव इस दु खम काल मे यथावत् धर्म के धारक पात्र कही देखने मे ही नाही आवे। धर्म रहित अज्ञानी लोभी वहुत विचरैं है सो अपात्र है। इस काल मे धर्म पाय करिकै गृहस्थ जिन धर्म के धारक श्रद्धानी कोई कही-कही पाइए है। जे वीतराग धर्म कूं श्रवण करि कुधर्म की आराधना दूर ही तै त्याग करि, नित्य ही अहिसा धर्म के धरने वाले जिन वचनामृत पान करने वाले शीलवान सन्तोषी तपस्वी ही पात्र है। अन्य भेषधारी वहुत विचरैं है। जिनमे मुनि श्रावक धर्म का सत्य सम्यग्दर्शनादिक का ज्ञान ही नाही, ते कैसे पात्र पना पावैं ? मिथ्यादर्शन के भावकरि आत्मज्ञान रहित लोभी भये, जगत मे धनादिकनिका मिष्ट आहार दान का इच्छुक भये, वहुत विचरैं है ते अपात्र है। तातै पात्र दान होना अति दुर्लभ है। यहाँ ऐसा विशेष जानना, जो कलिकाल मे भावलिगी मुनीश्वर तथा अर्जिका क्षुल्लक का समागम तो है ही नाही।"

प्रश्न २२—पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुष मात्र भी परिग्रह रक्खे तो वह निगोद जाता है। ऐसा कहीं पंचमकाल के आचार्य कुन्द-कुन्द भगवान ने कहा है ?

उत्तर—सूत्र पाहुड श्लोक १८ मे कहा है कि—

"जय जाय रुव सरियो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्प-बहुयं, तोत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१७॥"

अर्थ—मुनिपद है वह यथाजातरूप सदृश है जैसा जन्म होते हुए था वैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ यानी धन-वस्त्रादिक वस्तुओ मे तिल के तुष मात्र भी ग्रहण नही करता। यदि कदाचित् अल्प व बहुत वस्तु ग्रहण करे तो उससे निगोद जाता है।

प्रश्न २३—सूत्रपाहुड़ १८ का भावार्थ क्या है?

उत्तर—गृहस्थपने मे बहुत परिग्रह रखकर कुछ प्रमाण करे, तो भी स्वर्ग-मोक्ष का अधिकारी होता है और मुनिपने से किंचित परिग्रह अगीकार करने पर भी निगोद गामी होता है। इसलिए ऊँचा नाम रखाकर नीची प्रवृत्ति युक्त नही है। देखो, हुण्डावसर्पिणी काल मे यह कलिकाल चल रहा है। इसके दोप से जिनमत मे मुनि का स्वरूप तो ऐसा है जहाँ वाह्याभ्यन्तर परिग्रह का लगाव नही है। केवल अपने आत्मा का आपरूप अनुभव करते हुए, शुभाशुभ भावो से उदासीन रहते हैं और अव विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारण करते हैं; वहाँ सर्व सावद्य के त्यागी होकर पच महाव्रतादि अगीकार करते हैं; भोजनादि मे लोलुपी रहते है, अपनी पद्धति वढाने के उद्यमी होते है व कितने ही धनादि भी रखते है, हिंसादिक करते है व नाना आरम्भ करते हैं। परन्तु अल्प परिग्रह करने का फल निगोद कहा हैं, तव ऐसे पापो का फल तो अनन्त ससार होगा ही होगा। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७९]

प्रश्न २४—जो मुनि ऐसा करते हैं। क्या उन्हे मुनि नहीं मानना चाहिए?

उत्तर—लोगो की अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी सी प्रतिज्ञा भग करे, उसे तो पापी कहते हैं और ऐसी वडी प्रतिज्ञा भग करते देखकर भी उन्हे गुरु मानते हैं। उनका मुनिवत् सन्मानादि करते हैं। सो शास्त्र मे कृत, कारित, अनुमोदना का एक फल कहा है। इसलिए वे सब निगोद के पास हैं। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७९)

प्रश्न २५—मुनिपद लेने का क्रम क्या है?

उत्तर—पहले तत्वज्ञान हो, पश्चात् उदासीन (शुद्ध) परिणाम होते हैं। परीषहादि सहने की शक्ति होती है, तब वह स्वयमेव मुनि होना चाहता है और तब श्री गुरु मुनि धर्म अगीकार कराते है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७९)

प्रश्न 2६—वर्तमान में कैसी विपरीतता है ?

उत्तर—तत्वज्ञान रहित विषय-कषायासक्त जीवो को माया से व लोभ दिखाकर मुनि पद देना, अन्यथा प्रवृत्ति कराना सो बडा अन्याय है। सो हाय हाय ! यह जगत राजा से रहित है, कोई अन्य पूछने वाला नही है। (मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७९ तथा १८१)

प्रश्न २७—जैन शास्त्रो मे वर्तमान मे केवली का तो अभाव कहा है। मुनि का तो अभाव नही कहा है ?

उत्तर—ऐसा तो कहा नही है कि इन देशो मे सद्भाव रहेगा, परन्तु भरतक्षेत्र मे कहते है सो भरतक्षेत्र तो बहुत बडा है, कही सद्भाव होगा इसलिए अभाव नही कहा है। यदि जहाँ तुम रहते हो उसी क्षेत्र में सद्भाव मानोगे, तो जहाँ ऐसे भी गुरु नही मिलेगे, वहाँ जावेगे तब किस को गुरु मानोगे ? जिस प्रकार हसो का सद्भाव वर्तमान मे कहा है, परन्तु हस दिखायी नही देते तो और पक्षियो को हस नही माना जाता। उसी प्रकार वर्तमान मे मुनियो का सद्भाव कहा है परन्तु मुनि दिखायी नही देते, तो औरो को तो मुनि माना नही जा सकता। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८४)

प्रश्न २८ अब श्रावक भी तो जैसे सम्भव है वैसे नहीं है इसलिए जैसे श्रावक वैसे मुनि ?

उत्तर—श्रावक सज्ञा तो शास्त्र मे सर्व गृहस्थ जैनियो को है। श्रेणिक भी असयमी था, उसे उत्तरपुराण मे श्रावकोत्तम कहा है। बारह सभाओ मे श्रावक कहे वहाँ सर्व व्रतधारी नही थे। यदि सर्व व्रतधारी होते, तो असयत मनुष्यो की अलग सख्या कही जाती सो, कही नही है, इसलिए गृहस्थ जैन श्रावक नाम प्राप्त करता है और मुनि सज्ञा तो निर्ग्रन्थ के सिवाय कही नही कही है। श्रावक के आठ

मूलगुण कहे है, इसलिए मद्य, माँस, मधु, पाँच उदम्वरादि फलो का भक्षण श्रावको के नही। इसलिए किसी प्रकार से श्रावकपना तो सम्भावित भी है, परन्तु मुनि के अट्ठाईस मूलगुण है सो वेपियो के दिखाई ही नही देते। इसलिए मुनिपना किसी प्रकार सम्भव नही है। (मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८६)।

प्रश्न २९—जिनलिगी होकर अन्यथा प्रवर्ते, तो क्या होगा ?

उत्तर—आदिनाथ जी के साथ चार हजार राजा दीक्षा लेकर पुन भ्रष्ट हुए, तव उनसे देव कहने लगे—'जिनलिंगी होकर अन्यथा प्रवतोगे तो हम दण्ड देंगे। जिनलिग छोडकर जो तुम्हारी इच्छा हो, सो तुम जानो" इसलिए जिनलिगी कहलाकर अन्यथा प्रवर्ते, तो वे दण्ड योग्य है, वन्दनादि योग्य कैसे होगे ? अत्र अधिक क्या कहे, जिन मत मे कुवेप धारण करते हैं वे महापाप करते है, अन्य जीव जो उनकी सेवा—सुश्रूषा आदि करते हैं, वे भी पापी होते है, क्योकि पद्मपुराण मे लिखा है कि 'श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनियो को भ्रम से भ्रष्ट जानकर आहार नही दिया तव जो प्रत्यक्ष भ्रष्ट है उन्हे दानादि देना कैसे सम्भव है ? अर्थात् कभी भी नही।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८६]

प्रश्न ३०—हमारे अन्तरंग मे श्रद्धान तो सत्य है परन्तु वाह्य लज्जादि से शिष्टाचार करते हैं, सो फल तो अन्तरग का होगा ?

उत्तर—दर्शन पाहुड श्लोक १३ मे लज्जादि से वन्दनादिक का निषेध वतलाया है। कोई जवरदस्ती मस्तक झुकाकर हाथ जुडवाये तो यह सम्भव है कि हमारा अन्तरग नही था, परन्तु आप ही मानादिक से नमस्कारादि करे, वहाँ अन्तरग कैसे ना कहे ? जैसे—कोई अन्तरग मे तो माँस को वुरा जाने, परन्तु राजादिक को भला मनवाने को माँस भक्षण करे, तो उसे व्रती कैसे माने ? उसी प्रकार अन्तरग मे कुगुरु सेवन को वुरा जाने परन्तु उनको व लोगो को भला मनवाने के लिए सेवन करे, उसे श्रद्धानी कैसे कहे ? इसलिए वाह्य

त्याग करने पर ही अन्तरग त्याग सम्भव है। इसलिए जो श्रद्धानी जीव है, उन्हे किसी प्रकार से भी कुगुरुओ की सेवा-सुश्रुषा आदि करना योग्य नही है।

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८७]

प्रश्न ३१—जिस प्रकार राजादिक को करता है, उसी प्रकार इनको भी करें, तो क्या नुकसान है ?

उत्तर—राजादिक धर्म पद्धति मे नही है गुरु का सेवन धर्म पद्धति मे है। राजादिक का सेवन लोभादिक से होता है, वहाँ चारित्र मोहनीय का ही उदय सम्भव है, परन्तु गुरु के स्थान पर कुगुरु का सेवन किया, वहाँ तत्व श्रद्धान के निमित्त कारण गुरु थे, उनसे यह प्रतिकुल हुआ। सो लज्जादिक से जिसने निमित्त कारण मे विपरीतता उत्पन्न की, उसके उपादान कार्यभूत तत्त्वश्रद्धान मे दृढता कैसे सम्भव है ? इसलिए कुगुरु के सेवन मे दर्शन मोह का उदय है। इसलिए पात्र जीवो को मुनि का लक्षण जानकर ही उनको मानना चाहिए।

[मोक्षमार्ग प्रकाशन पृष्ठ १८७]

प्रश्न ३२—'मुनि' शब्द किस-किस को लागू पड़ता है ?

उत्तर—'मुनि' शब्द चौथे गुणस्थान से लेकर १२ वे गुणस्थान तक लागू होता है अर्थात् ४ से १२ तक सर्व 'मुनि' नाम से सम्बोधन किये जा सकते है।

प्रश्न ३३—'मुनि' का अर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि आदि आपने कहाँ से कर दिया ?

उत्तर—अरे भाई ! (१) श्री समयसार कलश टीका मे कलश १०४ मे 'एते तत्र निरता: अमृत विदन्ति' (एते) विद्यमान जो सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर (तत्र) शुद्ध स्वरूप के अनुभव मे (निरता) मग्न है वे (परम अमृत) सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को (विन्दति) आस्वादते है। (२) कलश १५२ मे 'तत् मुनि कर्मणा नो बध्यते' (तत्) तिस कारण से (मुनि) शुद्ध स्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव (कर्मणा) ज्ञानावरणादि कर्म से (नो बध्यते) नही

बधता है। (३) कलश १८६ मे 'अनपराध मुनि न बध्येत' (अनपराध) कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जान कर नही अनुभवता है ऐसा है जो (मुनि) पर द्रव्य से विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव (न बध्येत) ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड के द्वारा नही बाँधा जाता है। (४) कलश १९० मे 'अत' मुनि परम शुद्धता व्रजति च अचिरात मुच्यते' (अत) इस कारण से (मुनिः) सम्यग्दृष्टि जीव (परम शुद्धता व्रजति) शुद्धोपयोग परिणति रूपी परिणमता है (च) ऐसा होता हुआ (अचिरात्-मूच्यते) उसी काल कर्मबन्ध से मुक्त होता है।

इन चार कलशो मे सम्यग्दृष्टि को 'मुनि' कहा है अत चौथे गुणस्थान से लेकर १२ वे तक सब मुनि कहलाते है। परन्तु ७ वे से १२ वे गुणस्थान तक वाले उत्तम मुनि पाँचवे छठे गुणस्थानी मध्यम मुनि और चौथे गुणस्थानी असयत सम्यग्दृष्टि जघन्य मुनि कहलाते है।

प्रश्न ३४—'मुनि' अप्रमत्त और प्रमत्तदशा से गिर जावे, तो क्या होता है, जरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—जैसे—सरकस मे दो झूला होते है। उन पर एक लडकी कभी उस झूले पर और कभी उस झूले पर तेजी से आती-जाती हैं। उसके नीचे सरकस वाले जाली लगाते है ताकि यदि गिर जावे तो चोट ना लगे। प्रथम तो वह गिरती ही नही है, यदि गिर जावे तो ताल ठोककर फिर तत्काल झूले पर चढ जाती है और यदि वह जाली पर पडी रहे तो उसे सरकस से बाहर कर देते है, उसी प्रकार भाव लिंगी मुनीश्वर छठे सातवे गुणस्थान मे झूला झूलते हैं। अव्वल तो गिरते नही है और अपने परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय बढाकर सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेते हैं। और यदि गिर जावे तो उग्र पुरुषार्थ बढाकर फिर चढ जाते है। यदि गिर जावे तो कोई पाँचवे, कोई चौथे गुणस्थान मे और कोई मिथ्यादृष्टि तक हो जाता है।

प्रश्न ३५—मुनि गिर जावे, तो बहुत से मुनि सर्वार्थसिद्धि में

३३ सागर की आयुपर्यन्त रहते हैं वह तो ठीक है ना ?

उत्तर—जैसे—एक रिश्वतखोर हैडमास्टर ने एक चौथी कक्षा के लडके से रिश्वत लेकर उसे सातवी कक्षा मे कर दिया। रिश्वत ना लेने वाले स्कूल इन्सपेक्टर ने उसकी परीक्षा ली तो उससे सातवी कक्षा का प्रश्न पूछा वह न बता सका फिर छठी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह न बता सका, फिर पाँचवी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह ना बता सका फिर चौथी कक्षा का प्रश्न पूछा, तो उसने बता दिया। तो इन्सपेक्टर ने दण्ड स्वरूप १० वर्ष तक उसे उसी चौथी क्लास मे रहने का हुक्म दिया। क्या वह लडका १० वर्ष तक उस कक्षा मे रहता हुआ आनन्द मानेगा ? आप कहेगे कभी नही। उसी प्रकार भावलिगी मुनीश्वर सातवें गुणस्थान मे आनन्द के लहर की अतीन्द्रिय रस पीते है और उनका आयुष्य पूर्ण होने पर विग्रहगति मे चौथा गुणस्थान आ जाता है और फिर सर्वार्थसिद्धि मे ३३ सागर पर्यन्त चौथे गुणस्थान मे रहना होता है। क्या वे आनन्द मानते होगे ? आप कहेगे, कभी नही।

प्रश्न ३६—सच्चे और झूठे मुनि के स्वरूप को जानने के लिये हम किस शास्त्र को देखें, जिससे सब बात सुगमता से समझ मे आ जावें ?

उत्तर—मोक्षमार्ग प्रकाशक छठे अधिकार मे गुरु के वर्णन मे आचार्य प० टोडरमलजी ने खूब स्पष्ट किया है। वहाँ से अच्छी तरह पढकर जान लेवे।

प्रश्न ३७—श्री कुन्दकुन्द भगवान ने नियमसार जी मे क्या आदेश दिया है ?

उत्तर—

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहि तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये ॥१५४॥

है जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विधि कही,
अतएव ही निज पर समय सह वाद परिहर्तव्य है ॥१५६॥
निधि पा 'मनुज तत्फल वतन मे गुप्त रह ज्यो भोगता
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता ॥१५७॥

अर्थ—यदि किया जा सके तो अहो। ध्यानमय प्रतिक्रमणादिकर यदि तू शक्ति विहीन हो तो तब तक श्रद्धान ही कर्तव्य है ॥१५४॥ नाना प्रकार के जीव है, नाना प्रकार का कर्म हैं। नाना प्रकार की लब्धि है। इसलिए स्वसमयो तथा पर समयो के साथ (स्वधर्मियो तथा परधर्मियो के साथ) वचन विवाद दर्जन योग्य है ॥१५६॥ जैसे कोई एक (दरिद्र मनुष्य) निधि को पाकर अपने वतन मे (गुप्त रूप से) रहकर उसके फल को भोगता है, उसी प्रकार ज्ञानी पर जनो समूह को छोडकर ज्ञान निधि को भोगता है ॥१५७॥

प्रश्न—त्याग जैनधर्म है कि नहीं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शनपूर्वक जितने अश मे वीतराग भाव प्रकट हो, उतने अश मे कषाय का जो त्याग होता है, उसे धर्म कहते है। सम्यग्दर्शनादि अस्तिरूप धर्म है और उसी समय मिथ्यात्व और कषाय का त्याग, वह नास्तिरूप धर्म है। किसी भी दशा मे सम्यक्त्व रहित त्याग से धर्म नही होता, यदि मन्दकषाय हो तो पुण्य होता है।

आत्मधर्म : अप्रैल १९८२ पृष्ठ २५

नवमा प्रकरण

भगवान की पूजा का रहस्य

भूत काल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान ॥

प्रश्न १—भगवान का दर्शन पूजा करते समय हमे क्या भावना भानी चाहिए ?

उत्तर—भगवान ! मेरा वर्तमान आपका भूतकाल जैसा है। लेकिन मेरा भविष्य आपका वर्तमान जैसा हो—ऐसी मेरी भावना है अर्थात् आप भूतकाल मे मोही-रागी द्वेषी थे, वैसा ही मैं वर्तमान मे हू। इसलिए तो मुझे आपका दर्शन-पूजा करने का भाव आया है। किन्तु जैसे आप वर्तमान मे वीतराग हो, वैसा मैं भी वीतराग वन जाऊँ ऐसी मेरी भावना है।

प्रश्न २—पूजा क्या है ?

उत्तर—जैसा अपना त्रिकाली स्वभाव है, उसमे लीन हो जाना वह पूजा है।

प्रश्न ३—पूजा कितने प्रकार की है ?

उत्तर—पूजा का कथन पाँच प्रकार से है। [१] शक्तिरूप पूजा, [२] एक देश भावपूजा, [३] द्रव्यपूजा, [४] जड़ पूजा, [५] पूर्ण भावपूजा।

प्रश्न ४—शक्तिरूप पूजा क्या है ?

उत्तर—त्रिकाली परम पारिणामिक ज्ञायक भाव शक्तिरूप है वह शक्तिरूप पूजा है। यह शक्तिरूप पूजा प्रत्येक प्राणी अर्थात् निगोद से लगाकर सिद्धदशा तक सबके पास एक समान है।

प्रश्न ५—एकदेश भाव पूजा क्या है ?

उत्तर—शक्तिरूप पूजा के आश्रय से जो एकदेश शुद्धि प्रगटी। वह एकदेश भाव पूजा है। यह चौथे गुणस्थान से १२व गुणस्थान तक होती है। अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना एकदेश भावपूजा की प्राप्ति नही हो सकती है।

प्रश्न ६—द्रव्य पूजा क्या है ?

उत्तर—शक्तिरूप पूजा के आश्रय से एकदेश शुद्धि प्रगटी। उसके साथ गुणस्थान अनुसार ज्ञानी को अस्थिरता सम्बन्धी जो शुभभाव है वह द्रव्यपूजा है और वह बन्ध का कारण है। लेकिन ज्ञानी को भूमिकानुसार इसी प्रकार का राग होता है' करता नही है। यह द्रव्य पूजा भी वास्तव मे ज्ञानी को होती है अज्ञानी को नही होती है।

प्रश्न ७—जड़ पूजा क्या है ?

उत्तर—सामग्री चढाने की क्रिया, पूजा बोलने की क्रिया आदि जड़ पूजा है। यह पुद्गल की क्रिया है। ना यह पुण्य है, ना पाप है, ना धर्म है। परन्तु ज्ञानी के द्रव्यपूजा का और जड पूजा मे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्रश्न ८—पूर्ण भाव पूजा क्या है ?

उत्तर—शक्ति रूप पूजा का परिपूर्ण आश्रय लेना अर्थात् आत्मा की सम्पूर्ण शुद्धि, यह पूर्ण भाव पूजा है। यह अरहत और सिद्ध अवस्था है।

प्रश्न ६—पांचो प्रकार की पूजा का क्या-क्या फल है ?

उत्तर—(१) शक्तिरूप पूजा कहो, भगवान बनने की शक्ति कहो, परम पारिणामिक भाव कहो, ज्ञायक भाव कहो, स्वभाव त्रिकाली कहो, या जीव कहो एक ही बात है। (२) शक्ति रूप पूजा का आश्रय लेने से ही एकदेश भाव पूजा की प्राप्ति होती है यह शुद्ध भाव है। (३) एक देशभाव पूजा के साथ अस्थिरता सम्बन्धी राग हेय बुद्धि से आता है। यह द्रव्य पूजा, पुण्य बन्ध का कारण है। (४) जड पूजा शरीर की क्रिया है जो इसका मालिक बनता है वह चारो गतियो मे घूमकर निगोद की प्राप्ति करता है। जड पूजा और द्रव्य

पूजा करते-करते धर्म की प्राप्ति होती है। यह भाव अनन्त ससार का कारण है। (५) अपनी शक्तिरूप पूजा का परिपूर्ण आश्रय लीनता होने पर साध्यदशा की प्राप्ति पूर्ण भाव पूजा है। यह क्षायिक दशा सादिअनन्त रहती है। यह पूजा का फल है।

प्रश्न १०—पाँच प्रकार की पूजा मे नौ पदार्थ, काल, पांच भाव, संयोग आदि पांच वोल, देव-गुरु-धर्म, हेय-उपादेय-ज्ञेय, नमस्कार, सुखदायक दुःखदायक, लगाकर वताओ ताकि स्पष्टरूप से समझ में आवे ?

उत्तर—(१) शक्तिरूप पूजा=जीव। (२) एकदेश भावपूजा= सवर-निर्जरा। (३) द्रव्य पूजा=आस्रव-वन्ध, पुण्य-पाप। (४) जड-पूजा=अजीव; (५) पूर्ण भाव पूजा—मोक्ष है। इसी प्रकार वाकी वोल लगाकर लाभ-नुकसान वताओ ?

प्रश्न ११—अपनी आत्मा का अनुभव हुए विना पूजा-पाठ आदि कुछ भी कार्यकारी नही है। ऐसा आप कहते हो तो जो लोग वर्तमान मे सम्यग्दर्शन के विना पूजा पाठ आदि करते हैं वह छोड़ देंगे। इसलिए ऐसा कहने से जीवों का बुरा होना सम्भव है ?

उत्तर—सत्य से किसी भी जीव की हानि होगी ऐसा कहना ही वडी भूल है अथवा असत् कथन से लोगो को लाभ मानने के वरावर है। सत् का श्रवण या अध्ययन करने से जीवो को कभी हानि हो ही नही सकती। पूजा, पाठ, सिद्धचक्र का पाठ, सामायिक आदि करने वाले ज्ञानी है या अज्ञानी—यह जानना आवश्यक है। यदि पूजा-पाठ आदि करने वाले अज्ञानी हैं, तो उनके सच्चे पूजा-पाठ आदि है ही नही। इसलिए उन्हे छोडने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। यदि पूजा पाठ आदि करने वाले ज्ञानी होगे तो छद्मस्थ दशा मे वे पूजा-पाठ आदि का त्याग करके अशुभ मे जावेगे, ऐसा मानना न्याय के विरुद्ध है। परन्तु ऐसा हो सकता है कि वे क्रमश द्रव्यपूजा पाठ आदि शुभभावो को टालकर शुद्ध भाव की वृद्धि करे और क्रमश पूर्ण भाव पूजा की प्राप्ति करे और यह तो लाभ का कारण है, हानि

का नही। इसलिए सत्य कथन से किसी को भी हानि नही हो सकती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किए बिना पूजा-पाठ आदि कार्यकारी नही हो सकते है। इसलिए पात्र जीवो को प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए। सम्यग्दर्शन स्व-पर का श्रद्धान करने पर होता है। तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि बनाना योग्य है। बुधजन जी ने छहढाला मे कहा है कि "सम्यक् सहज स्वभाव आपका अनुभव करना। या बिन जप-तप व्यर्थ कष्ट के माही पडना।"

प्रश्न १२—किसको पूजना चाहिए ?

उत्तर—"जिन गृहे जिननाथमह यजे" (अह) मैं (जिननाथ) जिननाथ को (जिनगृहे) जिनमन्दिर मे (यजे) पूजता हू।

प्रश्न १३—जिननाथ कौन है ?

उत्तर—अरहत-सिद्धादि जिननाथ निमित्तरूप हैं। वास्तव में अपना त्रिकाली स्वभाव वह जिननाथ है। अपने जिननाथ का आश्रय लेने पर सच्चे जिननाथ का पता चलता है क्योकि अनुपचार हुए विना उपचार का आरोप नही आ सकता है।

प्रश्न १४—'नाथ' किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो प्राप्त की रक्षा करे और जो प्राप्त नही है उसे प्राप्त करावे वह नाथ है अर्थात् अपने त्रिकाली नाथ के आश्रय से जो शुद्धता प्रकट हुई है उसकी रक्षा करे और जो शुद्धता अप्रगट है उसे प्राप्त करावे, वह वास्तव मे अपना त्रिकाली भगवान वह "नाथ" है निमित्तरूप पचपरमेष्टी वह अपने नाथ हैं।

प्रश्न १५—(जिनगृहे) मन्दिर कैसा है ?

उत्तर—"धवल मगल गानरवाकूले" उज्ज्वल और कल्याणकारी स्तवनो की आवाजो से गूंज रहा है, ऐसा मन्दिर है।

प्रश्न १६—आजकल मन्दिरो मे उज्ज्वल और कल्याणकारी स्तवनो की आवाजो की गूंज के अलावा, क्या देखा जाता है ?

उत्तर—(१) फलाँ बाई कैसी साडी पहर के आती है, फलाँ बाई ने कैसा जेवर पहरा है, फलाँ बाई की आवाज और शक्ल कितनी सुन्दर है। (२) आज घर से पत्र आया है अम्माजी बीमार है; आज इन्कमटैक्स, सेलटैक्स की तारीख है; आज उतने रुपयो का लाभ हुआ; आज इतने रुपयो का नुकसान हुआ; आज हमारे घर किसने आना है या जाना है। (३) आज मुन्नी को दिखाना है; लडकी दर्शन कर रही होगी, लड़का उसकी सुरीली आवाज और शक्ल देखकर पसन्द कर लेगा, मदिर मे ही देखना तै किया है। (४) मैंने इतने उपवास किये हैं, मैंने इतना दान दिया है। मैं रात्रि को भोजन नही खाता, यदि शुभभाव करते रहे तो क्रम से धर्म की प्राप्ति हो जावेगी आदि साँसारिक बाते ही देखने मे आती है जिसका फल अनन्त ससार है। अत पात्र जीवो की लौकिक बाते नही करनी चाहिए, क्योकि मन्दिर का स्थान तो भव के अभाव रूप, जन्म मरण के अभाव के लिए निमित्तरूप है उसे लौकिक कार्यों का निमित्त बनाये, वह निगोद का कारण है।

प्रश्न १७—उज्ज्वल और कल्याणकारी स्तवनो की आवाजो की गूँज के निमित्तरूप जिनमन्दिर मे भव्य जीवो को कैसा भाव आता है?

उत्तर—"उदक चन्दन तन्दुल पुष्पकै चरु सुदीप सुधूप फलार्घकै" जल चन्दन, अक्षत, पुष्प, चरू, दीप, धूप और फल-अष्ट द्रव्यरूप पूजन सामग्री से पूजा करने का भाव हेय बुद्धि से आता है। ज्ञानी का वह भाव पुण्य बध का कारण है।

प्रश्न १८—सामग्री बनाना-चढ़ाना, पूजा-पाठ शब्द का कर्त्ता कौन है और कौन नहीं है?

उत्तर—सामग्री बनाने-चढाने का कर्ता आहारवर्गणा है। पूजा-पाठ के शब्द का कर्ता भाषावर्गणा है, जीव नही है। जो जीव जड के कार्य को अपना मानता है। वह उस मान्यता के कारण चारों

गतियो मे घूमकर निगोद मे जाता है क्योकि कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार की ८५ वी गाथा की टीका मे दूसरे की क्रिया, अपनी मानने वाले को "जिनमत से बाहर और द्विक्रियावादी कहा है।"

प्रश्न १९—क्या सामग्री बनाना-चढ़ाना और पूजा-पाठ का शब्द आत्मा के भाव बिना होता है ?

उत्तर—हाँ भाई! आत्मा के भाव का उसके साथ अत्यन्त्याभाव है। वास्तव मे सामग्री चढाने का, पूजा-पाठ के शब्द निकलने का साधक जीव के अस्थिरता सम्बन्धी राग का और ज्ञान करने का एक ही समय है; सब अपने अपने रूप से स्वतन्त्र हैं। अज्ञानी को जड-चेतन की स्वतन्त्रता का ज्ञान नही है। अज्ञानी जीव सामग्री चढाते-पूजा पाठ आदि बोलते समय मिथ्यात्व की पुष्टि करते है। इसलिए पात्र जीवो को एक मात्र अपने त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए तब पूजा आदि विकल्पो को पराश्रितों व्यवहार कहा जा सकता है क्योकि स्वाश्रितो निश्चय विना पराश्रितों व्यवहार नही कहा जा सकता है।

जल

प्रश्न २०—उदक अर्थात् जल से पूजा कौन कर सकता है और कौन नहीं कर सकता है ?

उत्तर—सबसे प्रथम जल से पूजा की जाती है उसका कारण यह है कि जल नरम-प्रवाहित द्रवीभूत है। उसी प्रकार जिसका हृदय कठोर हो, तीव्रकषायी हो, वह भगवान की पूजा करने लायक नही है और जिसका हृदय द्रवीभूत नरम अर्थात् मन्दकषायी हो, वह ही भगवान की जल से यथार्थ पूजा कर सकता है।

प्रश्न २१—जल से भगवान की पूजा का अधिकारी कौन है और कौन नहीं है ?

उत्तर—जल अस्वच्छता का नाश कर स्वच्छता करता है। पूजन

करते समय जिसके हृदय मे मोह-राग द्वेषरूप मलिनता का नाश होकर शुद्धता प्रगटे और शुद्धता की वृद्धि होवे, वह ही भगवान की जल से पूजा का सच्चा अधिकारी है। जिसके हृदय मे मोह-राग द्वेष हो, यह भगवान की जल से पूजा करने का सच्चा अधिकारी नही है।

प्रश्न २२—जल से पूजा करना सार्थक कब है और कब नहीं है?

उत्तर—जैसे—जल जब स्वच्छ हो और स्थिर हो, तब उसमे अपनी मुखाकृति भासती है वैसे ही अपना हृदय मे से मोह, मिथ्यात्व की मलिनता दूर होकर स्वच्छता (शुद्धता) प्रगटे और राग-द्वेषरूप क्षोभ दूर होकर स्थिरता हो, तब भगवान का प्रतिबिम्ब झलक सकता है और तब जल से पूजा करना सार्थक है और जब अपना हृदय आकुलता सहित, मोह-राग द्वेष से सहित हो, तब जल से पूजा करना सार्थक नही है।

प्रश्न २३—'जल से पूजा की' ऐसा कहना सार्थक कब है और कब नहीं है?

उत्तर—जिस प्रकार जल का भरा हुआ समुद्र गम्भीर है उसमे कूड़ा डाला जावे या पुष्प डाला जावे, वह सबको अपने मे समा लेता है, इतना गम्भीर है; उसी प्रकार कूड़ारूप प्रतिकूलता हो या पुष्परूप अनुकूलता हो, तो भी वह अपने मे समा लेना चाहिए अर्थात् इतनी गम्भीरता आ जानी चाहिए कि अनुकूलता और प्रतिकूलता ज्ञान का ज्ञेय हो तब "जल से पूजा की" ऐसा कहना सार्थक है। अनुकूलता और प्रतिकूलता मे इष्ट-अनिष्टपना मानने वाले जीव ने "जल से पूजा की" कहना सार्थक नही है। अत: ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव होने पर "जल से पूजा की" सार्थक है? अपना अनुभव हुए बिना 'जल से पूजा की' क्या ऐसा कहना सार्थक है? कभी भी नही।

प्रश्न २४—"कैसा निर्णय किये बिना" जल से पूजा करना बनता ही नहीं ?

उत्तर—जैसे—सागर मे जब भरती का [ज्वार का] समय हो, तब सूर्य का ११८ डिग्री का ताप भी उसे नही रोक सकता है तथा जब ओट का [भाटा का] समय हो तब २५ इच बरसात पडता हो और सम्पूर्ण नदियो का पानी उसमे आकर मिलता हो, तब भी वे भरती नही ला सकती, उसी प्रकार जब अपना ज्ञान समुद्र अन्तर मध्य बिन्दु से उछले, तब बाहर की प्रतिकूलता कुछ भी विघ्न नही कर सकती तथा जब स्वय अपराधी होकर हीनता करे तब बाहर की इन्द्रियां, शास्त्र, दिव्यध्वनि, गुरु की वाणी आदि कोई भी उसकी सहायता नही कर सकते हैं। इसलिए ससार की अनुकूलता और प्रतिकूलता रहित मेरा स्वभाव है उसका निर्णय-अनुभव-किये बिना जल से यथार्थ पूजा करना बनता ही नही।

प्रश्न २५—बादल हमे क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—क्षारं जल वारिमुचः पिबन्ति, तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।
सन्तस्थता दुर्जन दुर्वचान्सि, पीत्वा च सूक्तानि समुद्गिरन्ति ॥

अर्थ—जिस प्रकार बादल खारा जल पीकर भी मीठा पानी देता है; उसी प्रकार दुष्ट पुरुषो की कठोर वाणी को सुनकर भी ज्ञानी को मीठा और सबका प्रिय लगने वाली वाणी बोलने का भाव आता है और भी कहा है कि—

गौरव प्राप्यते दानात्, न तु वित्तस्य संचयात्।
स्थिति रुच्चै पयोदाना, पयोधीनामधः स्थितिः ॥

अर्थ—दान से बडाई मिलती है, सचय करने से नही मिलती। धन के सचय करने से बडा नही कहलाता, दान देने से गौरव मिलता है।

जैसे पानी देने वाला बादल ऊंचा है और सग्रह करने वाला समुद्र नीचे है; उसी प्रकार यदि वक्ता भी श्रोता से मान या धन मांगे तो

श्रोता ऊँचा और वक्ता नीचा हो जाता है। इसलिए वक्ता को श्रोता से कभी भी मान प्रतिष्ठा, या धन की भावना नही करनी चाहिए। मान-प्रतिष्ठा, या धन की भावना करने वाला भिखारी भगवान की जल से पूजा यथार्थतया नही कर सकता है। बादल हमे यह शिक्षा देता है कि मान प्रतिष्ठा और धन की इच्छा छोडने वाला ही भगवान की जल से पूजा कर सकता है।

प्रश्न २६—क्या मोह-रागादि को निकाले बिना, जल से पूजा नही हो सकती है ?

उत्तर—जैसे—समुद्र अपने मे मुद को नही रखता किन्तु बाहर निकाल देता है, उसी प्रकार ज्ञान समुद्ररूपी आत्मा की दृष्टि जिस जीव को हुई है, वह ही अपने मे अचेतन मोह-रागादि भावो को नहीं रखता, किन्तु बाहर निकाल देता है, तभी भगवान की जल से यथार्थ पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न २७—'आपदर्थे धनं रक्षेत् भाग्यवन्य: क्व चापद:। कदापि कूपितो दैव:, संचितोऽपि विनश्यति'। इस श्लोक का सार क्या है ?

उत्तर—एक राजा था। उसका यह नियम था कि जो मेरे पास नया श्लोक बनाकर सबसे पहले आवे और उसका श्लोक उत्तम हो तो उसे सवा लाख रुपया इनाम दिया करूँगा।' इस प्रकार प्रतिदिन किसी न किसी को सवा लाख रुपया राजा से नया श्लोक बनाने मे मिल जाता था। राजा के महल के थोडी दूर पर एक गरीब ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित रहता था। एक दिन ब्राह्मण की स्त्री को पता लगा, कि राजा नया श्लोक बनाने वाले को सवा लाख रुपया प्रतिदिन इनाम देता है। उसने अपने पति से कहा 'आप इतने दु खी होते हैं, खाने के लिए भी रोटी के लाले पडे रहते हैं। आप भी उत्तम नया श्लोक बनाकर सबसे पहले राजा के पास जाओ, तो सवा लाख रुपया मिले, जिससे यह गरीबी दूर हो। तब उस ब्राह्मण ने अपनी बुद्धि अनुसार एक कागज पर नया श्लोक लिखा और राजा

के पास पहुँचा। वहाँ देखा, कि रोजाना सुबह से ही भीड़ लग जाती है, उसने वडी कोशिश की वह अन्दर चला जावे, लेकिन उसे कामयाबी नही हुई। इस प्रकार करते-करते दस दिन समाप्त हो गये, लेकिन ब्राह्मण के अन्दर जाने का नम्वर न आया। ब्राह्मण वहुत परेशान हुआ तव एक दिन वह साय काल से ही वहाँ आ गया और जव प्रात काल दरवाजा खुला, तत्काल अन्दर दाखिल हो गया। राजा ने उसका नया श्लोक देखा, वह अच्छा भी नही था, लेकिन गरीव ब्राह्मण समझकर राजा को दया आ गयी। राजा ने उसे सवा लाख रुपया देने के लिए खजान्ची के नाम पर्चा दे दिया। गरीव ब्राह्मण खुशी खुशी होकर खजान्ची के पास गया और पर्चा सवा लाख रुपया देने का था, वह दिया। ब्राह्मण के श्लोक को देखकर खजान्ची ने विचारा, कि राजा वडा मूर्ख है। श्लोक किसी भी काम का नही है। राजा व्यर्थ मे धन लुटाता है। ऐसा विचार करके खजान्ची ने रुपया नही दिया और एक पत्र पर लिखा कि "आपदर्थ धन रक्षेत्" अर्थात् आपत्ति के समय काम आवे, इसलिए धन की रक्षा करनी चाहिए। ऐसा लिख कर ब्राह्मण को दिया, कि राजा के पास जाओ और यह पर्चा दे देना। वह राजा के पास गया और राजा ने पर्चा देखकर एक पक्ति और वढा दी, लिखा कि "भागवन्त क्व चापद:" अर्थात् भाग्य वत को आपत्ति कहाँ आती हैं। तथा दुवारा आने के कारण सवा लाख रुपया की वजाय ढाई लाख रुपया देने को लिखा। ब्राह्मण खजान्ची के पास गया, लेकिन खजान्ची आसानी से रुपया देने वाला नही था। उसने पर्चा देखकर फिर लिखा कि "कदापि कूपितो दैव" अर्थात् कदापि देव कोपायमान हो गया, तो आपत्ति आयेगी। ऐसा लिखकर ब्राह्मण को फिर राजा के पास जाने को कहा। ब्राह्मण राजा के पास गया, राजा ने पर्चा देखकर उस श्लोक को पूरा कर दिया। लिखा कि "सचितोऽपि विनश्यति" अर्थात् तव सचय किया हुआ भी धन नष्ट हो जावेगा। तथा तीसरी वार आने के कारण ढाई लाख रुपया की

बजाय पाँच लाख रुपया ब्राह्मण को देने को लिख दिया। आखिर खजान्ची को पाँच लाख रुपया ब्राह्मण को देने पडा। इसलिए लोभी मनुष्य भगवान की जल से यथार्थ पूजा नही कर सकता है।

प्रश्न २८—क्या मिथ्यात्व का अभाव हुए बिना, जिनवर के कहे अनुसार चलने वाला भी जल से भगवान की पूजा नहीं कर सकता है?

उत्तर—नही कर सकता है, क्योंकि समयसार गा० २७३ मे "भगवान के कहे हुए समिति गुप्ति पालन करता हुआ भी मुनि को मिथ्यादृष्टि, असयमी, पापी कहा है। तथा प्रवचनसार गा० २७१ मे ससार का नेता कहा है। इसलिये अपने त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर मिथ्यात्व का अभाव होने पर ही जल से भगवान की यथार्थ पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है अन्यथा नही। क्योकि "ॐ ह्री देव-गुरू-शास्त्रभ्यो मिथ्यात्व मल विनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा' ऐसा पूजा मे कहा है।

प्रश्न २९—जल चढ़ाने का देव-गुरू-शास्त्र की पूजा का छन्द क्या है?

उ०—इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता मे अटकाया हूं।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिए, मिथ्यामल धोने आया हू।

चन्दन

प्रश्न ३०—क्या ज्ञाता-द्रष्टापना प्रकट किये बिना चन्दन से भगवान की पूजा का अधिकारी नहीं है?

उत्तर—जैसे—गरम उबलते हुए तेल मे यदि नारियल गेरा जावे तो, तत्काल ही टुकडे-टुकडे हो जाते है और नारियल जलकर खाक हो जाता है। उसी उबलते हुए तेल मे जरा सा बावना चन्दन गेरा

जावे, तो वह उसी समय शीतल हो जाता है; उसी प्रकार वह जीव अनादिकाल से एक-एक समय करके सयोगो और सयोगी भावो मे (अनुकूलता व प्रतिकूलता मे) पागल और दु खी हो रहा है। वह जीव चन्दन से भगवान की पूजा नही कर सकता है। यदि हमारा हृदय भी बावना चन्दन के समान शीतल हो जावे और ज्ञातादृष्टा बुद्धि प्रगट जावे, तो हम चन्दन से भगवान की यथार्थ पूजा करने के अधिकारी है।

प्रश्न ३१—पर मे एकत्व बुद्धि दूर हुए बिना चन्दन से पूजा नहीं हो सकती इसको जरा द्रष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—नमि नाम का एक राजा था। उसके शरीर मे दाहज्वर उत्पन्न हो गया। उसके उपचार के लिए वैद्यो ने वावना चन्दन का लेप वताया। रानियो ने तत्काल चन्दन घिसना शुरू कर दिया। रानियो के हाथ जेवर कगनो से भरे होने के कारण, वडी तेज ध्वनि होने लगी। क्योकि रानियो ने तेजी से चन्दन घिसना शुरू कर दिया था। तेज ध्वनि होने के कारण राजा के सिर मे दर्द हो गया। राजा ने कहा, इतनी तेज आवाज के कारण मेरा सर फटा जा रहा है इसे वन्द करो। रानियो ने सोचा, कि दाह ज्वर के कारण चन्दन का लेप जरूरी है। उन्होने अपने-अपने हाथो मे एक-एक सुहागचूडी रखकर तमाम जेवर, कगन आदि निकाल-निकाल कर रख दिये और सवने पुन चन्दन घिसना शुरू किया। कुछ देर वाद राजा ने कहा "क्या चन्दन घिसना बन्द कर दिया ?" रानियो ने कहा "नही महाराज, हमने एक-एक सुहाग चूडी हाथ मे रखकर वाकी जेवर कगन आदि उतार कर चन्दन घिसना चालू रक्खा इस कारण आवाज वन्द है।"

नमि राजा को विचार आया, अहो! अहो! जहाँ एक है, वहाँ आनन्द है और जहाँ अनेक है वहाँ खलवलाहट है। जहाँ देखो! एक ही सुन्दर है।

एकत्व निश्चय गत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में।
उससे वने बंघन कथा, जू विरोधनो एकत्व में ॥३॥
है सर्व श्रुत-परिचित अनुभूत, भोग बंधन की कथा।
पर से जुदा एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना ॥४॥

ऐसा विचार आते ही स्वरूप मे स्थिरता होते ही जंगल की राह ली और जिनेश्वरी दीक्षा धारण की। प्रत्येक प्राणी को नमि राजा के समान एकत्व-विभक्त रूप अपनी आत्मा का निर्णय करके पर्याय मे जो राग रूपी दाह ज्वर है। उसे नष्ट करे तो चन्दन से भगवान की यथार्थ पूजा की—ऐसा कहने मे आता है।

प्रश्न ३२—'ससार ताप विनाशनाय चन्दनम् कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—जिस प्रकार चन्दन का इच्छुक पुरुष जव चन्दन लेनें जगल मे जाता है। तो वह अपने साथ गरुड या मोर को ले जाता है, क्योकि गरुड या मोर की आवाज के सुनते ही चन्दन पर लिपटे हुए, अजगर और साँप भाग जाते है। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष गरुड या मोर को साथ ना ले जावे तो वह चन्दन को प्राप्त नही कर सकता! उसी प्रकार अनादिकाल से एक.एक समय करके मिथ्यात्वरूपी अजगर राग-द्वेष रूपी साप, चन्दन के समान भगवान आत्मा के ऊपर लिपटे हुए हैं। यदि जीव अपने ज्ञायक स्वभाव का टकारा मारे, तो मिथ्यात्व रूपी अजगर, राग-द्वेष रूपी साँप स्वय भाग जाते है तभी 'ससार ताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा' कहना सार्थक है। अज्ञानी ने अनन्तवार चन्दन से भगवान की पूजा की किन्तु वह भोग निमित्त रही। व्यर्थ हो गई।

प्रश्न ३३—क्या आधि, व्याधि और उपाधि रहित, समाधि हुए बिना चन्दन से पूजा करना व्यर्थ है ?

उत्तर—(१) आधि=मन के विकल्पो के साथ एकत्वबुद्धि है। (२) व्याधि+शरीर के साथ एकत्वबुद्धि है। (३) उपाधि—पर

पदार्थों के साथ एकत्वबुद्धि है। आधि व्याधि और उपाधि के साथ एकत्वबुद्धि को छोडकर अपने समाधि स्वरूप ज्ञायक भगवान के साथ एकत्व करना, वह समाधि है। जब तक यह तीन ताप रहेंगे तव तक वह चन्दन से पूजा करने का अधिकारी नही है। पात्र जीव तीन ताप रहित समाधि स्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान आचरण करे, तब चन्दन से भगवान की पूजा की, ऐसा कहला सकता है ?

प्रश्न ३४—चन्दन क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—जैसे—चन्दन को कूडे के ढेर पर गेरा जावे, घिसा जावे जलाया जावे, तो भी चन्दन अपने सुगन्धमयी स्वभाव को नही छोडता है। वह अपने को काटने वाली कुल्हाडी को भी सुगंधित बना देता है, ऐसा चन्दन का स्वभाव है उसी प्रकार आत्मा को कैसी भी प्रतिकूलता का सयोग प्राप्त होवे तो भी, अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को ना छोडे तो चन्दन से भगवान की पूजा की कहा जावेगा।

प्रश्न ३५—चन्दन, चन्दन चढाने के विषय में क्या शिक्षा देता है ?

उ०—घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारु गंधम्।
कृष्टं कृष्टं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षु दण्डम्॥
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काचनं कान्तवर्णम्।
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिर्विकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

अर्थ—हे आत्मा, तुम्हे चन्दन के समान कोई घिसता नही, गन्ने के समान कोई पेलता नही; और सोने के समान दग्ध नही करता है फिर तुम अपने ज्ञायक स्वभाव को छोडकर पर मे, शुभाशुभ विकारी भावो मे क्यो पागल बनते हो ? नही बनना चाहिए। तभी चन्दन से पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न ३६—अपने स्वभाव को जाने-माने बिना चन्दन से पूजा का अधिकारी नहीं है, जरा स्पष्ट रूप से समझाओ ?

उत्तर—एक आदमी था। उसके घर मे एक वहुत पुरानी मैली एक लकडी पडी थी। वह थी चन्दन की, परन्तु उसे मालूम नही था। वह लकडी घर पर पडी-पडी उसे अच्छी नही लगती थी, परन्तु वह खुशबू देती थी। उस आदमी ने गुस्सा मे आकर उस लकडी को कूडे के ढेर पर फेक दिया। थोडी देर के बाद आकर देखा, तो वह वहाँ पर खुशबू फैला रही है। उस आदमी को वडा गुस्सा आया और उस लकडी को उठाकर अग्नि मे डाल दिया। जलते-जलते उसकी खुशबू चारो तरफ फैल गयी, उसी प्रकार हे आत्मा! चन्दन की लकडी के समान कूडे पर गेरना, चूल्हे मे जला देना, ऐसा तुम्हारे साथ नही होता है। जवकि चन्दन की लकडी को कूडे पर गेरने पर और आग पर रख देने पर भी वह अपने खुशबू के स्वभाव को नही छोडती है तव तुम अपने स्वभाव को क्यो छोडते हो? अपने स्वभाव को नही छोडा, तव चन्दन से पूजा की, कहा जा सकेगा।

प्रश्न ३७—गन्ना हमे क्या शिक्षा देता है?

उत्तर—जैसे—गन्ने को कोल्हू मे पेलते हैं तो भी वह मीठा रस देता है। रस को औटाओ, तो वह गुड वन जाता है, तो भी वह अपने मीठे स्वभाव को नही छोडता है, उसी प्रकार हे आत्मा, गन्ने के समान पेलना, और रस के समान औटना, तुम्हारे साथ नही होता तो तुम अपने जानने-देखने के स्वभाव को क्यो भूलते हो? नही भूलना चाहिए। अपने ज्ञायक परमात्मा को जानने वाला ही चन्दन से पूजा का अधिकारी है यह गन्ना हमे शिक्षा देता है।

प्रश्न ३८—सोना सुनार से क्या कहता है?

उत्तर—हे हेमकर! पर दुःख विचार मूढ, कि माँ मुहु: क्षिपसि वार शतानि वन्हौ।

दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेको, लाभः परम खल मुखे तव भस्म पातः॥

अर्थ—सोना, सुनार से कहता है कि हे सुनार ! तुम मुझे चाहे कितनी बार तपाओ, उससे मेरे मे तो शुद्धि की वृद्धि ही होती है लेकिन तेरे मुह मे राख के अलावा कुछ भी नही मिलेगा, उसी प्रकार हे आत्मा ! तुम्हे सोने के समान कोई तपाता नही है तब फिर तुम क्यो आकुलित होते हो ? अत. आकुलता रहित प्राणी ही भगवान की चन्दन से पूजा कर सकता है।

प्रश्न ३९—संसार ताप क्या है ?

उत्तर—पर मे कर्ता-भोक्ता की बुद्धि ही ससार ताप है।

प्रश्न ४०—पर मे कर्ता-भोक्ता की बुद्धि का अभाव कैसे हो ?

उत्तर—सत् द्रव्य लक्षणम् और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत् ॥ का रहस्य जाने अर्थात् 'अनादिनिधन वस्तुये भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाही' ऐसा जानें-माने तो पर मे कर्ता-भोक्ता की बुद्धि का अभाव हो, तब चन्दन से पूजा की, कहा जा सकता है।

प्रश्न ४१—'संसार ताप विनाशनाय चन्दनम्' का कवित्त क्या हैं ?

उ०—जड चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहे, प्रतिकूल कहे, यह झूठी मन की वृत्ती है।
प्रतिकूल संयोगो मे क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु-चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।

प्रश्न ४२—क्या कर्ता बुद्धि का अभाव हुए बिना चन्दन से पूजा नही हो सकती है ?

उत्तर—जैसे—रेत मे तेल निकालने के लिए मशीनो का आर्डर अमेरिका दूं या रूस को दूं, यह प्रश्न ही झूठा है, उसी प्रकार पर मे कर्ता बुद्धि का अभाव हुए बिना चन्दन से पूजा करना, यह प्रश्न ही झूठा है।

अक्षत

प्रश्न ४३—अक्षत से पूजा करना कब ठीक कहलायेगा ?

उत्तर—जिस प्रकार कमोद मे से सफेद चावल निकलता है। उसमे छिलका, रतास और सफेद चावल तीन चीजे होती है। उसमे से छिलका और रतास निकाल देने योग्य है और चावल खाने योग्य है, उसी प्रकार अनादि काल से एक-एक समय करके अपनी मूर्खता-वश द्रव्यकर्म-नोकर्म रूप छिलके के साथ तथा भावकर्म रूप रतास के साथ एकत्व वुद्धि करता रहेगा तब तक अक्षत से भगवान की यथार्थ पूजा नही कर सकता। परन्तु जब यह जीव मेरा आत्मा ही एकमात्र आश्रय करने योग्य है अपनी आत्मा के अलावा अनन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असख्यात कालद्रव्य छिलके के समान है और दया दान-पूजा अणुव्रत-महाव्रतादि भाव रतास के समान है ऐसा जानकर अपने आत्मा का आश्रय ले, तो अक्षत से पूजा करना ठीक है।

प्रश्न ४४—अक्षयपद की प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर—वासमती चावल तो खाने के लिये रखता है और टूटे-फूटे चावल मन्दिर मे चढाने को रखता है। क्या इससे अक्षय पद मिलेगा ? कभी नही मिलेगा। अरे भाई ! अक्षय पद प्राप्त करने के लिये मोह-राग-द्वेष रहित मेरी आत्मा का स्वभाव है। ऐसा जानकर अपने अक्षय-ध्रुव-नित्य स्वभाव का आश्रय ले, तो पर्याय मे अक्षय पद की प्राप्ति होगी, तब अक्षय से यथार्थ पूजा कही जा सकती है।

प्रश्न ४५—पर्याय मे बिगाड़ खाता होने पर भी आत्मा का स्वभाव नष्ट क्यो नही होता है ?

उत्तर—जैसे—चावल सफेद और अखण्ड है। उसी प्रकार मेरी आत्मा स्वच्छ और अखण्ड है। पर्याय मे बिगाडखाता होने पर भी द्रव्य कभी नष्ट नही होता है ऐसा जिसको भान हो उसने अक्षत् से

भगवान की यथार्थ पूजा की—ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न ४६—सम्यग्दृष्टि का भव बिगड़ता भी नही और बढ़ता भी नहीं, ऐसा क्यो कहा जाता है ?

उत्तर – जब स्वभाव मे भव नही और भव का भाव नही है। तब स्वभाव दृष्टिवन्त को भी भव नही और भव का भाव नही है क्योकि स्वभाव दृष्टिवन्त तिर्यचादि मे जाता नही। सम्यग्दर्शन होने पर अल्पभवो मे ही मोक्ष हो जाता है तथा समयसार कलश १९८ मे "सहिमुक्त-एव" ऐसा कहा है। इसलिए दृष्टिवन्त ही अक्षत से पूजा करने लायक है। मिथ्यादृष्टि अक्षत से भगवान की यथार्थ पूजा करने लायक नही है।

प्रश्न ४७—'मान कषाय मल विनाशनाय अक्षतम् का कवित्त क्या है ?

उत्तर—

उज्ज्वल हूं कुन्द धवल हूं प्रभु, पर से न लगा हूं किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगे उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षय निधि पाने, अब दास चरण रज मे आया॥

प्रश्न ४८—अक्षत से पूजा का फल क्या है ?

उत्तर—मान रहित मेरी आत्मा का स्वभाव है। ऐसा जानकर पर्याय मे परम अक्षय पद प्राप्त करना ही अक्षत से भगवान की पूजा का फल है।

पुष्प

प्रश्न ४९—पुष्प से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—दुनिया मे लोहबाण से साधारणतया मानव मर जाता है लेकिन कामदेव के पास कोमल पुष्प का बाण है। वह बाण जिसको लग जावे, वह मर जावे। पुष्प चढ़ाने का तात्पर्य यह है कि [illegible]

को छोड दिया है। अब मैं कामरूपी पुष्प से घाता नही जा सकता। क्योंकि मैने अपनी आत्मा को काम बाण रूपी पुष्प से पृथक् अनुभव कर लिया है। तभी पुष्प से भगवान की पूजा सार्थक है।

प्रश्न ५०—पुष्प हमे क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—रस्ते चलते हुए मुसाफिर ने जगल मे एक बडा सुन्दर गुलाव का फूल खिला हुआ देखा। वह फूल सारे वातावरण को सौन्दर्य अर्पण कर रहा था। जाने वाले मुसाफिरो को सुगन्ध देता था और पवन की लहरो से वह डोल रहा था।

प्रश्न ५१—चलते हुए मुसाफिर ने फूल से क्या पूछा ?

उत्तर—हे फूल ! तुम्हारा जीवन बहुत अल्प है और सायकाल के समय तुम कुम्हाला जावोगे। फिर तुम इतने हस रहे हो; डोल रहे हो; प्रसन्न हो रहे हो, सुगन्ध दे रहे हो और वातावरण को सौन्दर्य अर्पण कर रहे हो, इसमे तुम्हारे जीवन का क्या मर्म है।

प्रश्न ५२—फूल ने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—कितना जीवन जिया यह मत पूछो किन्तु किस प्रकार जिया। यह पूछना चाहिए।

प्रश्न ५३—पुष्प से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

उत्तर—अल्प या अधिक आयु से क्या मतलब है। अगर किसी की उम्र आठ वर्ष की है। उसमे आत्मज्ञान करले तो उत्तम है। किसी की उम्र सौ वर्ष की है उसमे आत्म ज्ञान ना करे तो व्यर्थ है। [अ] जैसे फूल खुशबू देता है, डोलता है, उसी प्रकार हम भी अपने ज्ञायक स्वभाव मे डोले रमणता करे, तब ही भगवान की पुष्प से यथार्थ पूजा की। [आ] जैसे—पुष्प वाह्य मे और अन्तर मे सुकोमल है, वैसे ही अपना आत्म वाह्य—आभ्यतर सुकोमल हो, तब भगवान की यथार्थ पूजा पुष्प से हो सकती है।

प्रश्न ५४—अपने को जाने बिना पुष्प से पूजा क्यो नहीं हो सकती है ?

उत्तर—अपने को जाने विना किसकी पूजा, किसकी यात्रा, किसकी सामायिक, किसकी दया ? अपने आपका अनुभव हुए विना पुष्प से पूजा करना, आत्म हित के लिये कुछ कार्यकारी नही है।

प्रश्न ५५—'काम बाण विध्वंशनाय पुष्पम का कवित्त क्या है ?

उ०—यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन मे माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु भेद कहूं, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।
चिन्तन कुछ, फिर सम्भाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊं जो, अन्तर का कालुष धोती है।

मायाचार रहित मेरी आतमा का स्वरूप है ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही पुष्प से भगवान आतमा की पूजा है।

नैवेद्य

प्रश्न ५६—नैवेद्य से भगवान की पूजा क्या है ?

उत्तर—(१) अनादिकाल से आज तक कितना आहार ग्रहण किया लेकिन भूख शान्त नही हुई। (२) अनादिकाल से आज तक अगणित पदार्थों की इच्छा की, लेकिन रचमात्र भी तृप्ति नही हुई। मेरा स्वभाव अनाहारी और इच्छा रहित है ऐसा जानकर अपने अनाहारी स्वभाव का आश्रय लेकर पर्याय में अनाहारी और इच्छा रहित दशा प्रगट करे, तब नैवेद्य से भगवान की पूजा की। ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न ५७—अज्ञानी नैवेद्य से क्यों पूजा करता है ?

उत्तर—भक्ताभर का पाठ पढता है। सिद्धचक्र का पाठ थापता है। उसके बदले मांगता है कि हे भगवान मुझे खूब धन मिले, मेरे लडके पैदा हो, लडकियाँ ना हो, दुनियाँ मे सबसे बडा कहलाऊँ, सब मेरा मान करे; सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ मेरी रानिया हो, शरीर मे

किसी भी प्रकार का रोग ना हो, पुण्य का सयोग हमेशा बना रहे; ऐसी सासारिक इच्छा किया करते हैं। इन वातो के लिए नैवेद्य से पूजा करना चारो गतियो मे घूमकर निगोद का पात्र बनता है। पर वस्तुओ मे तथा शुभाशुभ भावो मे एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व सात व्यसनो से भी भयकर महान पाप है। इसलिए सासारिक लाभ के लिए नैवेद्य से पूजा करना अनर्थकारी है।

प्रश्न ५८—आचार्यकल्प पं० टोडरमल जी ने सांसारिक प्रयोजन के लिए नैवेद्य आदि से पूजा करने वाले को किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—जैनधर्म का सेवन ससार के नाश के लिए किया जाता है, जो उनके द्वारा सासारिक प्रयोजन साधना चाहते हैं वह बडा अन्याय है। इसलिए वे तो मिथ्यादृष्टि है ही। इस प्रकार सासारिक प्रयोजन सहित जो धर्म साधते है, वे पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो है ही। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २१९)

प्रश्न ५९—क्या करें तो 'नैवेद्य' चढ़ाना सार्थक कहा जावे ?

उत्तर—सयोगो को मिलाने-हटाने मे जीव की चतुराई जरा भी कार्यकारी नही है। आत्मा को देह नहीं, मन नही, वाणी नही, तब आत्मा पर वस्तुओ का आहार करे (ग्रहण करे) यह वात झूठी है। मेरी आत्मा को किसी भी पर पदार्थ की किंचित मात्र भी आवश्यकता नही है ऐसा श्रद्धान-ज्ञान हो, तव नैवेद्य से पूजा की सार्थकता कही जावेगी।

प्रश्न ६०—क्या संयोगों के मिलाने-हटाने में जीव की चतुराई जरा भी कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर—समयसार कलशटीका कलश १६७ मे लिखा है कि "कर्म सामग्री मे अभिलाषा मात्र मिथ्यात्व है ऐसा गणधरदेव ने कहा है।" तथा कलश १६८ मे कहा कि "जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा

संक्लेशरूप परिणाम द्वारा पहले ही बाधा है जो आयुकर्म अथवा असाता-साता कर्म, उस कर्म के उदय से इस जीव को मरण-जीवन, सुख दु ख होता है। इसमें जीव की वर्तमान चतुराई जरा भी कार्यकारी नही है। जो जीव इसमे अपनी चतुराई रखते हैं वे (नियतम् आत्महनो भवन्ति) अपने आत्म को नाश करने वाले है। ऐसा कलश १६९ मे कहा है।

प्रश्न ६१—बाह्य सामग्री मिलाने-हटाने में जीव की चतुराई कार्यकारी नहीं है इसकी स्पष्टता के लिए कहाँ देखें ?

उत्तर—समयसार कलश टीका कलश १६५ से १७३ तक देखें।

प्रश्न ६२—क्या आत्मा के आहारादि का परिग्रह नहीं है ?

उत्तर—आत्मा के स्वभाव मे तथा दृष्टिवन्त ज्ञानियो को आहारादिक का परिग्रह नही है, क्योकि ज्ञानी को समयसार गा० २१२ मे "अनिच्छक अपरिग्रही कहा है" ज्ञानी भोजन को नही चाहता, इस लिए ज्ञानी को भोजन का परिग्रह नही है वह तो ज्ञायक है।

प्रश्न ६३—क्या अनाहारी पद के लिए नैवेद्य चढ़ाया जाता है ?

उत्तर—हाँ भाई! अनाहारी पद के लिए नैवेद्य चढाया जाता है। इसलिए अनाहारीपद का अनुभव हुए बिना नैवेद्य से यथार्थ पूजा नही हो सकती है।

प्रश्न ६४—'क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् का कवित्त क्या है ?

उ०—अब तक अगणित जड़ द्रव्यो से, प्रभु भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥
युग-युग से इच्छा सागर मे, प्रभु गोते खाता आया हूं।
पंचेन्द्रिय मन के षट्‌रस तज, अनुपम रस पीने आया हू॥

दीप

प्रश्न ६५—'दीप' से भगवान की पूजा की—यह कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—जैसे-एक कमरे मे सैकडों वर्षों मे अन्धेरे मे अनेक वस्तुए

पडी हुई होने पर भी, अन्धकार मे सब चीजे एक रूप भासती है। किन्तु प्रकाश होने पर, अनेक चीजे जो एकरूप भासती थी, वह प्रत्येक पृथक-पृथक् जैसी जो है, वैसी ही दिखाई देने लगती है, उसी प्रकार अनादिकाल से एक-एक समय करके मिथ्यात्वरूपी महान अन्धकार के कारण छहो द्रव्यो के गुण-पर्यायो के साथ, आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप के साथ एकत्व बुद्धि चली आ रही है। यदि जीव अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रगट करे, तो जैसा जिस द्रव्य, गुण और पर्याय का स्वरूप है वैसा ही दृष्टि मे आवे, तब दीप से भगवान आत्मा की पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न ६६—जीव के विषय मे अज्ञान-अन्धकार क्या है ?

उत्तर—जीव तो त्रिकाल ज्ञान स्वरूप है उसके बदले शरीर है सो मै हू, शरीर के कार्य मै कर सकता हू, शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो; बाह्य अनुकूल सयोगो से मैं सुखी, बाह्य प्रतिकूल सयोगो से मै दुखी, मै निर्धन, मै धनवान, मै बलवान, मै मनुष्य, मैं सुन्दर हू। मै उपदेश देता हू; मैं चार हाथ जमीन देखकर चलता हू, मै सुबह उठता हू, मैं नहाता हूं, मैं कपडे पहनता हू, मैं रोटी बनाती हू, मै व्यापार करता हू, मै सामायिक करता हू, मैं पाठ करता हू—आदि क्रियाओ मे अपनापना मानता है। मिथ्या अभिप्राय द्वारा जो अपने परिणाम नही हैं, किन्तु पर पदार्थों के परिणाम है। उन्हे आत्मा का परिणाम मानना, यह जीव के विषय मे अज्ञान-अन्धकार है।

प्रश्न ६७—जीव के विषय का अज्ञान अन्धकार कैसे मिटे ?

उत्तर— मैं ज्ञाता-दृष्टा हू, शरीर-मन-वाणी मेरी मूर्ति नही है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनेक गुणो के अभेद पिण्ड की मेरी मूर्ति है। मै सर्वज्ञ स्वभावी अनुपम हू। मेरा अनन्त जीवो, अनन्तान्त पुद्गलो धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्यो से किसी भी प्रकार का किसी भी अपेक्षा कर्ता-कर्म

भोक्ता-भोग्य का सम्बन्ध नही है। क्योंकि इनकी मेरे द्रव्य से पृथक् चाल है ऐसा मानकर अपना आश्रय ले तो जीव के विषय का अज्ञान अन्धकार मिटे तो दीप से भगवान की यथार्थ पूजा की।

प्रश्न ६८—अजीव के विषय मे अज्ञान-अन्धकार क्या है ?

उत्तर—शरीर की उत्पत्ति होने से मैं उत्पन्न हुआ, शरीर के नाश होने मे मैं मर गया। धन शरीर आदि जड पदार्थों मे परिवर्तन होने से अपनी आत्मा मे, इष्ट-अनिष्टपना मानना। शरीर की उष्ण-ठडी आदि अवस्था होने पर मैं ठन्डा-गरम हो गया। शरीर मे क्षुधा-तृषा आदि अवस्था होने पर मुझ क्षुधा-तृषा रोग आदि हो रहे है। शरीर कट जाने पर मैं कट गया। मै काला, मै गोरा, मैं कुवडा आदि मानना तथा धर्म द्रव्य मुझे चलाता है। अधर्म द्रव्य मुझे ठहराता है। आकाश मुझे जगह देता है। काल मुझे परिणमन कराता है। यह अजीव सम्बन्धी अज्ञान-अन्धकार है।

प्रश्न ६९—अजीव के विषय का अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटे ?

उत्तर—पुद्गल का एक-एक परमाणु, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असख्यात कालद्रव्य-यह सब द्रव्य अपनी-अपनी एक-एक व्यजन पर्याय और अनन्त अनन्त अर्थपर्यायो सहित विराज रहे हैं। मेरा इनसे किसी भी प्रकार का, किसी भी अपेक्षा कोई सवध नही है। ऐसा मानकर अपने ज्ञायक परम पारिणमिक भाव का आश्रय ले तो अजीव के विषय का अज्ञान-अन्धकार मिटे तो दीप से पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न ७०—आस्रव-बध के विषय मे अज्ञान-अन्धकार क्या है ?

उत्तर—पुण्य-पाप दोनो विभाव परिणति से उत्पन्न हुए है। इस लिए दोनो वध रूप ही है। पुण्य-पाप भावो को अच्छे-बुरे मानना, यह आस्रव-बध के विषय मे अज्ञान-अन्धकार है।

प्रश्न ७१—आस्रव-बंध के विषय मे अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटे?

उत्तर—आस्रव-बध रहित आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर

सवर-निर्जरा प्रगट करना, यह आस्रव-बध के विषय का अज्ञान-अन्धकार मिटना है तभी दीप से भगवान की पूजा की ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न ७२—अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटे—तब दीप से पूजा हो?

उत्तर—एक कमरे मे हजारो वर्षों से अधेरा था। अन्धकार को दूर करने के लिए, क्या फावडे, बन्दूक, फौज, मजदूरो की जरूरत पडेगी? आप कहेगे नही, बल्कि मात्र दियासलाई का प्रकाश पर्याप्त है, उसी प्रकार अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि सुख पाने के लिए पर का विकार का आश्रय करते हैं, परन्तु सुख नही मिलता। सुख पाने के लिए एक मात्र उपाय अपने पारिणामिक भाव का आश्रय लेना ही है। ऐसा जाने माने, तो सुख पाने के लिए अज्ञान-अधकार मिटे और दीप से यथार्थ पूजा की, ऐसा कहा जावे।

प्रश्न ७३—दीपक क्या बताता है?

उत्तर—दीपक है, उसके सामने सोना रखे, तो क्या उसकी ज्योति बढ जावेगी? कोयला रखे, तो क्या उसकी ज्योति मद हो जावेगी? आप कहेगे नही, क्योकि दीपक का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है; उसी प्रकार हमारे सामने अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो यह सब हमारे ज्ञान का ज्ञेय है। चैतन्य दीपक के सामने अनन्तानन्त प्रतिकूलता होने पर भी उसके स्व-पर प्रकाशकता मे कुछ भी हानि नही होती ऐसा माने-जाने, तो दीप से पूजा की, यह दीपक हमे बताता है।

प्रश्न ७४—क्या मिथ्यात्व का अभाव होने पर ही दीप से पूजा की ऐसा कहा जाता है?

उत्तर—जैसे-दीपक मे जब तक तेल रहता है। तब तक वह जलता रहता है। तेल के समाप्त होने पर दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार आत्मा मे जब-तक मिथ्यात्व राग-द्वेष रहता है तब तक अज्ञानी दु:खी होता हुआ चारो गतियो मे घूमकर निगोद चला जाता

है। अपने स्वभाव का आश्रय लेने से मिथ्यात्वादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो जाती है तभी दीप से पूजा की ऐसा कहा जावेगा।

प्रश्न ७५—क्या पर से उदासीन होने पर ही दीप से पूजा हो सकती है ?

उत्तर—जैसे—दीपक वाह्य पदार्थ की असमीपता मे या समीपता मे अपने स्वरूप से ही प्रकाशित होता है। अपने स्वरूप से ही प्रकाशित दीपक को घट-पटादि वाह्य पदार्थ किंचित भी विक्रिया उत्पन्न नही कर सकते। उसी प्रकार अपने स्वरूप से ही जानने वाले आत्मा को वस्तु स्वभाव से ही विचित्र परिणति को प्राप्त ऐसे मनोहर या अमनोहर शब्दादि वाह्य पदार्थ किंचित भी विक्रिया उत्पन्न नही कर सकते हैं क्योकि आत्मा दीपक की भाँति पर के प्रति सदा ही उदासीन है ऐसा अनुभव करे तो दीप से भगवान की पूजा की।

प्रश्न ७६—दीपक से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

उत्तर—(अ) दीपक को तेल आदि पर पदार्थों की आवश्यकता पडती है तव वह प्रकाशित होता है किन्तु रत्न दीपक को तो उसके लिए कोई अन्य पदार्थ की किंचित् मात्र भी आवश्यकता नही रहती है, क्योकि वह स्वय प्रकाशित है, वैसे ही आत्मा चैतन्य रत्न दीपक है वह स्वय प्रकाशित है। उसको प्रकाशित करने के लिए अन्य पदार्थ को किंचित मात्र भी आवश्यकता नही रहती है।

[आ] तेल आदि से जलता हुआ दीपक तो प्रचड वायु आदि कारणो से वुझ जाता है, किन्तु रत्नदीप को प्रचड वायु आदि नही बुझा सकती है, वैसे ही अनन्त प्रतिकूलता आने पर भी चैतन्य दीपक नही वुझ सकता है अर्थात् उसका सामर्थ्य कम नही होता है।

[इ] तेल से जलते हुए दीपक मे से तो धुआँ इत्यादि कालिमा निकलती है, किन्तु रत्न दीपक मे जरा भी कालिमा नही निकलती है; वैसे ही चैतन्य दीपक मे भी मात्र मोह राग-द्वेप की कालिमा

नही है। तभी हम दीप से भगवान की पूजा करने के अधिकारी है यह दीपक हमे शिक्षा देता है।

प्रश्न ७७—'अग्नि' क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर—ऐसे—अग्नि मे पाचक, प्रकाशक और दाहक तीन मुख्य गुण है। (१) अग्नि पकने योग्य सब पदार्थों को पका देती है इसलिए अग्नि को पाचक कहा है। (२) अग्नि का स्व-पर को प्रकाशित करने का स्वभाव होने से अग्नि को प्रकाशक कहा है। (३) अग्नि जलने योग्य सब पदार्थों को जला देती है। इसलिए अग्नि को दाहक कहा है; उसी प्रकार आत्मा मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन मुख्य गुण है (१) सम्यग्दर्शन पाचक है। (२) सम्यग्ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है। (३) सम्यग्चारित्र शुभाशुभ भावो का जला देता है, इसलिए दाहक है अत सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होने पर ही दीप से पूजा होती है, ऐसा अग्नि हमे शिक्षा देती है।

प्रश्न ७८—अज्ञान विनाशनाय दीपम का कवित्त क्या है ?

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु ! चिरव्याप्त भयंकर अंधियारा।
श्रुत दीप बुझा हे करुणा-निधि बीती नहीं कष्टो की कारा
अतएव प्रभो ! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हू।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर दीप जलाने आया हूं॥

प्रश्न ७९—अज्ञान अन्धकार के पर्यायवाची शब्द क्या क्या हैं ?

उत्तर—पर के साथ एकत्व बुद्धि कहो, मिथ्यात्व कहो, भयकर पाप कहो, शुभभाव के साथ एकत्व बुद्धि कहो, अज्ञान कहो, मोहान्धकार कहो, निगोद कहो, एक ही बात है।

प्रश्न ८०—क्या अज्ञानी दीप से भगवान की पूजा नहीं करता है तो अज्ञानी क्या करे, जिससे दीप से पूजा कर सके ?

उत्तर—अपना अनुभव हुए विना दीप से यथार्थ पूजा नही की जा सकती है। इसलिए हे भव्य ! तू अपने भगवान की दृष्टि कर, तभी दीप से भगवान की पूजा बने। तब ससार के पदार्थो का जैसा

स्वरूप है वैसा ही दृष्टि मे आ जाता है तब 'अज्ञान अन्धकार विनाशनाय दीपम निर्वपामीति स्वाहा' कहना ठीक है।

धूप

प्रश्न ८१—धूप द्वारा पूजा करते समय हमारी भावना कैसी होनी चाहिए ?

उत्तर—जैसे—अग्नि मे जलते समय भी धूप अपना सुगधमय स्वभाव को नही छोडती, वैसे ही बाह्य मे कितना ही प्रतिकूल सयोग हो, तो भी मैं अपने ज्ञान स्वभाव को कभी नही छोडूगा—ऐसी भावना धूप चढाते समय हमारी होनी चाहिए।

प्रश्न ८२—धूप से भगवान की पूजा कौन कर सकता है ?

उत्तर—मैं कौन हू ? मेरा स्वरूप क्या है ? यह चरित्र कैसे बन रहा है ? ये मेरे भाव होते हैं उनका क्या फल लगेगा ? मै दुखी हो रहा हू, सो दुख दूर होने का क्या उपाय है ? इतनी बातो का निर्णय करके अपने सन्मुख होवे तो धूप से भगवान की पूजा की।

प्रश्न ८३—चौबीसी की पूजा मे 'मिस धूम करम जरि जाहि' का का क्या अर्थ है ?

उत्तर—द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से पृथक्पने का अनुभवज्ञान वर्तता हो, तो "मिस धूम कर्म जरि जाहि" कहा जा सकता है।

प्रश्न ८४—हम जो अग्नि मे धूप चढ़ाते हैं क्या उससे कर्मों का नाश नही होता है ?

उत्तर—धूप, अग्नि, हाथ का उठना आदि पुद्गल की क्रिया है। धूप चढ़ाने का मन्द कषाय का भाव पुण्यभाव है। पर और विकारी क्रियाओ से कभी भी कर्मों का नाश नही होता है। बल्कि इन कार्यों को मैं करता हू यह मान्यता मिथ्यात्व का महान पाप है। इसलिए पात्र जीवो को पर और विकार से रहित मेरा आत्मस्वभाव है ऐसा जानकर उसका आश्रय ले तो निमित्त रूप से कहा जाता है कि कर्मो का अभाव किया, तब धूप से पूजा की ऐसा बोला जाता है।

प्रश्न ८५—जैसा वस्तु स्वरूप हैं वैसा मानो तो धूप चढाना सार्थक है; 'वस्तु स्वरूप, क्या है ?

उत्तर—"सब पदार्थ अपने-अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने-अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं—स्पर्श करते है। तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नही करते" ऐसा जाने-माने तब धूप से भगवान की पूजा की ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न ८६—'विभाव परिणति विनाशनाय धूपम्' का कवित्त क्या है ?

उ०—जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
से राग द्वेष किया करता, जब परिणित होती जड़ केरी॥
यों भावकर्म या भावमरण, सदियो से करता आया हू।
निज अनुपम गन्ध अनल से प्रभु, पर-गन्ध जलाने आया हूं॥

फल

प्रश्न ८७—फल द्वारा पूजा करते समय हमारी भावना कैसी होनी चाहिए ?

उत्तर—प्रभो ! मुझे देवगति की प्राप्ति हो, ससार मे सब प्रकार की अनुकूलता मिले, व्यापार आदि अच्छा चले, इत्यादि कोई भी सासारिक फल प्राप्त करने की मुझे अभिलाषा नही है। किन्तु मुझे एकमात्र मोक्षफल की प्राप्ति हो—ऐसी भावना हमारी फल द्वारा पूजा करते समय होनी चाहिए।

प्रश्न ८८—फल चढ़ाने का रहस्य क्या है ?

उत्तर—जैसे—(१) प्रथम खेत को जोतकर, साफ करके जमीन को पोला बनाया जाता है। (२) फिर पानी दिया जाता है। (३) फिर जब बीज बोते हैं तब वृक्ष होता है (४) बाद मे वृक्ष पर फल आता है, उसी प्रकार (१) प्रथम शास्त्रो मे जो बाते बतायी हैं तथा देव-गुरु जो कहते है उसे प्रमाण माने। अपनी समझ मे न आवे उसे असत्य ना कहे। देव-गुरु-शास्त्र की जो आज्ञा हो उसे ध्यानपूर्वक सुने

विचारे, यह खेत जोतकर साफ करके जमीन को पोला बनाने के समान है। (२) पर द्रव्यो मे कर्ता-भोक्ता की बुद्धि मिथ्यात्व है। पूजा-दया-दान-अणुव्रत-महाव्रत-सोलह कारण आदि भावपुण्य वन्ध का कारण है मोक्ष का कारण नही है। पुण्य करते-करते धर्म होगा, निमित्त से उपादान मे कार्य होता है ऐसी मान्यता घोर अज्ञानता है—ऐसा स्वीकार करना यह खेत मे पानी देने के [समान है। (३) अज्ञानी जीव अनादि से एक-एक समय करके मोह-राग-द्वेष के कारण दुखी हो रहा अब वर्तमान मे अपने स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति करे तो यह वीज वोने के समान है। (४) अपनी आत्मा मे विशेष स्थिरता करके चारित्ररूप मोक्ष की प्राप्ति—यह वृक्ष पर फल के समान है यह फल चढाने का रहस्य है।

प्रश्न ८९ फल क्यो चढ़ाया जाता है ?

उत्तर—हे भगवान ! मैंने अनादि से एक-एक समय करके पुण्य से धर्म माना तथा वाह्य क्रियाओ मे सुन्दर फलो के चढाने से धर्म माना। अव मैं उस खोटी बुद्धि का नाश करने के लिए और सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिए फल चढाता हू। अत खोटी बुद्धि के नाश के लिए और सच्ची शान्ति प्राप्ति के निमित्त रूप फल चढाया जाता है।

प्रश्न ९०—जब तक मोक्ष की प्राप्ति ना हो तब तक क्या करना चाहिए ?

उत्तर—जसे - जब देवो को अमृत की इच्छा हुई तब उन्होने समुद्र का मथन किया। मथन करते-करते कीमती रतन निकले उससे वे सन्तुष्ट नही हुए। तब भी समुद्र का मथन करते रहे तो उन्हे हला-हल जहर प्राप्त हुआ उससे वे भयभीत नही हुए। बाद मे मथते-मथते अमृत की प्राप्ति हुई तब उन्हे शान्ति मिली, क्योकि निश्चित वस्तु की प्राप्ति के विना धीर-वीर पुरुष विराम नही लेते है, उसी प्रकार हमे अमृतरूपी मोक्ष की प्राप्ति करनी हैं जब तक वह ना मिले, तव तक शुभभावो मे तथा अनुकूल सयोगो मे सन्तुष्ट नही होना चाहिए

और प्रतिकूल अनिष्ट सयोग से जरा भी डगमगाना नही चाहिए तभी मोक्षफल की प्राप्ति सम्भव है।

प्रश्न ९१—आजकल जीव मोक्ष का पुरुषार्थ नहीं कर सकता तो क्या फल से आजकल पूजा नहीं हो सकती है ?

उत्तर—शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय लेकर दृष्टि मोक्ष प्राप्त होनें पर फल से पूजा की शुरूआत हो जाती है।

प्रश्न ९२—'मोक्ष पद प्राप्तये फलम्' का कवित्त क्या है ?

उ०—जग मे जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मै आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मै शान्त निराकुल चेतन हूं, है मुक्तिरमा सहचरि मेरी।
यह मोह तडक कर टूट पड़े, प्रभु सार्थक फल पूजा तेरी॥

अर्घ

प्रश्न ९३—अर्घ के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर—दो अर्थ है, (१) पूजा की सामग्री, (२) कीमती वस्तु।

प्रश्न ९४—पूजा की सामग्री से क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर—मैं भगवान को अष्ट द्रव्य रूपी अर्घ (सामग्री) से पूजता हूं।

प्रश्न ९५—कीमती वस्तु से क्या तात्पर्य है।

उत्तर—अमूल्य पद प्राप्त करने के लिए कीमती वस्तु अर्पण करता हू।

प्रश्न ९६—कीमती वस्तु क्या है ?

उत्तर—विचारिये, माँगते है अनर्घपद। बासमती चावल तो घर मे खाने के काम आवेगा और भगवान की पूजा सामग्री मे मोटा, टूटा, जरा-सा चावल, जरा-सा नैवेद्य, एक बादाम, दो लौग चढाते हैं। अच्छा घी तो घर पर काम आ जावेगा मन्दिर मे डाल्डा ही ले जाते

हैं। देखो, देते हैं थोडी कीमत की चीज ओर चाहते है अमूल्य पद कितना आश्चर्य है।

प्रश्न ९७—क्या कीमती वस्तु अर्पण किये बिना मोक्ष पद की प्राप्ति नहीं हो सकती है ?

उत्तर—जैसे—कोई मनुष्य पाँच रुपया लेकर हीरा खरीदने जावे तो क्या उसे हीरा मिलेगा ? कभी भी नही मिलेगा, उसी प्रकार अमूल्य पद अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त करने के लिये कीमती वस्तु को अर्पण करना पडेगा, तभी उसकी प्राप्ति होगी। इतना ही नही किन्तु जैन नाम धराकर अणुव्रत, महाव्रत, सोलह कारण आदि शुभभावो को कीमती मान रक्खा है। पात्र जीव कहना है कि हे भगवान ! मैं इसको भी अर्पण करता हू। जहाँ से कभी भी वापस ना आना पडे ऐसे अमूल्य पद की प्राप्ति के लिए आपके चरणो मे अर्घ चढाता हू।

प्रश्न ९८—'अनर्घपद प्राप्ताये अर्घम्' का कवित्त क्या है ?

उ०—क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है ॥
अनुपम सुख तव विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शनबल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अरहत अवस्था है ॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु, निजगुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाऊँगा ॥
तास ज्ञान का कारण, स्व-पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य तानौ उर आनौ ॥

॥ पूजा समाप्त ॥

दसवाँ प्रकरण

समयसार गा० १६० का रहस्य क्या है ?

प्रश्न १—समयसार गा० १६० पुण्य-पाप अधिकार की है, इसमें तेरा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव है यह कहने का क्या प्रयोजन है ?

उ०—यह सर्वज्ञानी दर्शिभी, निजकर्म रज आच्छाद से
संसार प्राप्त न जानता, वो सर्व को सब रीत से ॥१६०॥

अर्थ—वह आत्मा स्वभाव से सर्व को देखने-जानने वाला है तथापि अपने कर्म मल से लिप्त होता हुआ व्याप्त होता हुआ, ससार को प्राप्त हुआ, वह सब प्रकार से सर्व को नही जानता।

प्रश्न २—पुण्य-पाप अधिकार मे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की बात क्यों की ?

उत्तर—(१) जब तक जीव को पुण्य-पाप की रुचि रहेगी तब तक उसे सम्यग्दर्शन नही होगा और (२) पर्याय मे जब तक पुण्य भाव रहेगा तब तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नही बन सकता है। यह बताने के लिये पुण्य-पाप अधिकार मे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की बात की है।

प्रश्न ३—किस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही होगी ?

उत्तर—(१) जो जीव दया-दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रतादि विकारी भावो से धर्म की प्राप्ति होवे। (२) ससार अवस्था मे शुभ-भाव कुछ तो मदद करता ही है। (३) शुभ करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी आदि मान्यता वाले को पुण्य की रुचि है उसको कभी भी सम्यग्दर्शन होने का अवकाश नही है।

प्रश्न ४—गा० १६० में से दो बोल कौन-कौन से निकलते हैं ?

उत्तर—(१) जब तक जीव को पर लक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नही हो सकती अर्थात् जब तक जीव को परलक्षी ज्ञान के उघाड की रुचि,

पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की सामग्री की रुचि रहेगी तब तक उसे सम्यग्यदर्शन की प्राप्ति नही होगी और (२) जब तक पर्याय मे पुण्य-पाप का भाव रहेगा तब तक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नही बन सकता।

प्रश्न ५—क्या आत्महित साधने के लिए मोक्षमार्ग मे पुण्यकर्म-पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किंचित् मात्र भी कीमत नहीं है ?

उत्तर—वास्तव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए; श्रेणी मांडने के लिए, सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड की किंचित् मात्र आवश्यकता नही है। एक मात्र मैं अखण्ड त्रिकाली परम पारिणामिक भाव रूप हू ऐसे अनुभव और ज्ञान की ही आवश्यकता है।

प्रश्न ६—क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पुण्य कर्म, पुण्य-भाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किंचित् जरूरत नहीं है ?

उत्तर—नही है। विचारो ! चार गति के चार जीव हैं। (१) सातवें नरक का नारकी जहाँ पर प्रतिकूल सयोग भरा पड़ा है। (२) नव ग्रैवेयक का मिथ्यादृष्टि देव जहा पर अनुकूल सयोग भरा पडा है। (३) स्वयभूरमण समुद्र का मगरमच्छ तिर्यंच जो जल में पडा है। (४) बडा भारी महाराजा मनुष्य जो हीरो के सिंहासन पर बैठा है। इस प्रकार चारो गतियो के जीवो को पुण्य-पाप के सयोगो मे बडा अन्तर है। नारकी-देव को कुमति आदि तीन ज्ञान का उघाड है और मनुष्य-तिर्यंच को कुमति आदि दो ज्ञान का उघाड है।

चारो गतियो के चारो जीवो को मानो मोटे रूप से ८ बजकर एक मिनट पर सम्यग्दर्शन होना है तो ८ बजे सम्यग्दर्शन के योग्य आत्म सन्मुखतारूप शुभभाव समान होते हैं क्योकि जब जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती तब करणलब्धि का तीसरा भेद अनि-वृत्तिकरण का अभाव होकर ही होता है इस प्रकार चारो गतिओ के

जीवो के सयोगो मे व ज्ञान के उघाड मे बड़ा अन्तर होने पर भी आत्म सन्मुखतारूप परिणाम समान होते है। अत सम्यक्त्व की प्राप्ति मे बाह्य सयोग बाधक-साधक नही होते है। जीव एक मात्र अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्त होती है। ऐसा जानकर सयोग और सयोगी भावो की रुचि का त्याग करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न ७—क्या श्रेणी माँडने के लिए भी पुण्य कर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किंचित् जरूरत नहीं है?

उत्तर—नही है। विचारिये—चार भावलिगी मुनि है। (१) एक मुनि को मति-श्रुतज्ञान का अल्प उघाड़ है और मुनि पदवी है। (२) दूसरे मुनि को मति श्रुत अवधिज्ञान का उघाड है और उपाध्याय पदवी है। (३) तीसरे मुनि को मति-श्रुत-मन पर्यय ज्ञान का उघाड है और कोई पदवी नही है (४) चौथे मुनि को मति श्रुत-अवधि-मन पर्यय चार ज्ञान का उघाड है और आचार्य पदवी है।

विचारिये-चारो भावलिगी मुनि है ज्ञान का उघाड कम-ज्यादा होने पर भी यह चारो मुनि एक ही साथ श्रेणी माँडे वो ६वे गुण-स्थान मे शुद्धि चारो मुनियो को समान ही होती है तो वह ज्ञान का उघाड और पदवी क्या कार्यकारी रहा? कुछ भी नही। एक मात्र अपने त्रिकाली स्वभाव की एकाग्रता ही श्रेणी के लिए कार्यकारी है।

[अ] जैसे—शिवभूति मुनि को ज्ञान का अल्प उघाड होने पर भी आत्मा मे स्थिरता करके अन्तर्मुहूर्त मे केवलज्ञान की प्राप्ति की (आ) दूसरी तरफ अवधिज्ञान-मन पर्ययाज्ञान मे उपयोग हो तो श्रेणी नही माँड सकता है। इससे सिद्ध हुआ श्रेणी माँडने मे भी परलक्षी ज्ञान के उघाड को, पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री को किंचित् मात्र आवश्यकता नही है एक मात्र आत्मा मे एकाग्रता की ही आवश्यकता है।

प्रश्न ८—क्या सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी पुण्य कर्म, पुण्य-भाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किंचित् मात्र आवश्यकता नहीं है ?

उत्तर—नही है विचारिये ! सिद्धशिला ४५ लाख योजन की है उसके नीचे २५ लाख योजन जमीन है और २० लाख योजन पानी ही है। भगवान की वाणी मे आया है कि सिद्धशिला मे कोई जगह सुई की नोक के बराबर भी खाली नही है, जहाँ पर अनन्त सिद्ध विराजमान न हो।

प्रश्न ९—जहाँ पर जमीन है वहाँ पर तो अनन्त सिद्ध समयश्रेणी से लोकाग्र मे विराजमान हैं यह बात समझ मे आती है। परन्तु जहाँ अनादिअनन्त पानी है वहाँ पर भी अनन्त सिद्ध विराजमान है यह बात समझ मे नहीं आती क्योकि जो जीव मोक्ष मे जाता है वह सम-श्रेणी से ही जाता है, जहाँ पानी-पानी ही है वहाँ से मोक्ष कैसे होगा ?

उत्तर—कोई पूर्व भव का बैरी देव भावलिगी मुनि को उठाकर जैसे धोबी कपडे पछाडता है उठाकर समुद्र मे पछाडे वह वहाँ पर ही केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष मे चला जाता है। देखो ! बाहर का सयोग कैसा है। इसलिए सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी पुण्य कर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री और परलक्षी ज्ञान के उघाड की जरूरत नही है।

हे भव्य ! तू अनादिअनन्त भगवान रूप शक्ति का पिंड है। उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि, श्रेणी और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है परलक्षी ज्ञान के उघाड से, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की पदवी से नही। ऐसा जानकर एक बार अपनी ओर दृष्टि करे तो तुझे पता चले, किसी से भी पूछना ना पडेगा।

प्रश्न १०—फिर अपने हित के लिए क्या करें ?

उत्तर—अपने कल्याण के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड की रुचि छोडकर अपने त्रिकाली

ज्ञायक स्वभाव का आश्रय ले तो तभी आत्मा मे धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होगी ।

समयसार कलश २११वें का रहस्य

प्रश्न १—२११वाँ कलश क्या बताता है ?

उत्तर—स्वतन्त्रता की घोषणा करता है ।

प्रश्न २—२११वां कलश तथा उसका अर्थ बताओ ?

उ०—ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥२११॥

अर्थ—वस्तु स्वय ही अपने परिणाम की कर्ता है उसका (वस्तु का) दूसरे के साथ कर्ता कर्मपना नही है । इस बात को इस कलश मे ४ बोलो द्वारा समझाया है । (१) वास्तव मे परिणाम ही निश्चय से कर्म है । (२) परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है अन्य का नही । (३) कर्म-कर्ता के बिना नही होता । (४) वस्तु की एक रूप स्थिति नही रहती । इस कलश मे महा सिद्धान्त भरा है । विश्व मे जीव अनन्त, पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त, धर्म अधर्म—आकाश एक एक और लोक प्रमाण असख्यात कालद्रव्य है, इन सब द्रव्यो के स्वरूप का नियम क्या है ? ये बात इस कलश मे समझाई है ।

(१) कोई गाली देता है; (२) धन चोरी चला जाता है, (३) शरीर मे अनुकूलता या प्रतिकूलता होती है, (४) घर मे कोई मर जाता है, (५) बच्चे कहना नही मानते; (६) लडकी भाग जाती है, (७) लाखो रुपयो का लाभ-नुकसान होता है आदि प्रसग उपस्थित होने पर यदि २११वाँ कलश हमारे सामने होगा तो अशान्ति नही आवेगी, क्योकि ज्ञानी तो जानता है कि 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है' ।

प्रश्न ३—वास्तव मे परिणाम ही निश्चय से कर्म है इसे समझाइये ?

उत्तर—परिणाम, कार्य, कर्म, दशा, हालत, कन्डीसन, यह सब पर्यायवाची शब्द हैं। परिणाम परिणामी का ही होता है। सबसे पहले निर्णय करना चाहिए यह क्या है ? जैसे किसी ने कहा—बाई ने रोटी बनायी तो विचारो यहाँ कार्य क्या है। रोटी बनाना कार्य है वह आटे से हो बनी है। इसी प्रकार ससार मे जो कार्य होता है वह परिणामी से होता है ऐसा जो समझा उसने 'वास्तव मे परिणाम ही निश्चय से कर्म है' ऐसा माना। वास्तव मे पहला बोल समझने से (१) ज्ञान हुआ वह ज्ञान मे से आया, (२) सम्यग्दर्शन हुआ वह श्रद्धा गुण मे से हुआ, (३) दिव्यध्वनि हुई वह भाषावर्गणा मे से हुई, (४) राग आया वह चारित्र गुण मे से आया आदि बातो का निर्णय हो जाता है।

प्रश्न ४—परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही है अन्य का नहीं—इससे क्या तात्पर्य है।

उत्तर—जो पहले बोल मे नही समझा उसे और स्पष्ट करने के लिए आचार्य भगवान ने अति कृपा की। जैसे (१) ज्ञान हुआ वह ज्ञान गुण मे से ही आया वह आँख, नाक, कान, कर्म के क्षयोपशमादि से नही आया। (२) सम्यग्दर्शन हुआ, वह श्रद्धा गुण मे से ही हुआ है देव-गुरु से, दर्शनमोहनीय के उपशमादि से नही हुआ। (३) दिव्य-ध्वनि भाषावर्गणा से ही आयी है, भगवान से नही। (४) ज्ञान गुण मे से ही ज्ञान आया है चारित्र आदि बाकी गुणो से नही आया है। (५) यथाख्यातचारित्र प्रगटा वह चारित्र गुण मे से ही आया है बाकी ज्ञान-श्रद्धा आदि गुणो मे से नही आया आदि बातो का स्पष्टीकरण दूसरे बोल मे अस्ति-नास्ति से समझाया है। इसमे जो कार्य हुआ है वह द्रव्य का ही है, अन्य का नही। एक द्रव्य मे अनन्त गुण है, एक गुण का कार्य दूसरे गुण से हुआ नही है यह बात भी समझायी है।

इससे जीव को अनादिकाल से पर मे कर्ता-भोक्ता बुद्धि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ५—"कर्म कर्ता के बिना नही होता" इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—ससार मे जो कार्य होता है वह कार्य कर्ता के बिना नही होता है, जैसे (१) ज्ञान हुआ, वह ज्ञान गुण बिना नही होता (२) दिव्यध्वनि हुई, वह भाषा वर्गणा के बिना नही हुई (३) गाली वह भाषा वर्गणा के बिना नही हुई। जो मात्र पर्याय का ही मानते हैं द्रव्य को नही मानते है उनसे कहा कि 'पर्याय द्रव्य विना नही होती है।' जब अनादिअनन्त कर्ता स्वय स्वतन्त्रता पूर्वक अपना-अपना कार्य करता है ऐसा जाने-माने, तो उसे तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ६—"वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं रहती" इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—जो वस्तु है उसका एक-एक समय करके बदलना उसका स्वभाव है। जैसे (१) अभी-अभी यह आदमी हमारी प्रशसा कर रहा था, इतने मे निन्दा क्यो करने लगा ? अरे भाई 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती'। (२) अभी थोडा ज्ञान था, ज्यादा कैसे हो गया ? 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती'। (३) पहले ज्ञान ज्यादा था, अब कम कैसे हो गया ? अरे भाई 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती'। (४) इन्द्रभूति गृहीत मिथ्यादृष्टि था, उसे भगवान महावीर के समवशरण मे आने पर सम्यग्दर्शन, मुनिपना, गणधरपना, अवधि मन पर्ययज्ञान कैसे हो गया ? अरे भाई, 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है।' (५) मारीच को भगवान आदिनाथ के समवशरण मे सम्यक्त्व नही हुआ, शेर पर्याय मे कैसे हो गया ? अरे भाई, 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है'। ऐसा जीव जाने तो नियम से विकार का अभाव होकर धर्म की शुरूआत होकर वृद्धि और पूर्णता होती ही है।

प्रश्न ७—२११ कलश के चार बोल समझने वाले जीव को कैसे कैसे भाव एकत्वबुद्धि पूर्वक नहीं आते ?

उत्तर—(१) ऐसा क्यो, (२) इससे यह, (३) यह हो, यह ना हो आदि प्रश्न उपस्थित नही होते हैं। ज्ञानी तो सबका ज्ञाता है क्योकि वह जानता है कि 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है।'

प्रश्न ८—"ऐसा क्यो" ऐसे प्रश्न के लिए ज्ञान स्वभाव में स्थान क्यो नहीं है ?

उत्तर—(१) एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की निन्दा कर रहा था, एकाएक उसकी प्रशसा करने लगा। (२) पार्श्वनाथ भगवान का जीव हाथी की पर्याय मे पागल बना फिरता था, उसे उसी पर्याय मे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई अज्ञानी को ऐसा लगता है। 'ऐसा क्यो'। परन्तु ज्ञाता स्वभाव को जानने वाले ज्ञानी के लिए यह प्रश्न नही उठता, क्योकि 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है' और परिणाम परिणामी का ही होता है अन्य का नही।

प्रश्न ९—निन्दा या गाली के शब्द सुनकर अज्ञानी को और ज्ञानी को कैसे-कैसे भाव होते हैं और क्यो होते हैं ?

उत्तर—'किसी ने गाली दी।' (१) ज्ञानी तो जानता है "गाली तो मात्र शब्दो की अवस्था है। अमुक-अमुक अक्षरो के मिलने से शब्द बने हैं। यह कोई निन्दा नही है। अज्ञानी ऐसा मानता है 'यह मेरी निन्दा हुई' यह उसकी मान्यता का दोष है और वह मान्यता ही दुःख का कारण है।

(२) ज्ञानी जानता है जीव चेतन होने से जड शब्दो की अवस्था कर ही नही सकता, क्योकि शब्द भाषावर्गणा का ही कार्य है। अज्ञानी जीव भी निन्दा के शब्दो को तो परिणमन करा नही सकता किन्तु वह गाली देने का द्वेष भाव करता है और वह मात्र द्वेप भाव से ही दुखी हो रहा है।

प्रश्न १०—'किसी ने गाली दी' इस पर ऐसा क्यो ? इस अपेक्षा पर विचार करते हैं ?

उत्तर—(१) ज्ञानी जानता है—सामने वाला जीव निन्दा के शब्दो को परिणमन करा नही सकता, क्योकि निन्दा के शब्दो का कर्त्ता भाषावर्गणा है और द्वेप भाव का कर्त्ता अज्ञानी का चारित्र गुण है, इसलिए (दूसरे जीव पर) क्रोध करने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता है।

(२) सामने वाला जीव मुझ अरूपी ज्ञायक स्वभावी आत्मा को देख नही सकता, इसलिए जब वह देख नही सकता तो उसने मुझे कुछ कहा ही नही। अज्ञानी तो शरीर और नाम को उद्देश्य करके निन्दा करता है। परन्तु ज्ञानी विचारता है शरीर और नाम तो मेरा है ही नही। शरीर और नाम तो मेरे से पर है, इसलिए ज्ञानी को दुःख नही है। शरीर और नाम अपना नही होने पर भी उसे अपना मानने रूप भूल अज्ञानी जीव करता है, वह ही उसके दुःख का कारण है।

(३) जिस समय इस जीव के ज्ञान का उघाड निन्दा के शब्दो का ज्ञान करने रूप होता है। उस समय वह शब्द ही सामने ज्ञेय रूप होता है ऐसा ज्ञानी जानता है। लेकिन अज्ञानी विचारता है कि मेरी निन्दा ना हो अर्थात् अव्यक्त रूप से ऐसा मानता है कि निन्दा के शब्दो की ज्ञान पर्याय मुझे ना हो। ज्ञान पर्याय तो ज्ञान गुण की है अर्थात् ज्ञान गुण मुझे ना हो ऐसा माना। ज्ञान गुण आत्मा का है अर्थात् मेरी आत्मा मुझे ना हो ऐसा माना। ऐसी मान्यता वाला जीव आत्मघाती महा पापी है।

इससे यह सिद्ध हुआ सामने वाला जीव मेरी निन्दा करता है। ऐसा क्यो ? ऐसे प्रश्न का ज्ञान स्वभाव को जानने वाले के लिए स्थान ही नही। इस प्रकार समझकर ज्ञाता स्वभावी बनकर २११वे कलश का मर्म समझकर सुखी रहना ज्ञानी का कार्य है क्योकि ज्ञानी जानता है 'वस्तु की एक रूप स्थिति नही रहती और परिणाम परिणामी का ही होता है, अन्य का नही।'

प्रश्न ११—'इससे यह' क्या ऐसा प्रश्न भी ज्ञान स्वभावी ज्ञान को उठता नहीं ?

उत्तर—जैसे—हजार रुपया खो गया अज्ञानी ऐसा मानता है कि मेरा रुपया गया, इसलिए मुझे दु ख होता है। वास्तव मे रुपया खो जाने के कारण दु ख नही परन्तु "मेरा खो गया" यह मान्यता ही दु ख का कारण है। ज्ञानी तो विचारता है कि रुपया गया, वह तो पुद्गल की क्रियावती शक्ति के कारण गया। उसके जाने के कारण मुझे दु ख है ही नही। मैं तो स्व पर प्रकाशक ज्ञान स्वभावी आत्मा हू। इसलिए स्व के ज्ञान के समय रुपया खो जाने रूप पुदगल की अवस्था हुई उसका तो मै मात्र परज्ञेय रूप से जानने वाला हू, ऐसा जानने से ज्ञानी को दु ख नही होता है। इससे सिद्ध होता है कि पर के कारण आत्मा मे कुछ भी नही हो सकता। फिर 'इससे यह' का प्रश्न ज्ञानी को नही उठता, मात्र अज्ञानी को ही उठता है। ज्ञानी तो जानता है 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है' परिणाम परिणामी का ही होता है, अन्य का नही।

प्रश्न १२—"यह हो, यह ना हो" क्या ऐसा प्रश्न भी ज्ञान स्वभावी ज्ञान को उठता नही है ?

उत्तर—(१) ससार मे मेरे मित्र ही हो, कोई दुश्मन ना हो। (२) सदा ज्ञानी ही हो, अज्ञानी ना हो। (३) मेरी अनुमोदना करने वाले हो, विरोध करने वाले ना हो (४) अच्छा ही हो, बुरा ना होवे। ऐसा अज्ञानी मानता है परन्तु ऐसा कभी हो नही सकता, क्योकि सब पदार्थ सत् है, प्रत्येक पदार्थ कायम रहकर पलटना ही उसका स्वभाव है। क्योकि 'वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है' ऐसा मानने वाले ज्ञानी जीव को 'यह हो, यह ना हो' ऐसा प्रश्न उठता ही नही। ज्ञानी तो समझता है कि ससार के सम्पूर्ण पदार्थ सत् है तथा सदा काल कायम रहते हुए पलटते रहना उनका स्वभाव है। फिर अमुक ज्ञेय हो और अमुक ना हो, ऐसा भेद पाडना वह ज्ञान स्वभाव मे नही है।

इसलिए ज्ञानी तो सबका ज्ञाता ही रहता है क्योकि यह 'सत् द्रव्य लक्षणम्' 'उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत्' के रहस्य को जानता है और भगवान अमृतचन्द्राचार्य रचित २११ वें कलश के चार बोलो को जानता है कि (१) वास्तव मे परिणाम निश्चय से कर्म है। (२) परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही है, अन्य का नही। (३) कर्म कर्त्ता के बिना नही होता (४) वस्तु की एकरूप स्थिति नही रहती है। इसलिए ज्ञानी को (१) ऐसा क्यो (२) इससे यह (३) यह हो, यह ना हो, ऐसे प्रश्न उपस्थित नही होते है। वह तो सिद्ध भगवान के समान ज्ञाता-दृष्टा रहता है, मात्र जानने मे प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है, जानने मे विरुद्धता नही। ऐसा ज्ञान स्वभावी का रहस्य बताने वाले जिन जिनवर और जिनवर वृषभो को बारम्बार नमस्कार।

मोक्ष और बंध का कारण

साधक जीव के जब तक रत्नत्रय भाव की पूर्णता नही होती तब तक उसे जो कर्मबध होता है उसमे रत्नत्रय का दोष नहीं है। रत्नत्रय तो मोक्ष का ही साधक है, वह बध का कारण नहीं होता; परन्तु उस समय रत्नत्रय भाव का विरोधी जो रागांश होता है वही बध का कारण है।

जीव को जितने अश में सम्यग्दर्शन है उतने अश तक बधन नही होता; किन्तु उसके साथ जितने अश मे राग है उतने ही अंश तक उस रागाश से बधन होता है।

(पुरुषार्थसिद्धयुपाय गाथा २१२, २१५)

ग्यारहवाँ प्रकरण

प्रवचनसार ९३वीं गाथा का रहस्य

प्रश्न १—'अर्थ' का मतलब क्या है ?

उत्तर—(१) अर्थ अर्थात प्रयोजन। दुख का अभाव और सुख की प्राप्ति यह ही प्रत्येक जीव का प्रयोजन है और नही है। (२) प्रकृष्ट रूप से अपनी आत्मा मे जुडान करना उसका नाम प्रयोजन है।

प्रश्न २—अपनी आत्मा मे प्रकृष्ट रूप से जुड़ान करने से क्या होता है ?

उत्तर—अपनी आत्मा मे प्रकृष्ट रूप से जुडान करने से अनादि काल से जो समय-समय भावमरण हो रहा था। उसका अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रमश मोक्ष होता है।

प्रश्न ३—अर्थ का दूसरा अर्थ क्या है ?

उत्तर—श्री प्रवचनसार गा० ९३ मे लिखा है कि—

है अर्थ द्रव्य स्वरूप, गुणात्मक कहा है द्रव्य को।
अरु द्रव्य-गुणो से पर्यायो, पर्यय मूढ पर समय है ॥९३॥
'अत्थो खलु दव्वमओ, दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि
तेहि पुणो पज्जाया, पज्जय मूढा पर समया ।९३।

अर्थ—अर्थ द्रव्य स्वरूप है द्रव्यो को गुण रूप कहा गया है। द्रव्य और गुणो से पर्यायें होती हैं पर्यायमूढ जीव पर समय है। देखो ! यहाँ अर्थ को द्रव्य स्वरूप है ऐसा कहा है।

प्रश्न ४—क्या द्रव्य ही अर्थ है ?

उत्तर—श्री प्रवचनसार गा० ८७ मे द्रव्य-गुण और पर्याय तीनो को अर्थ नाम से कहा है।

प्रश्न ५—द्रव्य को अर्थ श्री प्रवचनसार में क्यो कहा है ?

उत्तर—द्रव्य अपने गुणो और पर्यायो को प्राप्त होते हैं इसलिए द्रव्य को अर्थ कहा है।

प्रश्न ६—यदि द्रव्य अपने गुणो और पर्यायो को प्राप्त ना करे अर्थात दूसरो को प्राप्त करे तो क्या होगा ?

उत्तर—अनर्थ हो जावेगा, क्योकि कोई भी द्रव्य अपने गुण-पर्यायो को छोडकर नही जाता है। परन्तु उल्टी मान्यता के कारण अभिप्राय मे अनर्थ हो जावेगा।

प्रश्न ७—गुण को अर्थ श्री प्रवचनसार मे क्यो कहा है ?

उत्तर—गुण जो अपने आश्रय भूत द्रव्य और पर्यायो को प्राप्त होते हैं इसलिए गुण को अर्थ कहा है।,

प्रश्न ८—यदि गुण अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्याय को प्राप्त न हो और गुण दूसरे द्रव्यो और पर्यायो को प्राप्त हो तो क्या होगा ?

उत्तर—वास्तव मे सदैव गुण अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्यायो को ही प्राप्त होते है अन्य को नही। परन्तु कोई ऐसा कहे कि गुण दूसरे द्रव्य और पर्यायो को प्राप्त होते है तो उसकी मान्यता मे अनर्थ हो जावेगा। वह चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद की सैर करेगा।

प्रश्न ९—पर्याय को अर्थ श्री प्रवचनसार मे क्यो कहा है ?

उत्तर—पर्याय द्रव्य को गुण को क्रम परिणाम से प्राप्त करती है इसलिये पर्याय को अर्थ कहा है।

प्रश्न १०—यदि पर्याय द्रव्य-गुण को क्रम परिणाम से प्राप्त ना करे तो क्या होगा ?

उत्तर—वास्तव मे पर्याय द्रव्य-गुणो को क्रम परिणाम से ही प्राप्त करती है, अन्य को नही। परन्तु कोई उल्टा कहे, तो उसकी मान्यता मे अनर्थ हो जावेगा।

प्रश्न ११—द्रव्य-गुण-पर्याय को 'अर्थ' कहा, इससे हमको क्या लाभ है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायो मे ही वर्तता है, वर्तता रहेगा और वर्त रहा है—ऐसा जाने-माने तो तुरन्त मोह का

अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ वन जाता है।

प्रश्न १२—प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायों मे ही भूत-भविष्य-वर्तमान मे वर्त रहा, वर्तेगा और वर्तता रहा है ऐसा सिद्धान्त जानने से मानने से धर्म की प्राप्ति नियम से होती है यह सिद्धान्त शास्त्रो मे कहाँ-कहाँ आया है ?

उत्तर—(१) मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२ मे लिखा है कि "अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमे है, कोई किसी को परिणमाया परिणमता नाही और परिणमाने का भाव निगोद का कारण है।" (२) कार्तिकेय अनुप्रेक्षा गा० २१९ मे लिखा है कि "समस्त द्रव्य अपने-अपने परिणामरूप द्रव्य-क्षेत्र-काल सामग्री को प्राप्त करके स्वय ही भावरूप परिणमित होते है, उन्हे कोई रोक नही सकता है।" (३) 'तेहि पुणो पज्जाया' श्री प्रवचनसार गा. ९३ मे द्रव्य और गुणो से पर्याये होती हैं। (४) लोक मे सर्वत्र जो जितने पदार्थ है वे सब निश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को प्राप्त होते हैं—वे सब पदार्थ अपने द्रव्य मे अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं स्पर्श करते है। तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नही करते। अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाह रूप से तिष्ट रहे है तथापि सदा काल अपने स्वरूप से च्युत नही होते हैं पर रूप परिणमन न करने से अपनी अनन्त व्यक्ति नष्ट नही होती। इसलिए वे टकोत्कीर्ण की भाँति स्थित रहते है और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनो की हेतुता से वे विश्व का सदा उपकार करते हैं, अर्थात् वे टिकाये रखते हैं। [समयसार गा० ३ की टीका से] (५) वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है वही कर्ता है। फिर मालिक के मालिक वनकर क्यो नीति न्याय गमाते हो। (६) समयसार गा० १०३ तथा ३७२ महासिद्धान्त की गाथा हैं, इसमे भी वही लिखा है तथा समयसार मे २०० तथा २०१ का कलश देखो। (७) जड चेतन

की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने मे होती है, ऐसा पूजा मे भी आया है। (८) अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्वगुण बताता है कि वस्तु ध्रौव्य रहती हुई, अपना-अपना प्रयोजनभूत कार्य करती हुई निरन्तर बदलती रहती है। (९) भगवान उमास्वामी ने 'सत्द्रव्यलक्षणम्, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्' यह महा सिद्धान्त बताया है।

प्रश्न १३—जो भगवान का बताया हुआ ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं मानता उसे भगवान ने क्या-क्या कहा है ?

उत्तर—(१) समयसार ५५वे कलश मे 'महा मोह अज्ञान अधकार है उसका सुलटना दुनिवार है।' तथा मिथ्यादृष्टि कहा है। (२) प्रवचनसार मे "पद पद पर धोखा खाता है" ऐसा कहा है। (३) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मे "तस्य देशना नास्ति" कहा है।

प्रश्न १४—जो पर्याय उत्पन्न होती है तब किसको याद रखें तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर—श्री प्रवचनसार का "तेहि पुणो पज्जाया" अर्थात् द्रव्य और गुणो से पर्यायें होती है पर से नही। ऐसा जाने तो ससार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्रश्न १५—(१) समयसार से ज्ञान हुआ। (२) दर्शनमोहनीय के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व हुआ। (३) उसने गाली दी, तो गुस्सा आया। (४) जीव विकार करे, तो नया कर्म बध होता है (५) दिव्यध्वनि से ज्ञान होता है (६) ज्ञेयो के जानने से ज्ञान की प्राप्ति होती है आदि कथनो मे 'तेहि पुणो पज्जाया' का सच्चा ज्ञान कब होवे ?

उत्तर—जैसे—"समयसार से ज्ञान हुआ" 'तेहि पुणो पज्जाया' से पता चला ज्ञान आत्मा के ज्ञान गुण से आया, समयसार से नही। ऐसा जानने से ज्ञान सुख, सम्यग्दर्शनादि परसे आता है ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव हो तो 'तेहिं ुणो पज्जाया' को जाना। बाकी पाँच प्रश्नो के उत्तर इसी प्रश्न के अनुसार दो।

प्रश्न १६—द्रव्य-गुण तो शुद्ध है पर्याय में अशुद्धि कहाँ से आई ?

उत्तर—द्रव्य-गुण तो अनादिअनन्त शुद्ध हैं उस पर लक्ष्य ना करने से पर्याय मे अशुद्धि उत्पन्न होती है और अपने द्रव्य गुणो के अभेद पिण्ड पर लक्ष्य करे तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है पर से या द्रव्यकर्मो से उत्पन्न नही होती है।

प्रश्न १७—"पज्जय मूढा हि पर समया" अर्थात् पर्यायमूढ पर समय है इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—जब आदिनाथ भगवान ने दीक्षा ली तो मारीच ने भी ली थी। उसने भगवान का विरोध किया ऐसा जानकर अज्ञानी द्वेष करता है। वही मारीच दसवे भव मे भयकर क्रूर शेर बना, जिसको देखकर जँगल के जीव थर्राते थे। उसकी क्रूरता देखकर अज्ञानी को द्वेष होता है। शेर पर्याय मे सम्यग्दर्शन हुआ तो अज्ञानी को उसके प्रति राग आता है। २४वाँ तीर्थंकर होने पर पूज्य कहलाया तो अज्ञानी को शुभराग आता है।

मारीच को देखकर शेर पर्याय मे द्वेष और शेर पर्याय मे सम्यग्दर्शन होने पर राग, महावीर होने पर अतिराग किया। इसलिए मिथ्यादृष्टि को पर्यायदृष्टि होने से राग-द्वेष ही उत्पन्न होता है। मारीच से लेकर महावीर पर्यन्त सलगपने देखो तो मारीच द्वेष के योग्य नही है, शेर द्वेष और राग करने योग्य नही है ऐसा जाने तो राग-द्वेष उत्पन्न नही होगा। ज्ञानी को सदैव स्वभावदृष्टि ही होती है इसलिए राग-द्वेष उत्पन्न नही होता है।

प्रश्न १८—द्रव्यदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि सो मिथ्या-दृष्टि का दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—(१) एक कुत्ता है। उसको कोढ हो रहा है। उसमे बहुत बदबू आ रही है अज्ञानी उस पर द्वेष करता है। कुत्ता मर कर मन्द-कषाय के कारण रानी बनी, उसको देखकर अज्ञानी राग करता है। रानी ने जवानी के नशे मे मदिरापान किया। रानी मरकर नरक मे

गयी, अज्ञानी द्वेष करता है। अज्ञानी मात्र इस जीव की अवस्था को लक्ष्य मे लेता है तो राग-द्वेष होता है। यदि सर्व अवस्थाओ मे 'वह का वह जीव है' ऐसा माने तो किसी के प्रति द्वेष और किसी के प्रति राग नही होगा, मात्र वे सब ज्ञान का ज्ञेय बनेंगे। यदि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो अवस्थाओ मे नित्यता का विचार करे तो बदबू, प्यार और द्वेष उत्पन्न नही होगा, बल्कि शान्ति की प्राप्ति होगी।

(२) एक राजा था। उसका एक प्रधान बडा ज्ञानी था। राजा ने एक बार प्रधान सहित सबको खाने के लिए आमन्त्रित किया। राजा ने सबसे पूछा—रसोई कैसी है। सबने कहा, महाराज—बहुत उत्तम स्वादिष्ट है। राजा ने प्रधान से पूछा, 'प्रधान जी, रसोई कैसी है।' प्रधान ने कहा, "जैसी होती है वैसी है।" एक बार प्रधान सहित राजा घोडे पर सवार होकर कही जा रहे थे। रास्ते मे गन्दे नाले का पानी सडने के कारण बहुत बदबू आ रही थी, निकलना भी मुश्किल था। राजा ने कहा, प्रधान जी बडी बदबू आ रही है। परन्तु प्रधान ने कुछ उत्तर नही दिया। प्रधान ने विचारा राजा बार-बार पूछता है इसे बोधपाठ देना चाहिए। कुछ दिन बाद प्रधान ने राजा को खाने के लिए निमन्त्रण दिया। प्रधान ने गन्दे नाले का बदबूदार पानी लाकर, उसमे निर्मली डालकर साफ करके उसमे केशर आदि डालकर सुगधित बना दिया और सबसे कह दिया—कि राजा पानी माँगे, कोई न देना, मै ही दुंगा। खाना खाने के बीच मे राजा ने पानी माँगा, तब प्रधान जी स्वय लाये। राजा सुगन्धित पानी को पीकर दग रह गया और राजा ने विचारा कि प्रधान इतना स्वादिष्ट भोजन और सुगधित पानी पीता है। इसलिए प्रधान ने मेरी रसोई को अच्छा नही बताया था। राजा ने पूछा, प्रधान जी, इतना स्वच्छ और सुगधित पानी कहाँ से लाए हो ? प्रधान ने जवाब दिया, महाराजा उस सडे गदे नाले का पानी जिसमे उस दिन बदबू आ रही

थी उस नाले से यह पानी मगवाया था। बाद मे उसको स्वच्छ व सुगधित बनाया है। पानी की भूत अवस्था, वर्तमान रूप सुगन्धित अवस्था तथा भविष्य की पेशाब रूप अवस्था का लक्ष छोडकर मात्र पुद्गल की नित्यता का विचार करे तो जीव मे वीतरागता आये बिना नही रह सकती।

अत मारीच, शेर, नन्दराजा, महावीर अवस्था से देखने पर अज्ञानी को राग-द्वेष उत्पन्न होता है और वही आत्मा है ऐसी नित्यता को देखे, तो वीतरागता की प्राप्ति तुरन्त हो जाती है।

अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव है जिस जीव को।
वो सर्व आगम धर भले ही, जानता नहि आत्मा को ॥२०१॥
नहि जानता जहं आत्मा को, अनआतम भी नहीं जानता।
वो क्यो हि होय सुदृष्टि जो जीव अजीव को नहि जानता ॥२०२॥

तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि मात्र पर्याय को ही देखता है और दु खी होता है। यदि दु ख का अभाव करना हो तो स्वभाव को देखो तो शान्ति आवेगी "पज्जय मूढाहि परसमया" ऐसा प्रवचनसार में कहा है। स्वभावदृष्टि सो सम्यक्दृष्टि। इसलिए अपने स्वभाव का आश्रय लेना प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

श्री समयसार के ५०वें कलश का रहस्य

प्रश्न १९—सुखी होने का, ज्ञानी बनने का और परमात्मा बनने का उपाय समयसार ५०वें कलश मे, क्या उपाय बताया है ?

उत्तर—यह ५०वें कलश का रहस्य समझ जावे, तो जीव और पुद्गल मे कर्ता-कर्म भाव है ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव होते ही सुखी पने का और ज्ञानीपने का अनुभव होता है और जैसे-जैसे अपने मे लीन होता जाता है वैसे-वैसे परमात्मा बनता जाता है।

प्रश्न २०—५०वें कलश के बोलों से क्या घटित होता है ?

उत्तर—यह हमारा लडका है। मैं इसका पालन-पोषण करता हू लेकिन यह जरा भा मेरी आज्ञा का पालन नही करता तो देखो श्री

अमृतचन्द्राचार्य का यह सिद्धान्त कि 'ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' यह याद आते ही शान्ति आ जावेगी क्योकि 'सब पदार्थ अपने द्रव्य मे अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मो के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं—स्पर्श करते हैं तथापि वह द्रव्य परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नही करते' तात्पर्य यह है कि ससार मे जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं उनमे अनन्त गुण और पर्यायें हैं। पर्याय प्रति समय बदलती रहती है कोई समय ऐसा नही, जिस समय किसी भी द्रव्य की कोई पर्याय न बदलती हो। जब कायम रहते हुए, पर्याय का निरन्तर बदलना स्वाभाविक है तो मैं किसी मे कुछ कर सकता हूँ या मेरा कोई करे; इस प्रश्न के लिए अवकाश ही नही रहता। निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक सबने ज्ञान ही किया है, ज्ञान ही करेंगे लेकिन मात्र मिथ्यादृष्टि की मान्यता मे फेर है। मात्र ज्ञान के अलावा जीव पर मे कुछ हेर फेर नही कर सकता है। ऐसा यह महासिद्धान्त 'ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है।' उसकी यथार्थतया समझकर अन्तर मे परिणमन करे तो अपूर्व शान्ति मिलेगी।

प्रश्न २१—'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' इस वाक्य मे से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर—पाँच बोल निकलते हैं। (१) ज्ञानी, (२) अपनी परिणति एकदेश, (३) अपनी परिणति पूर्ण; (४) पर, (५) पर परिणति।

प्रश्न २२—ज्ञानी आदि पाँच बोलो पर नौ पदार्थ उतार कर बताओ ?

उत्तर—(१) ज्ञानी=जीवतत्त्व, (२) अपनी परिणति एकदेश= सवर-निर्जरातत्व; (३) अपनी परिणति पूर्ण=मोक्षतत्त्व, (४) पर=अजीवतत्व; (५) पर परिणति=आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप।

प्रश्न २३—ज्ञानि आदि पाँच बोलो को पाँच भाव पर उतारकर समझाओ ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न २४—ज्ञानी आदि पाँच बोलों पर चार काल उतार कर समझाओ ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न २५—ज्ञानी आदि पाँच बोलो पर सुखदायक—दुःखदायक उतारकर समझाओ ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न २६—ज्ञानी आदि पाँच बोलो पर देव-गुरु धर्म उतारकर समझाओ ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न २७—ज्ञानी आदि पाँच बोलों पर संयोगादि पांच बोल उतारकर समझाओ ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न २८—'पुदगल तो अपनी और परकी परिणति न जानता हुआ प्रवर्तता है' इस वाक्य पर से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर—इस पर से भी पाँच बोल निकलते हैं—(१) पुदगल, (२) अपनी परिणति, (३) पर, (४) पर परिणति एकदेश, (५) पर परिणति पूर्ण।

प्रश्न २९—पुद्गलादि पांच बोलो मे सात तत्व उतारकर समझाइये ?

उत्तर—(१) पुद्गल=अजीव तत्व; (२) अपनी परणति= आस्रव बंधतत्व; (३) पर=जीव तत्व, (४) पर परिणति एकदेश= संवर-निर्जरातत्व; (५) पर परिणति पूर्ण=मोक्षतत्व।

प्रश्न ३०—पुद्गलादि पाँच बोलो पर पांच भाव उतारकर समझाइए ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न ३१—पुद्गलादि पाच बोलों पर चार काल उतारकर समझाइये ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न ३२—पुद्गलादि पांच बोलो पर सुखदायक—दु खदायक उतारकर समझाइये ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न ३३—पुद्गलादि पांच बोलो पर संयोगादि पांच बोल उतार कर समझाइये ?

उत्तर—मौखिक उत्तर दो।

प्रश्न ३४—समयसार ५०वें कलश का सार क्या बता रहा है ?

उत्तर—(१) कोई हमारी निन्दा करता है या प्रशसा करता है (२) कोई गाली देता है, कोई मिठाई देता है (३) कोई गर्दन काटता है, कोई स्तुति करता है (४) घर मे माल आता है या चोरी हो जाती है (५) शरीर ठीक रहता है या भयानक बीमारी पैदा हो जाती है। इत्यादि जितने भी प्रश्न उपस्थित हो, तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य का सिद्धान्त ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है ऐसा माने तो शान्ति आ जावेगी।

तीर्थंकर—गणधरादि एक ही बात बतलाते है क्योकि अनन्त ज्ञानियो का एकमत होता है और एक अज्ञानी के अनन्त मत होते हैं। तमाम ज्ञानियो का एक मत है कि सत् द्रव्य लक्षणम्' 'उत्पाद ध्रौव्य युक्त सत्।' 'अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाहीं' और दूसरो को परिणमाने का भाव निगोद का कारण है। छहढाला मे कहा है कि 'पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनते न्यारी है जीव चाल' 'रागादि प्रगट ये दु ख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन' इत्यादि। तू जीव है तेरा किसी भी पर द्रव्य से कोई भी सम्बन्ध नही है। पुण्य भाव से तू जो अपना भला होना मानता है वह जहर है यह सबसे बडा मिथ्यात्व है इसलिए पुण्य भाव से भी दृष्टि उठा। अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को जान।

प्रश्न ३५—हमारे जीवन में कोई अनुकूल या प्रतिकूल सयोग आवे तो क्या करें ?

उत्तर—(१) वास्तव मे कोई सयोग अनुकूल प्रतिकूल है ही नही। अपनी मिथ्या मान्यता ही प्रतिकूल है। (२) तुम्हारे जीवन मे कैसा ही अनुकूल-प्रतिकूल सयोग हो उस समय तुम अरहत और सिद्ध जो कार्य करते हैं वही कार्य करो अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा बनो तो जीवन मे शान्ति आ जावेगी यही बात ५०वे कलश मे है।

प्रश्न ३६—ज्ञानी के कितने अर्थ है ?

उत्तर—तीन अर्थ हैं, जहाँ जैसा हो वहाँ वैसा जानना। वैसे विशेपरूप से दूसरे नम्बर की बात शास्त्रो मे आती है।

(१) 'जिसमे ज्ञान हो वह ज्ञानी' इस अपेक्षा निगोद से लेकर सिद्ध शिला तक सब जीव ज्ञानी। (२) 'सम्यग्ज्ञानी सो ज्ञानी, मिथ्याज्ञानी सो अज्ञानी।' इस अपेक्षा तीसरे गुणस्थान तक अज्ञानी और चौथे गुणस्थान से ऊपर के सब ज्ञानी हैं। (३) 'सम्पूर्ण ज्ञानी सो ज्ञानी, कम ज्ञान वाले अज्ञानी' इस अपेक्षा चार ज्ञानधारी गणधर भी अज्ञानी है। मात्र अरहत सिद्ध ज्ञानी है।

प्रश्न ३७—आपने ३६वें प्रश्न मे ज्ञानी के तीन प्रकार बताये हैं। क्या ये भेद किसी शास्त्र में आये हैं ?

उत्तर सभी शास्त्रो मे आये है। मुख्य रूप मे श्री समयसार गाथा १७७-१७८ के भावार्थ मे तथा गाथा ३२० के भावार्थ मे यह तीन ज्ञानी के प्रकारो का वर्णन किया है।

प्रश्न ३८—समयसार ५०वें कलश में दो बोल क्या बताये हैं ?

उत्तर—(१) ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति जानता हुआ प्रवर्तता है। (२) पुद्गल अपनी और पर की परिणति न जानता हुआ प्रवर्तता है।

प्रश्न ३९—५०वें कलश में दो बोलो मे क्या बात आ जाती है ?

उत्तर—भेद विज्ञान की सम्पूर्ण बात आ जाती है।

बारहवाँ प्रकरण

सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय

प्रश्न १—श्री समयसार गा० ३८ मे सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

उत्तर—

मैं एक शुद्ध सदा अरुपी, ज्ञान दृग हू यथार्थ से ।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नहीं अरे ॥३८॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप परिणत आत्मा यह जानता है कि मैं निश्चय से एक हू, शुद्ध हू, दर्शन-ज्ञानमय हू, सदा अरुपी हू; किंचित् मात्र भी अर्थात् परमाणु मात्र भी मेरा नही यह निश्चय है ।

प्रश्न २ - समयसार गाथा ३८ का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—(१) निगोद से लगाकर द्रव्यलिगी मुनि तक अनादिकाल से एक-एक समय करके अपनी भ्रमात्मक वुद्धि के कारण क्रोध मान, माया, लोभ, पांच इन्द्रियाँ, मन, वचन, देह, चार गतियो मे, आठ द्रव्यकर्मों मे नोकर्म मे (पर वस्तुओ मे), धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक लोक प्रमाण असख्यात काल आदि द्रव्यो मे तथा अपनी आत्मा को छोडकर अन्य आत्माओ मे अपनेपने की खोटी वुद्धि से पागल हो रहे है । यह मै ही हू मैं इनका कर्ता हू, ये मेरे काम हैं, मैं हू सो ये ही हैं, ये हैं सो मैं हू आदि भूत-भविष्य-वर्तमान विकल्पो मे पागल होने से अत्यन्त अप्रतिवुद्ध था । (२) तव धर्मी (ज्ञानी) ने कहा, हे भव्य ! नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म से तेरा कुछ भी सम्वन्ध नही है तू क्यो व्यर्थ मे पागल वना हुआ है । तू तो एक-शुद्ध-दर्शन-ज्ञानमयी-सदा अरुपी भगवान आत्मा है । ऐसा सुनकर अपने स्वभाव की ओर दृष्टि दी तो इसे ऐसा अनुभव हुआ "मैं चैतन्य मात्र ज्योतिस्वरूप आत्मा

हू यह मेरे स्वसम्वेदन से ही प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। मै एक हू, शुद्ध हू, दर्शन-ज्ञानमयी हैं। सदा अरूपी हूँ; यह स्वसम्वेदन अनुभवी ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानियो को इनका पता नही है। जो जीव ऐसा अनुभव करता है उसी जीव ने प्रसन्नचित से भगवान आत्मा की बात सुनी है। वह नियम से मोक्ष को प्राप्त होता है। इसकी महिमा ज्ञानी ही जानते है, अज्ञानी नही जानते। यह ३८वी गाथा का तात्पर्य है।

प्रश्न ३—क्या करें तो अनादिकाल का पागलपना समाप्त हो ?

उत्तर—(१) मेरी आत्मा को छोडकर बाकी अनन्त आत्माएँ हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं, धर्म-अधर्म आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असख्यात् काल द्रव्य हैं। इनसे तो मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न था, न है और न होगा। (२) पर्याय मे जो विकारी शुभाशुभ भाव है वह एक समय के है। शुभाशुभ भावो मे एकत्व बुद्धि ससार है वह एक समय का ही है। मैं स्वय अनादिअनन्त हूँ ऐसा जाने तो उसी समय पागलपन मिट जाता है और तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है फिर जैसे-जैसे अपने स्वभाव मे एकाग्रता करता है। क्रमश परिपूर्णता की प्राप्ति कर स्वय ज्ञानघनरूप अमृत का पिण्ड वन जाता है।

प्रश्न ४—श्री समयसार की ७३वीं गाथा मे धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

उत्तर—

मै एक शुद्ध ममत्वहीन रु ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ।

इसमे रहूँ स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥७३॥

भावार्थ—(१) एक मात्र "मैं एक हूँ शुद्ध हूँ, ममतारहित हूँ, ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण हूँ, ऐसा अभेद स्वभाव की ओर दृष्टि करे तो तुरन्त ससार का अभाव और धर्म की प्राप्ति होती है। यह ही उपाय क्रोधादि के क्षय का है, अन्य उपाय नही है। (२) कर्ताकर्म की ६९-७०

गाथा मे पहले कहा था कि अभेद अनन्त गुणो का तादाम्य सिद्ध सम्बन्ध है। उसकी ओर दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है। दया-दान-पूजा-यात्रा-महाव्रत-अणुव्रतादि का सयोग-सिद्ध सम्बन्ध है। इनसे अपनापना माने तो पर्याय मे मिथ्यादर्शन-ज्ञान चारित्र की दृढता होती है। (३) शुभभाव जो ससार का कारण है। उसको अज्ञानी दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी मोक्ष का कारण मानता है। कुन्द-कुन्द आचार्य ने गा० ७२-७४ मे शुभभावो को अपवित्र, घिनावना, मल-मैलरूप, जड स्वभावी, अनित्य, अशरण, अध्रुव, वर्तमान मे दु खदायी और भविष्य मे भी दु खदायी कहा है। ऐसा जाने माने और मैं "एक-शुद्ध-ममत्वहीन-ज्ञानदर्शनपूर्ण हू" ऐसे स्वभाव का आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति होती है। यह धर्म की प्राप्ति का उपाय गाथा ७३ मे बताया है।

प्रश्न ५—श्री प्रवचनसार गा० १९२ में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

उत्तर—

ए रीत दर्शन ज्ञान है, इन्द्रिय-अतीत महार्थ है।
मानूँ हूं-आलम्बन रहित शुद्ध जीव निश्चल ध्रुव है।१९२।

(१) (२) ज्ञान-दर्शन से तन्मयी=पर पदार्थो से अतन्मयी हू। (३) अतीन्द्रिय महापदार्थ=इन्द्रियात्मक सब पर पदार्थ हैं। अचल=चलायमान सवज्ञेय पर्यायो से भिन्न हू, क्योकि वह चलरूप है। (५) निरालम्ब=ज्ञेय रूप सब पर द्रव्यो से भिन्न हू।

प्रश्न ६—श्री प्रवचनसार गाथा १९२ का रहस्य क्या है ?

उत्तर—आचार्य भगवान कहते है कि मैं आत्मा को "(१) दर्शन-स्वरूप, (२) ज्ञानस्वरूप, (३) अतीन्द्रिय महापदार्थ, (४) अचल (५) निरालम्ब मानता हू-जानता हू। इसलिये आत्मा एक है। एक है तो शुद्ध है। शुद्ध है तो ध्रुव है। तो एकमात्र वह ही प्राप्त करने योग्य है। लक्ष्मी, शरीर, सयोगो मे सुख-दु ख की कल्पना, शत्रु-मित्र-

पना यह मूर्खता है। अज्ञानी लक्ष्मी आदि की प्राप्ति मे लगा रहता है यह अनन्त ससार का कारण है। तू स्वय को भूलकर पागल हो रहा है। एक बार अपने भगवान आत्मा को देख ! तुझे तुरन्त, शान्ति की प्राप्ति हो। इसलिए हे भव्य ! एक बार जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले तो जो भगवान ने जाना है वैसा ही तू जानेगा और ऐसा अपूर्व आनन्द प्रगट होवेगा, जिसका वर्णन नही हो सकता है।

प्रश्न ७—आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा तो हम जानते हैं फिर हमें शान्ति क्यो नहीं है ?

उत्तर—बिल्कुल नही जानते, क्योकि अपनी आत्मा का अनुभव हुए विना आत्मा त्रिकाल शुद्ध है – यह जानना तोते जैसा है। देखो ! समयसार की छठी गाथा मे भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने "वही समस्त अन्य द्रव्यो के भावो से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है।" ऐसा बताया है।

वास्तव मे अनुभव होने पर ही मैं ससार मे अकेला था और मोक्ष मैं भी अकेला हू ऐसा पता चलता है। इसलिए पात्र जीवो को ज्ञानी गुरुओ के सत्सग मे रहकर, सत्य बात का निर्णय करके, अपना आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करना चाहिए।

प्रश्न ८—ज्ञानों के (धर्मी के) उपदेश से सावधान हुआ-ऐसा आपने कहा—क्या द्रव्यलिगी मुनि के उपदेश से धर्म की प्राप्ति नही होती है ?

उत्तर—वास्तव मे धर्म की प्राप्ति मात्र आत्मा के आश्रय से ही होती है धर्मी अधर्मी के आश्रय से कभी नही। परन्तु जैसे – किसी ने हीरे जवाहरात का कार्य सीखना है तो वह जौहरी के पास से सीखता है और काम सीख लेने पर इसकी कृपा से सीखा ऐसा उपचार से कहा जाता है। उसी प्रकार जिसे धर्म की प्राप्ति करनी हो और जिसको

धर्म की प्राप्ति हुई हो उसी से सीखना चाहिए। जब स्वय अनुभव हो जाता है तब उपचार से इनसे हुआ ऐसा बोलने मे आता है। द्रव्यलिंगी साधु कभी भी धर्म मे निमित्त नही हो सकता है। प्रवचनसार गा० २७१ मे द्रव्यलिंगी मुनि को ससारतत्व कहा है और वह धर्म प्राप्ति मे निमित्त बने, ऐसा कभी नही होता है। धर्म की प्राप्ति मे निमित्त ज्ञानी गुरु ही होता है, अज्ञानी नही हो सकता।

[नियमसार गाथा ५३]

प्रश्न ९—जब धर्म की प्राप्ति आत्मा के आश्रय से ही होती है तब धर्मी गुरु निमित्त होता है ऐसा क्यो कहा ?

उत्तर—वास्तव मे कार्य उस समय पर्याय की योग्यता से ही होता है परन्तु उस समय वहाँ कौन निमित्त है ऐसा ज्ञान कराया है। क्योकि जहाँ उपादान होता है वहाँ निमित्त अवश्य ही होता है ऐसा वस्तु स्वभाव है। निमित्त जितने भी है वह सब धर्मद्रव्य के समान उदासीन ही है।

प्रश्न १०—जब उपादान मे कार्य होता है तब निमित्त होता ही है ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर—(१) प्रवचनसार गा० ९५ मे बताया है कि 'जो उचित बहिरग साधनो की सन्निधि के सद्भाव मे अनेक अवस्थाएँ करता है।' यहाँ तात्पर्य इतना ही है जहाँ कार्य हो वहाँ उचित निमित्त होता ही है। न हो ऐसा नही होता है।

(२) **"उपादान निज गुण जहाँ, निमित्त पर होय।**
भेदज्ञान प्रमाण विधि, बिरला बूझै कोय॥"

(३) जहाँ सच्चाकारण रूप उद्यम करे, वहाँ अन्य निमित्त कारण होते ही है—ऐसा वस्तु स्वभाव है।

प्रश्न ११—समयसार गाथा दो में जीव की सिद्धि कितने बोलो से की है ?

उत्तर—जीव कैसा है उसकी सिद्धि सात बोलो से की है। (१)

जीव उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है। (२) जीव चैतन्यस्वरूप है। (३) जीव अपने अनन्त धर्मों मे रहता है। (४) जीव गुण पर्यायवन्त है (५) जीव स्व-पर प्रकाशक है। (६) जीव अन्य द्रव्यो से भिन्न असाधारण चेतना गुण रूप है। और (७) जीव सदा अपने स्वरूप मे टकोत्कीर्ण रहता है ऐसा विशेषो वाला जो जीव पदार्थ है उसे ही समय कहा है।

प्रश्न १२—समयसार की दूसरी गाथा मे स्वसमय किसे कहा है?

उत्तर—जब जीव का स्वरूप पहिचानकर स्व-पर का भेदज्ञान करे। तब जीव पर से भिन्न अपने दर्शन-ज्ञान स्वभाव मे निश्चल परिणति रूप होता हुआ, अपने मे स्थित होता है उसे स्वसमय कहा है।

प्रश्न १३—प्रवचनसार गाथा ११ मे क्या बताया है?

उत्तर—कषाय बिना शुद्धोपयोग धर्म है। जो जीव राग बिना पूर्ण शुद्धोपयोगरूप परिणमे, वह जीव मोक्ष सुख को प्राप्त करता है और धर्म परिणति वाला वह ही जीव जो शुभराग सहित हो तो स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है मोक्ष को प्राप्त नही करता है। इसलिए शुभराग हेय है और शुद्धोपयोग ही प्रगट करने योग्य उपादेय है।

आवश्यक कर्त्तव्य

यदि उत्तम मार्ग मे ही गमन करने की अभिलाषा है तो बुद्धिमान पुरुषो का यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि वे मिथ्यादृष्टियो, विसहसो अर्थात् विरुद्ध धर्मानुयायियों सन्मार्ग मे भ्रष्ट हुए मायाचारियो व्यसनानुरागियो तथा दुष्टजनो की सगति को छोड़कर उत्तम पुरुषो का सत्सग करें।

—पद्मनन्दि पञ्चविशति छन्द-३४

तेरहवां प्रकरण

निश्चय-व्यवहार समझने समझाने की कुंजी

प्रश्न १—निश्चय-व्यवहार किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) स्वाश्रित निश्चय, पराश्रित व्यवहार। (२) व्याप्य-व्यापक का सद्भाव निश्चय, व्याप्य-व्यापक का अभाव व्यवहार। (३) अभेद सो निश्चय, भेद सो व्यवहार। (४) अनुपचार सो निश्चय, उपचार सो व्यवहार। (५) भूतार्थ सो निश्चय, अभूतार्थ सो व्यवहार (६) मुख्य सो निश्चय, गौण सो व्यवहार। इन सब परिभाषाओ का अर्थ एक ही है।

प्रश्न २—स्वाश्रित निश्चय और पराश्रित व्यवहार को किस-किस प्रकार जानना चाहिए ?

उत्तर—(१) जीव का विकारी भाव स्वाश्रित होने से निश्चय है। इसकी अपेक्षा कर्म आदि पर द्रव्य पराश्रित होने से व्यवहार है। (२) निर्मल (अविकारी) परिणति स्वाश्रित होने से निश्चय है। इसकी अपेक्षा जीव का विकारीभाव, पर निमित्त की अपेक्षा रखता है। इसलिए पराश्रित होने से व्यवहार है। (३) अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव स्वाश्रित होने से निश्चय है। इसकी अपेक्षा निमल (अविकारी) परिणति त्रिकाली न होने से व्यवहार है।

प्रश्न ३—निश्चय-व्यवहार को दूसरी तरह से समझाइये ?

उत्तर—(१) जीव का विकारी भाव व्याप्य-व्यापक भाव का सद्भाव होने से निश्चय है। कर्मादि परद्रव्य-व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव होने से व्यवहार है। (२) निर्मल परिणति व्याप्य-व्यापक भाव का सद्भाव होने से निश्चय है। जीव का विकारी भाव व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव होने से व्यवहार है। (३) अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव व्याप्य-व्यापक भाव का सदभाव होने से निश्चय है।

निर्मल परिणति व्याप्य व्यापक भाव का अभाव होने से व्यवहार है।

इसी प्रकार अभेद-भेद, अनुपचार-उपचार, भूतार्थ-अभूतार्थ और मुख्य-गौण पर लगाना चाहिए। अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के सामने सब व्यवहार है।

प्रश्न ४—तीनो प्रकार के निश्चय-व्यवहार को समझने-समझाने से क्या लाभ है ?

उत्तर—शास्त्रो मे चार अनुयोग रूप कथन है। चारो अनुयोगो मे जहाँ-जैसा जिस अपेक्षा कथन किया है, वैसा जानकर अपने मे वीत-रागता प्रगट करना चारो अनुयोगो का तात्पर्य है। सर्वज्ञ की वाणी का तात्पर्य एक मात्र वीतरागता ही है।

प्रश्न ५—विकारी पर्याय को स्वाश्रित निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—(१) जो जीव रागादि को पर का मानकर, स्वच्छन्द होकर निरुद्यमी होता है, उसे क्षणिक उपादान की मुख्यता से रागादि आत्मा के है-ऐसा ज्ञान कराया है (२) रागादि मेरी पर्याय मे मेरे अपराध से है ऐसा जानकर स्वभाव-का आश्रय लेकर अभाव करे इसलिए विकारी पर्याय को स्वाश्रित निश्चय कहा है। यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा है।

प्रश्न ६—निर्मल पर्याय को निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—निर्मल पर्याये प्रकट करने योग्य है अत निश्चय कहा है।

प्रश्न ७—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक को निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक आश्रय करने योग्य है अतः निश्चय कहा है, क्योकि इसी के आश्रय से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि, और पूर्णता होती है ?

प्रश्न ८—(१) विकारीभाव, (२) शुद्ध निर्मलदशा और (३) अखण्ड त्रिकाली, तीनो को निश्चय कहा, इससे अज्ञानी को भ्रमणा होती है ?

उत्तर—वास्तव मे इससे तो अज्ञानी की भ्रमणा का अभाव होता है, क्योंकि जहाँ शास्त्रो मे (१) विकारीभाव को निश्चय कहा है वहाँ यह जानना कि आचार्य भगवान दोप का ज्ञान कराना चाहते हैं और जो जीव ऐसा मानता है कि रागादिक कर्म ही कराता है उनकी ऐसी बुद्धि होने के लिए विकारी भाव को निश्चय कहा है। (२) शुद्ध निर्मल पर्याय प्रगट करने योग्य है शुभ भाव नही। इस अपेक्षा निश्चय कहा है। (३) त्रिकाली अखण्ड ही एकमात्र आश्रय करने योग्य है तू उसका आश्रय ले, तो तेरा भला होगा—इसलिए निश्चय कहा है।

प्रश्न ६—रागादि को परभाव क्यो कहा है ?

उत्तर—रागादि पर के आश्रय से होता है इसलिए रागादि को परभाव कहा है।

प्रश्न १०—निश्चय-व्यवहार के विषय मे क्या ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर—(१) निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और व्यवहार से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना, क्योकि जिनेन्द्र भगवान ने सम्पूर्ण व्यवहार का त्याग कराया है।

प्रश्न ११—व्यवहार के श्रद्धान से मिथ्यात्व क्यो है ?

उत्तर—व्यवहारनय=स्वद्रव्य-परद्रव्य को, स्वद्रव्य के भावो और परद्रव्य के भावो को तथा कारण-कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना।

प्रश्न १२—निश्चय के श्रद्धान से सम्यक्त्व क्यों है ?

उत्तर—निश्चयनय=स्वद्रव्य-परद्रव्य को, स्वद्रव्य के भावो और परद्रव्य के भावो को यथा कारण-कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता

है इसलिए उसका श्रद्धान करना ।

प्रश्न १३—आप कहते कि हो, व्यवहारनय का त्याग करना और निश्चनय का श्रद्धान करना परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयों को ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना । तथा कही व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे 'ऐसे है नही, निमित्तादि की उपेक्षा उपचार किया है'—ऐसा जानना इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है ।

प्रश्न १४—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं 'ऐसे भी है, और ऐसे भी है' इसलिए दोनों नयो का ग्रहण करना चाहिए, क्या वह गलत है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, उन्हे जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है । दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है'—इस प्रकार भ्रम रूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है ।

प्रश्न १५—व्यवहार असत्यार्थ है तो जिन मार्ग मे उनका उपदेश क्यो दिया ? एकमात्र निश्चयनय का ही निरूपण करना चाहिए था ?

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है उत्तर दिया है कि जैसे किसी अनार्य म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने म कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है इसलिए व्यवहार का उपदेश है । इस प्रकार निश्चय को अगीकार कराने के लिए व्यवहार के द्वारा उपदेश देते है परन्तु व्यवहारनय है वह अंगीकार करने योग्य नही है ।

प्रश्न १६—समयसार गाथा ११ में भूतार्थ-अभूतार्थ किसे बताया है ?

उत्तर—

व्यवहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्मस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥११॥

अर्थ—व्यवहानय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है ऐसा ऋषीश्वरो ने वताया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है वह जीव वास्तव मे सम्यग्दृष्टि है।

प्रश्न १७—ऋषिश्वरो ने क्या बताया है ?

उत्तर—व्यवहारनय सब ही झूठा है इसलिए वह अविद्यमान' असत्य, अभूत अर्थ को प्रगट करता है शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्यभूत अर्थ को प्रगट करता है।

प्रश्न १८—क्या व्यवहारनय है ही नही ?

उत्तर—व्यवहारनय है, उसका विपय भी है, परन्तु व्यवहारनय अनुमरण करने योग्य नही है।

प्रश्न १९—व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य क्यो नही है और निश्चय अनुसरण करने योग्य क्यो है। इसको (१) स्वद्रव्य-पर-द्रव्य मे; (२) स्वद्रव्य के भावो-पर द्रव्य के भावो मे (३) कारण-कार्य मे लगाकर समझाओ ?

उत्तर—(१) **व्यवहारनय**=स्वद्रव्य और परद्रव्य को, किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। **निश्चयनय**=स्वद्रव्य और परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता। सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए। अत निश्चयनय का निश्चयरूप और व्यहारनय का व्यहार-रूप श्रद्धान करने योग्य है।

(२) **व्यवहारनय**=स्वद्रव्यो के भावो को और परद्रव्य के भावो को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए।

निश्चयनय=स्वद्रव्य के भावो को और परद्रव्य के भावो को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता। सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए। अत निश्चय नय का निश्चयरूप और व्यवहारनय का व्यवहार रूप श्रद्धान करने योग्य हैं।

(३) व्यवहारनय—कारण-कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना चाहिए। निश्चयनय=कारण-कार्यादिक को किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण नही करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए। अत निश्चयनय का निश्चयरूप और व्यवहारनय का व्यवहाररूप श्रद्धान करने योग्य है।

प्रश्न २०—एक द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है और उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है। इस बात को दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घडा निरूपित किया जाय सो निश्चय और घृत सयोग के कारण उपचार से उसी को घृत का घडा कहा जाय, सो व्यवहार है। इसी प्रकार १८ दृष्टान्त देकर समझाया जाता है।

(१) शुभभावो को आस्रव-बध कहना यह निश्चय है भूमिकानुसार और शुभभावो को मोक्षमार्ग कहना यह व्यवहार है। (२) जीव को जीव कहना निश्चय है और जीव को इन्द्रिय वाला कहना व्यवहार है। (३) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को बन्ध मार्ग कहना निश्चय है और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहना यह व्यवहार है। (४) अणुव्रतादि के भाव को बन्धरूप कहना निश्चय है और ज्ञानी के अणुव्रतादि के भाव को श्रावकपना कहना यह व्यवहार है। (५) महा-

व्रतादि के राग को बन्ध रूप कहना निश्चय है और भावलिंगी मुनि के महाव्रतादि को मुनिपना कहना यह व्यवहार है। ६) लोटे को पीतल का कहना निश्चय है और लोटे को पानी का कहना यह व्यवहार है। (७) रोटी आटे से बनी निश्चय है और रोटी बाई ने बनायी यह व्यवहार कथन है। (८) केवलज्ञान-ज्ञानगुण मे से हुआ निश्चय है और केवलज्ञान ज्ञानावरणीय के अभाव से हुआ यह व्यवहार कथन है। (९) वीर्य का क्षायिकपना वीर्य गुण मे से हुआ निश्चय है और वीर्य का क्षायिकपना अन्तरायकर्म के क्षय से हुआ यह व्यवहार कथन है। (१०) ज्ञान का क्षयोपशम ज्ञान से हुआ यह निश्चय है और ज्ञान का क्षयोपशम ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से हुआ यह व्यवहार कथन है। (११) कपडे अपने से धुले यह निश्चय है और कपडे बाई ने धोये यह व्यवहार कथन है। (१२) जीव अपनी क्रियावती शक्ति से चला यह निश्चय है और जीव धर्मद्रव्य से चला यह व्यवहार कथन है। (१३) चश्मा अपनी योग्यता से उठा यह निश्चय है और चश्मे को मैंने उठाया यह व्यवहार कथन है। (१४) अभेद आत्मा को आत्मा कहना निश्चय है और ज्ञान-दर्शन-चारित्र को आत्मा कहना व्यवहार है। (१५) श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी उसे सम्यगदर्शन कहना निश्चय है और देव-गुरु-शास्त्र के राग को सम्यग्दर्शन कहना यह व्यवहार कथन है। (१६) देशचारित्र को श्रावकपना कहना निश्चय है और १२ अणुव्रतादिक को श्रावकपना कहना यह व्यवहार कथन है। (१७) तीन चौकडी के अभावरूप शुद्धि को मुनिपना कहना निश्चय है और २८ मूलगुण के राग को मुनिपना कहना व्यवहार कथन है। (१८) राग को आत्मा का कहना निश्चय है और राग को कर्म का कहना व्यवहार कथन है। ऐसे ही सब जगह जान लेना चाहिए और व्यवहार का अर्थ ऐसा है नही, यह निमित्तादि की अपेक्षा कथन है, ऐसा ध्यान मे रखना चाहिए।

प्रश्न २१—ग्यारहवीं गाथा मे किस व्यवहार को अभूतार्थ कहा

है और वहाँ किस व्यवहार की बात ही नहीं है ?

उत्तर—ग्यारहवी गाथा मे अध्यात्म का जो चार प्रकार का व्यवहार है, उसे अभूतार्थ कहा है। आगम के व्यवहार की वात ११वी गाथा मे नही है। जब अध्यात्म के व्यवहार का निपेध है, तब आगम के व्यवहार की कौन बात है ? अर्थात् कुछ भी नही।

प्रश्न २२—चार प्रकार के आगम का व्यवहार कौन-कौन सा है ?

उत्तर—(१) उपचरित सद्भूत व्यवहारनय —जो उपाधि सहित गुण गुणी को भेद रूप से ग्रहण करे। जैसे—ससारी जीव के मतिज्ञानादि पर्याय और नर-नारकादि पर्याये। (विकारी पर्यायो को जीव की कहना)।

(२) अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय —जो निरुपाधिक गुण और गुणी को भेद रूप ग्रहण करे। जैसे केवलज्ञान, केवलदर्शन। (शुद्ध पर्याय को जीव की कहना)।

(३) उपचरित असद्भूत व्यवहारनय —अत्यन्त भिन्न पदार्थों को जो अभेद रूप से ग्रहण करे। जैसे—जीव के महल, घोडा वस्त्रादि कहना। (अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों को जीव का कहना)

(४) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय —जो नय सयोग सम्बन्ध से युक्त दो पदार्थों के सम्बन्ध को विषय बनाये। जैसे—जीव का शरीर जीव का कर्म आदि कथन॥ (एक क्षेत्रावगाही शरीर और कर्म को आत्मा का कहना) ११वी गाथा मे इस आगम के व्यवहार की तो बात ही नही है।

प्रश्न २३—चार प्रकार का आगम का व्यवहार कब और किसको लागू पड़ता है ?

उत्तर—एकमात्र अपना अनुभव-ज्ञान होने पर साधक जीवो को ही लागू पडता है और मिथ्यादृष्टि और केवली को लागू नही पड़ता है।

प्रश्न २४—चार प्रकार के अध्यात्म का व्यवहार कौन-कौन-सा है ?

उत्तर—(१) उपचरित सद्भूत व्यवहारनय.—"ज्ञान पर को जानता है", अथवा ज्ञान मे राग ज्ञात होने से "राग का ज्ञान है" ऐसा कहना अथवा ज्ञाता स्वभाव के भानपूर्वक ज्ञानी "विकार को भी जानता है" ऐसा कहना। (२) अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय·—ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी का भेद करना। (३) उपचरित असद्भूत व्यवहारनय—साधक ऐसा जानता है कि मेरी पर्याय मे विकार होता है। उसमें जो व्यक्त राग-बुद्धिपूर्वक राग प्रगट ख्याल मे लिया जा सकता है ऐसे राग को आत्मा का कहना। (४) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयः—जिस समय बुद्धिपूर्वक राग है उस समय अपने ख्याल मे न आ सके, ऐसा अबुद्धि पूर्वक राग भी है उसे जानना।

प्रश्न २५—चार प्रकार का अध्यात्म का व्यवहार कब और किसको लागू पड़ता है ?

उत्तर—एकमात्र साधक जीवो को ही लागू पडता है और मिथ्या दृष्टि और केवली को लागू नही पडता है।

प्रश्न २६—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय का पृथक्-पृथक् अर्थ करो ?

उत्तर—(१) पर का उपचार आता है, इसलिए उपचरित कहा है। (२) अपने मे होता है, इसलिए सद्भूत कहा है। (३) भेद पडता है, इसलिए व्यवहार कहा है। (४) श्रुतज्ञान का अश है, इसलिये नय कहा है।

प्रश्न २७—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का पृथक्-पृथक् अर्थ करो ?

उत्तर—(१) पर का उपचार नही आता है, इसलिए अनुपचरित कहा है। (२) अपना नही है, इसलिये असद्भूत कहा है। (३) भेद

पडता है, इसलिये व्यवहारनय कहा है। (४) श्रुत ज्ञान का अश है, इसलिये नय कहा है।

प्रश्न २८—चार प्रकार के अध्यात्म के व्यवहार को भी झूठा क्यो कहा है ?

उत्तर - भेद दृष्टि मे निर्विकल्प दशा नही होती और सरागी को विकल्प बना रहता है इसलिए जहाँ तक रागादिक दूर न हो वहाँ तक भेद को गौण करके, अभेद रूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। इस अपेक्षा अध्यात्म के व्यवहार को झूठा कहा है। [समयसार गा० ७ के भावार्थ मे से]

प्रश्न २९—क्या व्यवहार सर्वथा असत्यार्थ है ?

उत्तर—व्यवहार को असत्यार्थ कहा था वहाँ ऐसा नही समझना चाहिए कि वह सर्वथा असत्यार्थ है किन्तु कथचित् असत्यार्थ जानना चाहिए क्योकि जब एक द्रव्य को भिन्न, स्वपर्यायो से अभेदरूप, उसके असाधारण गुण मात्र को प्रधान करके कहा जाये तब परस्पर द्रव्यो का निमित्त नैमित्तिक भाव तथा निमित्त से होने वाली पर्याये वे सब गौण हो जाते हैं। अभेद द्रव्य की दृष्टि मे वे प्रतिभासित नही होते, इसलिए वे सब उस द्रव्य मे नही है ऐसा कथचित निषेध किया जाता है। यदि उन भावो को उस द्रव्य मे कहा जावे तो व्यवहारनय से कहा जा सकता है। [समयसार गा० ११ मे से]

प्रश्न ३०—किस दृष्टि से व्यवहारनय सत्यार्थ है ?

उत्तर—यदि निमित्त-नैमित्तिक भाव की दृष्टि से देखा जावे तो व्यवहारनय कथचित् सत्यार्थ भी कहा जा सकता है यदि सर्वथा असत्यार्थ ही कहा जावे तो सर्व व्यवहार का लोप हो जावेगा और व्यवहार का लोप होने से परमार्थ का भी लोप हो जावेगा। इसलिए जिनदेव का स्याद्वादरूप उपदेश समझने से ही सम्यकज्ञान है। सर्वथा एकान्त मिथ्यात्व है। [समयसार गा० ५८ से ६० के भावार्थ मे से।]

प्रश्न ३१—व्यवहारनय के त्याग का उपदेश क्यों दिया?

उत्तर—निश्चयनय को प्रधान कहकर व्यवहारनय के ही त्याग का उपदेश किया है क्योकि समयसार गा० २७२ मे कहा है कि निश्चयनय के आश्रय से वर्तते हैं, वे ही कर्मों से मुक्त होते है और जो एकान्त व्यवहार के ही आश्रय से वर्तते है, वे कभी कर्मो से नही छूटते।" इसलिये व्यवहारनय है, उसका विषय भी है किन्तु उसके आश्रय से कभी धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता नही होती बल्कि उसके आश्रय से ससार परिभ्रमण होता है इसलिए व्यवहारनय के त्याग का उपदेश दिया है।

प्रश्न ३२—व्यवहार का फल क्या है?

उत्तर—प्राणियो को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। जिन-वाणी मे व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन जानकर बहुत किया है किन्तु उसका फल ससार ही है। देखो! भगवान का कहा हुआ व्यवहार नवग्रैवेयक तक ले जाता है किन्तु उसका ससार बना रहता है—उसका दृष्टान्त द्रव्यलिगी मुनि है।

प्रश्न ३३—निश्चय का फल क्या है?

उत्तर—शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नही, उसका उपदेश भी विरल है वह कही-कही पाया जाता है इसलिए उपकारी श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है। देखो—भगवान का कहा हुआ निश्चय शुभ-अशुभ दोनो से बचाकर, जीव को शुद्धभाव मे—मोक्ष मे ले जाता है उसका दृष्टान्त सम्यग्दृष्टि है कि जो नियम से मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रश्न ३४—ग्यारहवी गाथा का भाव थोड़े मे क्या रहा?

उत्तर—देखो! ससार मे चार प्रकार का अस्तित्व है (१) **पर द्रव्य का अस्तित्व**—अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माएँ अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्य धर्म, अधर्म आकाश एक-एक लोकप्रमाण असख्यात

कालद्रव्य हैं इतना पर द्रव्य का अस्तित्व है। (२) विकारीपर्यायो का अस्तित्व=शुभाशुभ विकारी भाव का अस्तित्व है (३) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायों का अस्तित्व है। (४) त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का अस्तित्व हैं। अब जिसको अपना भला करना हो वह तीन प्रकार के अस्तित्व से अपना ध्यान हटाकर चौथे प्रकार का अस्तित्व स्वय है उस पर दृष्टि देवे, तो ही धर्म की शुरूआत वृद्धि और पूर्णता होकर मुक्तिरूपी लक्ष्मी का नाथ बनता है। ११वी गाथा जैन दर्शन का प्राण है। यदि कुन्दकुन्द भगवान की आज्ञा माने तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो और अनन्तकाल का ससार—परिभ्रमण अल्पकाल मे नाश हो जावे अत. अपने त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही धर्म को प्राप्ति वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न ३५—पंच परमेष्टियो के आश्रय से, दया दान-पूजा-अणुव्रत महाव्रतादि के आश्रय से धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती और दया हम जो व्रतादि करते हैं, वह व्यर्थ ही हैं ?

उत्तर—अनादिकाल से अज्ञानी जीव अनन्तवार दिगम्बर जैन द्रव्यलिगी मुनि वना और शुक्ललेश्या का शुभभाव अनन्तवार किया परन्तु ससार का ही पात्र रहा। प्रवचनसार मे द्रव्यलिगी मुनि को ससार तत्त्व कहा है। इसलिए तीनकाल—तीनलोक मे कभी भी भगवान के आश्रय से, अणुव्रत-महाव्रतादि के आश्रय से धर्म की प्राप्ति नही होती है। एकमात्र अपने त्रिकाल के आश्रय से धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है—ऐसा चारो अनुयोगो मे सब भगवानो ने कहा है। यही वात भगवान कुन्दकुन्द आचार्य ने ११वी गाथा मे वतायी है। इसलिए हे आत्मा ! तू अपने आत्मा को दु ख समुद्र मे नही डुवाना चाहता, तो एक बार अपने भगवान का आश्रय ले, तो देख ! जीवन मे अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होगी, फिर तुझे किसी से पूछना नही पडेगा।

प्रश्न ३६—दो द्रव्यो की पर्यायों में जो व्यवहार कहा जाता है वह किस प्रकार है ?

उत्तर—जीव पुद्गल के गति, स्थिति, अवगाहन, परिणमन आदि कार्यो मे जो धर्म-अधर्म-आकाश और कालद्रव्य का गतिहेतुत्व, स्थिति-हेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व और परिणमनहेतुत्व का जो कथन आता है—वह सब व्यवहार कथन ही है। इस व्यवहार कथन का अर्थ मात्र इतना ही है कि जीव-पुद्गल अपने गति, स्थिति आदि कार्यों को तो स्वय अपनी-अपनी स्वतन्त्र उस समय पर्याय की क्षणिक योग्यता से ही करते है तब धर्म-अधर्म-आकाश और काल की उपस्थिति मात्र है। जैसे--हमारे चलने मे सडक उपस्थिति मात्र है; उसी प्रकार जीव और पुद्गल के गति स्थिति आदि मे धर्म-अधर्म-द्रव्यों की उपस्थिति मात्र है।

प्रश्न ३७—कुछ मनीषी कहलाने वाले पुद्गल और जीव की गति-स्थिति आदि कार्यों का कर्ता धर्म-अधर्म-आदि द्रव्यो को ही कहते हैं और ऐसा ही उपदेश करते हैं क्या वे गलत हैं ?

उत्तर—बिल्कुल गलत हैं, वे मनीषी दो द्रव्यो की कर्ता-कर्म रूप एकत्व-बुद्धि की पुष्टि करके मिथ्यात्व का पोषण कर निगोद के पात्र बनते है और उनकी बात मानने वाले भी गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टिकर निगोद मे चले जाते है क्योकि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की विराधना का फल निगोद है।

प्रश्न ३८—कुछ मनीषी धर्म-अधर्म-आकाश और काल द्रव्यो को मानते ही नही है क्या यह उनकी बात ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है। जो मनीषी धर्मादि द्रव्यो को नही मानते है—वे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का लोप करने वाले एकाती हैं और निगोद के पात्र है। क्योकि भगवान की वाणी मे आया है कि 'जहाँ उपादान होता है, वहाँ निमित्त होता ही है' ऐसा वस्तु स्वभाव है।

प्रश्न ३९—(१) मोहनीय कर्म के उदय से राग उत्पन्न होता है (२) जीव के राग करने से मोहनीय कर्म उत्पन्न होता है (३) ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोकता है (४) दर्शनमोहनीय सम्यक्त्व नहीं होने देता (५) जीवो का मरना-जीना, सुख-दुःख पुद्गलो का उपकार है (६) जीवो ने कर्म किये—जीवो ने कर्मों को भोगा (७) जीव बोलता है (८) आत्मा ने शरीर को चलाया या शरीर ने आत्मा को चलाया (९) जीव ने दूसरे जीवो की रक्षा की या मारा (१०) सैनी जीव है, असैनी जीव है, इन्द्रियो वाला जीव है आदि कथन शास्त्रो मे आते है इनसे क्या समझना चाहिए ?

उत्तर—यह सब निमित्त की अपेक्षा कथन किया है यह असत्यार्थ कथन है ऐसा जानकर असत्यार्थ कथन का श्रद्धान छोडना। इस प्रकार व्यवहार के कथन का ऐसा का ऐसा श्रद्धान करने से मिथ्यात्व की पुष्टि होती है, क्योकि शास्त्रो मे इनका तात्पर्य मात्र धर्म द्रव्य के समान उपस्थिति मात्र है, ऐसा बताना है। (२) जो जीव एक द्रव्य का दूसरे द्रव्यो के साथ कर्ता—कर्म मानता है वह द्विक्रियावादी-जिनमत से बाहर है। इसलिए पात्र जीवो को दो द्रव्यो की एकता बुद्धि छोडकर, अपने स्वभाव का आश्रय लेकर अपना कल्याण करना चाहिए।

प्रश्न ४०—गुरुगम बिना अपनी खोटी मान्यता से जिनवाणी को सुना और क्या सीखा ! विकार पुद्गल का कार्य है हमारा कल्याण जब होना होगा तब होगा। अशुभभाव आना है तो आवेगा—हम क्या करें, वह जीव कैसा है ?

उत्तर—(१) वीतराग का मार्ग स्वच्छन्द होने के लिए नही है। जो जीव वीतराग की बात सुनकर उससे उल्टा अथ निकालता है वह निगोद का पात्र है। जबकि वर्तमान मे बडे भाग्य से शुभाशुभ भाव रहित वीतरागता प्रगट करने का समम आया है उसके बदले कहे अशुभ भाव का भी तो समय आया है—ऐसी मान्यता वाला जिनवाणी

सुनने के अयोग्य है।

(२) जैसे—जिसको सोने की पहिचान हो गई, वह १४ कैरेट आदि कह सकता है, उसी प्रकार जिसने अपने स्वभाव का आश्रय लेकर अनुभव-ज्ञान प्राप्त हो गया है, वह ही कह सकता है जिस समय जो होना होगा वही होगा, मिथ्यादृष्टि का ऐसा कहना असत्य है।

(३) श्री समयसार के बध अधिकार मे आया है कि कोई जीव किसी अन्य जीव को मार जिला नही सकता और सुख-दुख नही दे सकता। ऐसा सुनकर अज्ञानी श्री समयसार की आड लेकर दूसरे जीवो को मारे और दु खी करे और कहे समयसार मे लिखा है कोई किसी को मार-जिला और सुखी-दुखी नही कर सकता। अरे भाई ! ऐसी स्वच्छन्दता का सेवन करके तू मर जावेगा। समयसार कच्चा पारा है। यदि हजम हो जावे तो अमर वन जावेगा और यदि हजम न हुआ, फूट-फूटकर रोयेगा। इसलिए याद रख श्री समयसार का कथन जब तुझे कोई मारे, तुझे दु खी करे तव याद कर कि भगवान ने समयसार मे ऐसा कहा है। अज्ञानी जीव समयसार की आड मे मिथ्यात्व की पुष्टि करता है।

(४) जैमे एक आदमी ने "वुलट प्रूफ कोट" अर्थात् जिस कोट मे गोली ना लगे, ऐसा कोट तैयार किया। वह फौज के कप्तान के पास गया कि आप "वुलट प्रूफ कोट" का आर्डर दो। उसने कहा, ठीक है आप इसे पहिनो।' कप्तान अन्दर जाकर पिस्तौल लाया, तो देखा वह आदमी नौ दो ग्यारह हो गया; उसी प्रकार जिनवाणी मे जो कथन है वह अपने लिये ही है। ऐसा जानकर उन प्रकारो को पहिचानकर अपने मे ऐसा दोष हो तो उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धानी होना, औरो के ही दोष देख-देखकर कपायी ना होना क्योकि अपना वुरा-भला अपने परिणामो से है। औरो को रुचिवान देखे, तो कुछ उपदेश देकर उनका भी भला करे। इसलिए अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है। सर्व प्रकार के मिथ्यात्वभाव

छोडकर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। क्योकि ससार का मूल मिथ्यात्व है और धर्म का मूल सम्यक्त्व है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६६]

(५) जैसे रोज नामचे मे अनेक रकमे जहाँ-तहाँ लिखी है, उनकी खाते मे ठीक खतौनी करे तो लेने-देने का निश्चय हो, उसी प्रकार शास्त्रो मे तो अनेक प्रकार का उपदेश जहाँ-तहाँ दिया है, उसे सम्यग्ज्ञान मे यथार्थ प्रयोजन सहित पहिचाने, तो हित-अहित का निश्चय हो। इसलिए स्यात् पद की सापेक्षता सहित सम्यग्ज्ञान द्वारा जो जीव जिन वचनो मे रमते है, वे जीव ही शीघ्र शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त होते है। मोक्षमार्ग मे पहला उपाय आगमज्ञान कहा है, आगम ज्ञान बिना धर्म का साधन नही हो सकता, इसलिए तुम्हे भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना, तुम्हारा कल्याण होगा। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३०४]

प्रश्न ४१—जो व्यवहार कथन को ही सच्चा मानता है उसे शास्त्रो में किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) समयसार नाटक मे 'मूर्ख' कहा है। (२) आचार्यकल्प टोडरमल जी ने 'अनीति' आदि कहा है। (३) आत्मावलोकन मे हरामजादीपना कहा है। (४) समयसार कलश ५५ मे 'अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है', 'मिथ्यादृष्टि' आदि कहा है। (५) प्रवचनसार मे पद-पद पर धोखा खाता है—ऐसा कहा है। (६) पुरुषार्थसिद्धयुपाय मे 'तस्य देशना नास्ति' कहा है। (७) मोक्षमार्ग प्रकाशक मे उसके धर्म के सब अग मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते हैं। (८) समयसार गा० ११ के भावार्थ मे 'उसका फल ससार है।'

आदि चारो अनुयोगो मे व्यवहार के कथन को सच्चा मानने वालो को चारो गतियो मे घूमकर निगोद मे जाने वाला कहा है। क्योकि व्यवहार निश्चय का प्रतिपादक है। इसके बदले उसको सच्चा मान लेता है, वह मिथ्यात्व है।

प्रश्न ४२—शास्त्रों से दो द्रव्यो की पर्यायो मे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—विश्व की रचना इस प्रकार है अर्थात् वस्तु स्वभाव है कि जहाँ उपादन होता है, वहाँ निमित्त होता ही है उसको दूर करना असम्भव है।

प्रश्न ४३—दो द्रव्यो की पर्यायो मे निमित्त-नैमित्तिक समझने से क्या लाभ है ?

उत्तर—पात्र जीव भिन्न-भिन्न चतुष्ट्य का भान करके भेद-विज्ञानी बन के वीतरागी बनता है और अज्ञानी एकत्वबुद्धि करके और मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारो गतियो का पात्र बनता है।

प्रश्न ४४—जहाँ प्रत्येक द्रव्य का स्वचतुष्ट्य भिन्न-भिन्न दिखाना हो—वहाँ क्या जानना चाहिए ?

उत्तर—जहाँ प्रत्येक द्रव्य का स्वचतुष्ट्य भिन्न भिन्न दिखाना हो, वहाँ पर निश्चय ही प्रयुक्त होता है। स्वचतुष्ट्य की दृष्टि से औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भावो का कर्ता निश्चय से जीव ही है। कर्मों के उदय-उपशम-क्षय आदि का कर्ता निश्चय से पुद्गल ही है। यहाँ पर ध्रुव स्वभाव तथा पर्याय चाहे विकारी हो या अविकारी हो दोनो निश्चय है इस अपेक्षा से रागादि जीव का कार्य है। जब दो द्रव्यो को अलग बताना हो तो जीव के विकारी भावो को भी उसकी पर्याय मे उत्पन्न होने की अपेक्षा स्वाश्रित निश्चय कहा है पर द्रव्य को पराश्रित व्यवहार कहा है।

प्रश्न ४५—दो द्रव्यो के स्वचतुष्ट्य जानने से क्या प्रयोजन है और क्या लाभ है ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु का कर्ता-कर्म अनादि से अनन्तकाल तक स्वतन्त्ररूप से दिखाना, यह प्रयोजन है। (लाभ)—अपने विभाव भावो का कर्ता जो जीव पुद्गल को मानता था वह बुद्धि छूटकर अपने विभाव भावो का कर्ता मैं हू ऐसा जानकर भव्य जीव अपने स्वभाव

का आश्रय लेकर उसका अभाव कर देता है। यहाँ पर शुभाशुभ भाव सब पर्यायो को स्वाश्रितों निश्चय और पर द्रव्य को पराश्रितो व्यवहार कहा है।

प्रश्न ४६—शास्त्रों में जो आत्मा के आश्रय से शुद्धभाव प्रगटा उसे निश्चय कहा है और शुद्ध के साथ शुभ अंश को व्यवहार कहा है, उससे क्या प्रयोजन और क्या लाभ है ?

उत्तर—यहाँ पर मोक्षमार्ग दिखलाना है। जिसके प्रगट होने से धर्म की शुरूआत, वृद्धि होती है। मोक्षमार्ग होने पर शुद्धभाव को स्वाश्रितो निश्चय कहते है और भूमिकानुसार राग को पराश्रितों व्यवहार कहते है। यहाँ पर शुभभावो को व्यवहार कहा है। शुद्धभाव को निश्चय कहने का प्रयोजन यह है कि शुद्धभाव ही मोक्षमार्ग है, धर्म है। शुभभाव को व्यवहार कहने का प्रयोजन यह है कि सच्चे देव-गुरू-शास्त्र का राग, अणुव्रत, महाव्रतादि का राग, दया-दान-पूजा आदि का भाव मोक्षमार्ग नही है, बन्धभाव है। लाभ – ज्ञानी जानता है प्रगट करने योग्य वीतराग भाव से मेरा हित है यह प्रगट करने उपादेय है और जो राग है वह अहित रूप हेय है।

प्रश्न ४७—कुछ मनोषी कहलाने वाले दया-दान-पूजा अणुव्रत महाव्रतादि से परम्परा मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं क्या यह बात झूठ है ?

उत्तर—बिल्कुल झूठ है क्योंकि अनादि से तीर्थंकरादि, गणधर-आदियो ने शुभभावों को बध का और दुख का कारण कहा है। जो शुभभावो से मोक्षमार्ग या मोक्ष मानते है, वह सब जीव निगोद के पात्र हैं।

प्रश्न ४८ –शुभभाव को बन्ध का कारण और दुःख का कारण शास्त्रो मे कहाँ कहा है ?

उत्तर–श्री समयसार गा० ७२ तथा ७४ मे शुभभावों को अपवित्र, जडस्वभावो, दुख का कारण तथा बध का कारण, अध्रुव,

अनित्य, अशरण, वर्तमान मे दुःखरूप और भविष्य मे भी दु खरूप कहा है। शुभभाव को मोक्ष का घातक कहा है, दुष्ट-अनिष्ट भी कहा है। अज्ञानी के शुभभाव को तो वास्तव मे शुभभाव भी नही कहा जाता है, क्योकि मिथ्यात्व का महान पाप उसके साथ है।

प्रश्न ४९—एकमात्र त्रिकाली ध्रुव स्वभाव स्वाश्रित निश्चय और शुद्ध पर्याय चाहे पूर्ण हो या अपूर्ण, सब को पराश्रित व्यवहार ऐसा क्यो कहा है ?

उत्तर—(१) जिस जीव को अपना कल्याण करना हो, उस जीव को सामान्य ध्रुव स्वभाव पारिणामिक जीवत्वभाव आदि नामो से कहते हैं वह मात्र निश्चय है क्योकि इसी के आश्रय से धर्म की शुरूआत वृद्धि और पूर्णता होती है। (२) औपशमिक, क्षायिक धर्म का क्षायोपशमिकभाव भी व्यवहार है क्योकि त्रिकाली की अपेक्षा शुद्ध पर्याय को भी पराश्रित व्यवहार कहा है। (३) ज्ञानियो को मात्र द्रव्य स्वभाव ही सदा मुख्य रहता है पर्याय धर्म सदा गौण ही रहता है, क्योकि साधक द्रव्य स्वभाव के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि करता हुआ, साक्षात् केवली बन जाता है। (४) निश्चयनय (द्रव्य स्वभाव) और व्यवहारनय (पर्याय स्वभाव) दोनो जानने योग्य हैं किन्तु आश्रय करने योग्य एक मात्र निश्चय ही है व्यवहार कभी भी आश्रय करने योग्य नही है, उसे हेय ही समझना। स्वभाव की दृष्टि करना ही मोक्षमार्ग प्राप्त करना और मोक्ष है, क्योकि उसी के आश्रय से मोक्षमार्ग और मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रश्न ५०—द्रव्य स्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग और मोक्ष प्राप्त होता है यह कहाँ आया है ?

उत्तर—पूरा नियमसार और समयसार इसके साक्षी है।

प्रश्न ५१—पाँच बातें कौन कौनसी याद रखनी चाहिए ?

उत्तर—(१) द्रव्यरूप हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और द्रव्यरूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तो मात्र

पुद्‌गल द्रव्य की स्वतन्त्र क्रियाएँ है। नोकर्म-द्रव्यकर्म सब का पुद्‌गल ही कर्ता है इनकी क्रियाओ से ना पुण्य होता है ना पाप होता है और ना धर्म होता है। (२) हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह यह अशुभ-भाव पापभाव है और अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य और परिग्रह का शुभ भाव पुण्य भाव है धर्म नहीं है। (३) अज्ञानी का शुभभाव अनन्त ससार का कारण है क्योकि वह उसे उपादेय, धर्म का कारण मानता है। ज्ञानी शुभभाव को हलाहल जहर हेय मानता है उसे व्यवहार कहा है। (४) मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम वीत-रागभाव वह धर्म है उसका फल अतीन्द्रिय सुख मोक्ष है। यह शुद्धभाव एकमात्र अपने आश्रय से ही प्रगट होता है, पर, विकार, शुद्ध पर्याय के आश्रय से प्रगट नही होता है। (५) जीव केवल भाव कर सकता है पर की क्रिया तो मिथ्यादृष्टि भी नही कर सकता है। शुभाशुभ भावो तक अज्ञानी की दौड है। ज्ञानी की दौड शुद्धभाव तक है। ऐसा जानकर अपने स्वभाव का आश्रय लेना ही कल्याणकारी है।

निर्वाण और परिभ्रमण

जो जीव सम्यग्दर्शन से युक्त है, उस जीव को निश्चित ही निर्वाण का संगम होता है और मिथ्यादृष्टि जीव को सदैव संसार मे परिभ्रमण होता है।

[सारसमुच्चय-४१]

चौदहवाँ प्रकरण

धर्म प्राप्ति के लिए जीव की पात्रता कब और कैसे

भगवान की वाणी सुनने की पात्रता कब कही जा सकती है ?

उत्तर—(१) वृत्ति को अखण्ड करके (२) पूजादि की चाहना नही करके (३) जिसे ससार का दुःख लगा हो। (४) जिन वचन की परीक्षा करके उसमे लगा रहता है। वह भगवान की वाणी सुनने लायक है और उसे इसी भव मे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जावेगी।

(१) 'करीवृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग साँभलो जिन नो रे ।।

अपनी आत्मा के सन्मुख अखण्ड वृत्ति किये बिना वीतरागी मूल मारग सुनने के लिए लायक नही हो सकता है। (अ) जैसे—एक आदमी ने बादाम मे से तेल निकालना शुरू किया। जब तेल निकालने का समय आया, तो जरा चाय पी आएँ। फिर आकर तेल निकालने लगा। जब फिर तेल निकालने का समय आया, तो जरा पेशाब कर आऊँ। इस प्रकार उसे कभी भी तेल की प्राप्ति नही होगी, उसी प्रकार शास्त्र सुनते हुए अन्य सासारिक कार्य के सम्बन्ध मे विचार आवे, तो वह भगवान की वाणी सुनने लायक नही है।

(आ) एक बार श्रीमद् रायचन्द्र जी का प्रवचन बहुत आदमी सुन रहे थे। वहाँ पर एक आदमी बीडी पीकर आया बीडी पीने के बाद गन्ध तो आती है। उसके बैठते ही दूसरे बीडी पीने वाले को बीडी की तलब लगी वह उठकर तुरन्त बाहर गया और बीडी पीकर वापस आकर बैठ गया। उस समय एक पैसे की तीन बीडी आती

थी एक बीडी का मूल्य एक पाई होता था। तब श्रीमद् ने कहा अरे भाई! जो आत्मा की कीमत एक पाई से भी कम मानते है वह भगवान की वाणी सुनने लायक नही है। इसलिए पहले नम्बर की लायकात 'वृत्ति को अखण्ड सन्मुख करके वीतराग का मूल मारग सुनना चाहिए।'

(२) **नोय पूजादिनी जो कामना रे, मूल मारग साँभलो जिन नो रे।।**

जो जीव ऐसा मान के शास्त्र सुनते है कि मेरी पूजा प्रतिष्ठा हो पुण्य का बन्ध हो, सासारिक वासना पूर्ति की इच्छा करता हो, वह वीतरागी मूल मारग सुनने लायक नही है। वक्ता कहे, आइये सेठजी तो वह अपनी प्रशसा सुनेगा किन्तु वीतरागता की बात नही सुन सकेगा। वीतरागता की रुचि वाले जूते रखने की जगह मे बैठकर भी वीतरागी वाणी सुनने से पीछे नही हटते। जो मान कीर्ति के चक्कर मे हैं, वह भगवान की वाणी सुनने लायक नही है।

(३) **नोय व्हालुं अन्तर भव दु.ख मूल मारग साँभलो, जिन नो रे।।**

अन्तर मे कोई भी भव का दु ख कडुवा लगे अर्थात् अच्छा ना लगे। जिसे मनुष्यभव, देवभव अच्छा लगता हो, वह वीतरागी वाणी सुनने के लायक नही है।

चारो गति के विषय मे मोक्षपाहुड गाथा १६ मे क्या कहा है?

उत्तर—चारो गति का भाव दुर्गति है 'पर दव्वादो दुग्गइ, सद्-व्वादो हु सुगई' अर्थात् स्व द्रव्य मे परिणति सो सुगति है, पर द्रव्य मे परिणति सो दुर्गति है। जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र का बन्ध होता है वह भाव भी दुर्गति है और जिस भाव मे शुद्धोपयोग रूप परिणमन हो वह सुगति है। इसलिए जिसे ससार का दु ख अच्छा ना लगता हो, वह ही भगवान की वाणी सुनने लायक है।

(४) करी जो जो वचन की तुलना रे, जो जो शोधी ने जिन सिद्धान्त, मूल मारग साँभलो जिन नो रे ।।

यह जीव ससार मे वडी हुश्यारी से काम लेता है। जैसे—हर व्यापारी अपने माल को अच्छा ही बताता है लेकिन खरीददार बिना परीक्षा किये माल को नही खरीदता। अरे भाई, जहाँ आत्मा का सर्वस्व अर्पण कर देना है वहाँ जो उपदेश मिलता है, वह हमारे कल्याण के लिए है या नही उसकी परीक्षा नही करते, वह वीतरागी मूल मारग सुनने के लायक नही है। इसलिए जो उपदेश मिलता है। उसकी जिन सिद्धान्त के साथ तुलना करे और जो जैन सिद्धान्त के विरुद्ध हो, वह जिन वचन नही है। ऐसा जानकर पात्र जीवो को जिन मार्ग का लाभ लेना चाहिए।

जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो, तब तक क्या करे, तो सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ?

उत्तर—(१) जब तक सच्चा तत्त्व श्रद्धान न हो, (२) यह इसी प्रकार है—ऐसी प्रतीति सहित जीवादि तत्त्वो का स्वरूप आपको भासित न हो, (३) जैसे—द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म मे एकत्व बुद्धि है, वैसे केवल आत्मा मे अहबुद्धि ना आवे, (४) हित-अहितरूप अपने भावो को न पहिचाने तबतक सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि है; यह जीव थोडे ही काल मे सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा। क्योकि तत्त्व विचार रहित देवादि की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रो का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तत्पश्चरणादि करे, उसको सम्यक्त्व होने का अधिकार नही है और तत्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। [मोक्षमार्ग प्रकाशित पृष्ठ २६०]

सुख पाने के लिए पॉच बातो का विचार क्या है ?

उत्तर—श्रीमद् रायचन्द्र जी ने पॉच बातें बतायी है --

(१) अल्पआयु, (२) अनियत प्रवृत्ति, (३) असीम बलवान

असत्सग, (४) पूर्व का प्राय करके अनाराधकत्व, (५) बलवीर्य की हीनता।

प्रश्न १—अल्पआयु से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे आत्मन् ! शरीर का सम्बन्ध अल्प समय का देखने मे आता है। ऐवरेज आयु ३५ वर्ष की है लेकिन तुझे पीढियो की चिन्ता है। क्या यह तेरे लिए ठीक है ? सबकी चिन्ता करता है, किन्तु क्या यह तेरे साथ जावेगा ? विचार तो कर।

प्रश्न २—अनियत प्रवृत्ति से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे आत्मन् ! विचार—साढे तीन हाथ तुझे जमीन चाहिए, लेकिन बडे-बडे महलो की चिन्ता है। आधे सेर अनाज की जरूरत है, लेकिन चिन्ता लाखो की है और उसके लिए तू रात-दिन प्रवृत्ति करता है, क्या यह योग्य है ? विचार तो कर।

प्रश्न ३—असीम बलवान असत्संग से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हे जीव, विचार—जहाँ देखो, काम-भोग बन्ध की बाते सुनने को मिलती है। आगे चलो, पुण्य करो, दान करो, उपवास करो, प्रतिमा लो, भला हो जावेगा, यह सब बाते सुनने को मिलती है। अध्यात्म की बात तो सुनने को मिलती ही नही है। हे आत्मा ! अनादि अनन्त किसी से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नही है। प्रत्येक वस्तु कायम रहते हुए परिणमन करना इसका स्वभाव है। तेरा कल्याण भी तेरे से और बुरा भी तेरे से है। ऐसी बातें सुनने को मिलती ही नही, इसलिए असीम बलवान असत्सग कहा है। त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव जो सत् है उसका सग छोडकर मात्र क्षणिक भाव का तू सग करता है, इससे तेरा हित नही होगा। विचार तो कर।

प्रश्न ४—पूर्व का प्राय: करके अनाराधकपना क्या है ?

उत्तर—हे आत्मा ! तूने अनादिकाल से अपनी आत्मा की अनाराधना की है। तू इस समय अनाराधकपने को मिटाकर आराधकपना प्रकट कर सकता है क्योकि पचमकाल मे जो जीव

उत्पन्न होते हैं सब मिथ्यादृष्टि होते है। लेकिन वह वर्तमान मे पुरुषार्थ से मिथ्यादर्शन को समाप्त करके सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकते हैं। इसलिए हे भव्य ! तू अपनी आत्मा की आराधना कर और अनादिकाल का अनाराधकपना मिटा दे, तो तुझे सुख की प्राप्ति हो। विचार तो कर।

प्रश्न ५—बलवीर्य की हीनता से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—यह जीव अपनी मूर्खतावश अपने वीर्य को ससार के कार्यों मे जोडता है जबकि उनमे तेरा वीर्य जोडना व्यर्थ है। वास्तव मे जो जीव अपना वीर्य आत्म कार्य मे नही जोडता है वह नपुसक है जिसको पुण्य की तथा पुण्य फल की भावना है, वह नपुसक है। स्वरूप की रचना करना वह वीर्य है। विचार तो कर।

प्रश्न ६—अब क्या करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—(१) यह अवसर चूकना योग्य नही है। अब सब प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। ज्ञानी गुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश देते है। उसमे भव्य जीवो को प्रवृत्ति करनी चाहिए। (२) यदि इस अवसर मे भी तत्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गमावे, मन्दरागादि सहित विषय कषायो के कार्यों मे ही प्रवत तो अवसर चला जावेगा और ससार मे ही भ्रमण रहेगा। (३) सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का भी निमित्त बन जावे, तो वहाँ उनके निश्चय उपदेश का तो श्रद्धान नही करता, परन्तु व्यवहार श्रद्धा से अतत्व श्रद्धानी ही बना रहता है। याद रक्खो—यदि तुम पुरुषार्थ करो तो स्वरूप को प्राप्त कर सकते हो और यदि समय व्यर्थ खो दिया तो अवसर चला जावेगा।

जीव को धर्म प्राप्ति का पात्र कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—(१) जगत मे जो-जो बाते और वस्तुये महिमावान गिनी जाती हैं ऐसा शोभायमान गृह आदि आरम्भ अर्थात् कषायो की प्रवृत्तियो मे चतुर। (२) अलकारादि परिग्रह अर्थात् कषायो के

साथ एकत्वबुद्धि। (३) लोकदृष्टि का विचक्षणपना (चतुराई)। (४) लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना (लोग जिसे धर्म कहे उसकी श्रद्धा)। जब तक जीव इन चारो को लबालब भरा प्रत्यक्ष जहर का प्याला नही माने, तब तक आत्मा का किंचित् मात्र भी कल्याण नही हो सकता है। अर्थात् जीव की धर्म प्राप्ति का पात्र भी नहो कहा जा सकता है।

प्रश्न १—'शोभायमान गृह आदि आरम्भ' को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—शोभायमान गृह आरम्भ अर्थात् कषायो की प्रवृतियो को आरम्भ कहते है। अर्थात् कुछ करना कराना आदि प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है। बडे-बडे कारखाना चलाना, बडी-बडी दुकान चलाना यह तो अल्प आरम्भ है। 'करूँ-करूँ' यह कषाय की प्रवृत्ति यह सबसे महान आरम्भ है। जिस प्रकार कोई हलाहल जहर को पीले, वह बच नही सकता, उसी प्रकार जो अनादि काल से शुभभाव की प्रवृत्ति को अच्छा माने, उसका कभी कल्याण नही हो सकता। क्योकि यह मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व सात-व्यसनो से भी महा भयकर पाप है। इसलिए जब तक शुभभाव अच्छा, अशुभभाव बुरा यह मान्यता रहती है तब तक जीव धर्म प्राप्त करने का पात्र नही कहा जा सकता है।

प्रश्न २—'अलंकारादि परिग्रह' को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—अलकारादि परिग्रह अर्थात् कषायो के साथ एकत्वबुद्धि। लोक मे कपडा, धन-गहना, मोटरगाडी आदि परिग्रह कहा जाता है। लेकिन वास्तव मे 'इच्छा ही परिग्रह है' समस्त प्रकार से ग्रहण किया जावे ऐसा दया-पूजा का भाव हितकारी मददगार है यह कषायो के साथ एकत्वबुद्धि है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि दया-दान-पूजा, शास्त्र पढने के भाव को हितकारी मानते हैं। जब तक उसे प्रत्यक्ष जहर का प्याला ना जाने तब तक आत्म कल्याण नही हो सकता क्योकि शुभ भाव भी आस्रव-बन्धरूप, दु खरूप, अपवित्र, जड़ स्वभावी है। जो

शुभभाव को अच्छा मानता है उसका ससार भ्रमण बढता है और वह दु ख भोगता है ऐसा जीव धर्म प्राप्त करने का पात्र भी नही कहा जा सकता है।

प्रश्न ३—'लोक दृष्टि का विचक्षणपना' को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—लोक दृष्टि का विचक्षणपना अर्थात् लौकिक चतुराई। आत्म दृष्टि का नही, ज्ञान दृष्टि का नही, परन्तु लोकदृष्टि मे जो चतुर है उस चतुरपने को जो प्रत्यक्ष हलाहल जहर का प्याला न माने, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नही कहला सकता है।

(अ) जैसे—एक आदमी पचास रुपया लेकर अफ्रीका गया। दस साल बाद घर आया। पचास लाख रुपया कमाकर लाया। उसे ससार चतुर कहता है। किन्तु जब तक ससार की चतुराई को हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक धर्म पाने का पात्र नही है।

(आ) जैसे—कुछ चोर चोरी करने जा रहे थे रास्ते मे कोई एक बढई मिला। उसने कहा, मुझे भी अपने साथ मिला लो। जब चोरी करने गये। तब बढई ने सोचा कि मैं ऐसा कार्य करूँ, जिससे यहाँ का मालिक मुझे याद रक्खे। उसने आरी से दरवाजे के कगूरे काटने शुरू किये। बाद मे अन्दर जाने के लिए अपना पैर अन्दर रक्खा। तो अन्दर से मालिक ने उसके पैर खेचे और बाहर से चोरो ने खेंचे विचारो जसे—बढई को ससार की चतुराई अपने आपको दु ख दे गयी, उसी प्रकार शुभभाव के साथ एकत्व की चतुराई अनन्त ससार का कारण है। मैं जानता हू समझता हूँ यह शास्त्र अभिनिवेश आत्म कल्याण मे बडा भारी विघ्न करने वाला है।

प्रश्न ४—गुरु की वाणी सुनी और कहे, यह तो मैं जानता हू ?

उत्तर—गणधर चार ज्ञान का धारी जो एक अन्तर्मुहूर्त मे १२ अग की रचना करता है। वह भी केवली के ज्ञान के सामने अपने ज्ञान को कुछ भी नही गिनता। भगवान की वाणी २४ घण्टो मे चार बार खिरती है। एक बार ६ घडी तक दिव्य देशना भव्य प्राणियो के

निमित्त होती है। इस प्रकार २४ घण्टो मे साढे नौ घण्टो से ज्यादा समय वाणी खिरती है। उसमे गणधर की हाजरी अवश्य होती है। हम कहे, हमने समझ लिया। ऐसा जब तक परलक्षी ज्ञान का शास्त्रीय अभिनिवेश रहता है। तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नही कहा जा सकता है।

(इ) मैं लोगो के काम बडी हुश्यारी से पार उतार देता हूँ। जिसकी ऐसी बुद्धि रहे वह धर्म पाने का पात्र नही कहा जा सकता है।

प्रश्न ४—लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना' को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना अर्थात् लोग जिसे धर्म कहें। जैसे यह सात प्रतिमाधारी है, यह ११ प्रतिमाधारी है, यह २८ मूलगुणो का पालन करता है, यह महीनो का उपवास करता है, यह दिन मे तीन बार सामायिक करता है, यह करोडो रुपयो का दान करता है, यह बडा दयालु है, यह अपने पास एक वस्त्र भी नही रखता है, ससार की दृष्टि मे यह महात्मा बन जाता है। जीव जब तक दृष्टि मे इन सब शुभभावो को हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक वह धर्म पाने का पात्र नही कहला सकता है।

(अ)—**जिन बातो से हम धर्म मानते आ रहे हैं। आपने तो उन सब बातो का निषेध कर दिया। फिर अब हम क्या करें ?**

उत्तर—लोक मे अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि जीव परलक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास मे ही अपना कल्याण होना मानते हैं। इसीलिए वे एक-एक समय करके अनादि से ससार के पात्र हो रहे हैं। उनके कल्याण के निमित्त कहा है, कि जब तक जीव को परलक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास मे दृष्टि रहेगी। तब तक धर्म पाने का अधिकार नही है। इन चारो मे से किसी भी प्रकार की जरा भी मिठास रहेगी तब तक उसके मिथ्यात्व का नाश नही होगा। चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि कहलावे, तो भी वह ससार का ही पात्र बना

मे सिद्ध परात्मा हो जाते है और सादि अनन्त काल तक लोकग्रस्थित निज अक्षय अनन्त सुख मे विश्रान्ति पाते है।

आप कहते हो ससार मे सुख नहीं है, हम तो लोगो को सुखी देखते हैं?

उत्तर—ससार मे दुख ही है, सुख नही है, क्योकि विचारो—कोई पुण्यशाली जीव है उसके विपय मे विचारते है—(१) सुबह क्यो उठता है? उत्तर - दुखी है इसलिए। (२) टट्‌ठो मे क्यो जाता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (३) हाथ क्यो धोता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (४) स्नान क्यो करता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (५) कपडे क्यो पहनता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (६) मदिर क्यो जाता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (७) मोटर मे क्यो बैठता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (८) रोटी क्यो खाता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (९) पानी क्यो पीता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (१०) दुकान पर क्यो जाता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (११) रुपया क्यो इक्ट्‌ठा करता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (१२) आराम क्यो करता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (१३) शास्त्र क्यो पढ़ता है। उत्तर—दुखी है इसलिए। (१४) दवाई क्यो खाता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (१५) भोग क्यो करता है? उत्तर—दुखी है इसलिए। (१६) सफर क्यो करता है? उत्तर—दु.खी है इसलिए। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव ससार मे दुखी ही है।]

हमे धर्म की प्राप्ति क्यो नही होती है?

उत्तर—जिसका (आत्मा के आश्रय का) नम्बर रखना चाहिए सबसे पहले, उसका नम्बर रखता है आखरी मे, इसलिए धर्म की प्राप्ति नही होती है। श्रीमद् रामचन्द्र ने किसी से पूछा, तुम धर्म क्यो नही करते? उसने कहा कि समय नही मिलता है, हम क्या करे?

श्रीमद् ने पूछा—(१) सोने का समय मिलता है? हाँ, मिलता है। (२) घूमने का समय मिलता है? हाँ मिलता है। (३) रोटी खाने, पानी पीने का समय मिलता है? हाँ, मिलता है। (४) अखबार पढने का समय मिलता? हाँ, मिलता है। (५) वही देखने का समय मिलता है? हाँ, मिलता है। (६) दुकानदारी का समय मिलता है? हाँ, मिलता है।

अरे भाई! तेरी ऐसी मान्यता है कि उपरोक्त कार्य किये बिना मै दु खी हो जाऊँगा, अत इन सबके लिए समय निकलता है यह तो दृष्टान्त है, उसी प्रकार यदि तेरी समझ मे आ जावे कि आत्मधर्म किए बिना मेरे को अनन्त काल तक दु ख भोगना पडेगा तो धर्म करने के लिए मुझे टाइम नही मिलता, ऐसी बहाने बाजी कभी नही करोगे। तात्पर्य यह है कि धर्म करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

—

सम्यक्त्वी सर्वत्र सुखी

सम्यग्दर्शन सहित जीव का नरकवास भी श्रेष्ठ है; परन्तु सम्यग्दर्शन रहित जीव का स्वर्ग मे रहना भी शोभा नहीं देता, क्योंकि आत्मभाव बिना स्वर्ग में भी वह दु.खी है। जहाँ आत्मज्ञान है वहीं सच्चा सुख है।

[सारसमुच्चय-३६]

पन्द्रहवाँ प्रकरण

वीतराग-विज्ञानता के मिले-जुले प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—क्या, जीव मेहनत करता है, तभी संयोग-रुपया आदि सम्बन्ध होता है ?

उत्तर—वर्तमान मे जीव मेहनत करता है उसके साथ सयोग आदि का सम्बन्ध नही है। "सर्व जीवो के जीवन-मरण, सुख-दु ख, अपने कर्म के निमित्त से होता है।" जहाँ एक जीव अन्य जीव के इन कार्यों का कर्त्ता हो, वही मिथ्याध्यवसाय बन्ध का कारण है। अत सयोग आदि मे वर्तमान चतुराई कोई कार्यकारी नही है।

प्रश्न २—संयोग आदि के सम्बन्ध मे समयसार कलश १६८ में क्या बताया है ?

उत्तर—"अज्ञानी मनुष्यो मे ऐसी कहावत है कि इस जीव ने इस जीव को मारा, इस जीव ने इस जीव को जिलाया, इस जीव ने इस जीव को सुखी किया, इस जीव ने इस जीव को दु खी किया ऐसी कहावत है। ऐसी प्रतीति जिस जीव को होवे वह जीव मिथ्यादृष्टि है। ऐसा नि सन्देह जानियेगा, धोखा कुछ नही ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि क्यो है ? जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा सक्लेशरूप परिणाम के द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयुकर्म अथवा साताकर्म अथवा असाताकर्म उस कर्म के उदय से उस जीव को मरण अथवा जीवन अथवा दु ख अथवा सुख होता है। ऐसा निश्चय है। परन्तु इसके विपरीत मैं दूसरो का अथवा दूसरे मेरा जीवन-मरण, सुखी-दु खी करते हैं आदि विपरीत मान्यता होने के कारण ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है।"

प्रश्न ३—सयोग आदि के सम्बन्ध में समयसार कलश १६९ मे क्या लिखा है ?

उत्तर—"मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तिर्यंच, मै नारकी, मै सुखी, मैं दु खी ऐसी कर्म जनित पर्यायो मे है आत्मबुद्धिरूप जो मग्नपना उसके द्वारा कर्म के उदय से जितनी क्रिया होती है। उसे मै करता हू मैने किया है, ऐसा करूगा ऐसे अज्ञान को लिए हुए मानते है। वे जीव कैसे हैं ? आत्मघाती हैं।"

प्रश्न ४—संयोगादि के सम्बन्ध में समयसार कलश १७० मे क्या लिखा है?

उत्तर—"इस मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्वरूप है जो ऐसा परिणाम कि इस जीव ने इस जीव को मारा, इस जीव ने इस जीव को जिलाया ऐसा भाव ज्ञानावरणादि कर्म बन्ध का कारण होता है। ऐसा भाव कर्म बध का कारण क्यो है ? ऐसा भाव मिथ्यात्वभावरूप होने से कर्मबन्ध का कारण है।"

प्रश्न ५—संयोगादि के सम्बन्ध मे समयसार कलश १७१ मे क्या लिखा है ?

उत्तर—'मिथ्यादृष्टि जोव अपने को जिस रूप नहीं आस्वादता ऐसी पर द्रव्य की पर्याय व अपना शुभाशुभ विकल्प त्रेलोक्य मे है हो नही। यह परिणाम कैसे हैं ? झूठा है, क्योकि मारने को कहता है, जिलाने को कहता है। तथापि जीवो का मरना-जीना अपने-अपने कर्म के उदय के हाथ है। इसके परिणामो के अधीन नही है। यह अपने अज्ञानपन को लिए हुए ऐसे अनेक झूठे विकल्प करता हैं।"

प्रश्न ६—सयोगादि के सम्बन्ध मे समयसार कलश १७२ मे क्या लिखा है?

उत्तर—"जिस मिथ्यात्वरूप परिणाम के कारण जीवद्रव्य आपको मैं देव, मैं मनुष्य, मैं क्रोधी, मैं मानी, मैं सुखी, मै दु खी, इत्यादि नानारूप अनुभवता है। आत्मा कैसा है ? कर्म के उदय से हुई समस्त पर्यायो से भिन्न है। ऐसा है यद्यपि अज्ञानी कर्म के उदयरूप पर्यायो को आपरूप अनुभवता है।

प्रश्न ७—संयोगादि के सम्बन्ध मे समयसार कलश १७३ मे क्या लिखा है ?

उत्तर—"मै मारू, मै जिलाऊँ, मैं दुखी करूँ, मैं सुखी करूँ, मैं देव, मैं मनुष्य, इत्यादि है जो मिथ्यात्वरूप असख्यात लोक मात्र परिणाम वे समस्त हेय हैं। परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान, उन्होने ऐसा कहा है।"

प्रश्न ८—संयोगादि के सम्बन्ध मे समयसार कलश १७४ मे क्या लिखा है ?

उत्तर—"अहो स्वामिन ! अशुद्ध चेतनारूप है राग-द्वेष, मोह इत्यादि असख्यात लोक मात्र विभाव परिणाम, वे ज्ञानावरणादि कर्म वध के कारण है ऐसा कहा, सुना, जाना, माना। कैसे हैं वे भाव ? शुद्ध ज्ञान चेतना मात्र है जो ज्योतिस्वरूप जीव वस्तु उससे वाहर है।

प्रश्न ६—सयोगादि के सम्बन्ध मे समयमार कलश १७८ मे क्या लिखा है ?

उत्तर—'शुद्ध स्वरूप उपादेय है, अन्य समस्त पर द्रव्य हेय है।"

प्रश्न १०—संयोगादि के सम्बन्ध मे समयसार कलश १६७ में क्या लिखा है ?

उत्तर—"परद्रव्य सामग्री मे है जो अभिलाषा वह केवल मिथ्यात्व रूप परिणाम है ऐसा गणधर देव ने कहा है।"

प्रश्न ११—संयोगादि के सम्बन्ध मे लौकिक दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—[अ] वर्तमान मे एक कसाई हजार गायो को मारता है। उसके बदले मे उसे दो हजार रुपया मिलता है। गायो को मारने का भाव पाप भाव है। क्या पाप भाव से रुपयो की प्राप्ति का सयोग सम्बन्ध हो सकता है ? कभी भी नही। [आ] डाक्टर एक मेढक चीरता है, उससे ज्ञान का उघाड देखा जाता है। यदि सौ मेढक

चीरे जावे, तो वहुत ज्ञान का उघाड होना चाहिए ? मेढक चीरने का भाव पाप भाव है। क्या पाप भाव से ज्ञान का उघाड हो सकता है ? कभी भी नही। [इ] एक जीव सुबह से शाम तक मेहनत करता है। फिर भी एक पैसा नही मिलता और कोई ना करे तो भी लाखो रुपया मिलता है ऐसा देखने मे आता है।

इसलिए रुपया कमाने मे वर्तमान चतुराई कार्यकारी नही है, वह तो पूर्व मे पुण्य-पाप भाव किया था। उसका फल स्वरूप सयोग देखने मे आता है।

प्रश्न १२—जीव की चतुराई किसमे है ?

उत्तर—वास्तव मे जीव का काय ज्ञाता-दृष्टा है। वह सयोग आदि मे कुछ फेरफार करे, ऐसा है ही नही। ऐसा जानकर अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर ज्ञाता दृष्टा वनना और स्वभाव को एकाग्रता करके धर्म की वृद्धि, और पूर्णता करना ही जीव की चतुराई है।

प्रश्न १३—क्या बाह्य सयोग के अनुसार सुख-दु ख व राग-द्वेष का माप है।

उत्तर—नही है (१) एक के पास सौ रुपया है। उसने एक हजार की इच्छा की और उस पर एक हजार हो गया तो वह अपने को सुखी मानता है और दूसरे के पास एक लाख रुपया है उसका एक हजार खो गया तो वह अपने को दुखी मानता है। विचारो! एक के पास ९९ गुना अधिक रुपया है वह अपने को दु खी मानता है और एक हजार वाला अपने को सुखी मानता ह। इससे सिद्ध होता है कि वाहर के सयोग अनुसार सुख-दु ख का माप नही है।

(२) एक को ९९ डिग्री वुखार है वह ज्यादा दुखी दिखाई देता है और दूसरे को १०५ डिग्री का बुखार है वह शान्त दिखाई देता है। विचारो! यदि बाह्य सयोग अनुसार सुख-दु ख होना तो १०५ डिग्री वाला विशेष दु खी होना चाहिए था, सो नही है। इससे सिद्ध

होता है कि बाह्य सयोग अनुसार राग-द्वेष का माप नही है पर मे एकत्व बुद्धि ही एक मात्र दुख का कारण है।

प्रश्न १४—क्या बाह्य राग-द्वेष के अनुसार ज्ञानी-अज्ञानी का माप है ?

उत्तर—नही है, क्योकि (१) एक द्रव्यलिंगी मुनि है उसको कषाय बहुत मन्द है उसके पास कुछ भी परिग्रह नही, फिर भी वह अज्ञानी है (२) और दूसरा ज्ञानी चक्रवर्ती है जो ९६ हजार स्त्रियो के वृन्द मे बैठा हो, कभी लडाई भी लडता हो, तीर पर तीर चलाता हो, उसे बाह्य मे तीव्र कषाय देखने मे आता है और बाह्य सयोग भी बहुत देखने मे आता हो, फिर भी वह ज्ञानी है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि बाह्य राग-द्वेष अनुसार ज्ञानी अज्ञानी का माप नही है। इसमे से दो बोल निकलते हैं—(१) बाह्यसयोग अनुसार राग-द्वेष का माप नही है। (२) बाह्य रागद्वेष अनुसार ज्ञानी-अज्ञानी का माप नही है।

क्योकि मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय दूसरा पृष्ठ ४० मे लिखा है कि 'परम कृष्ण लेश्यारूप तीव्र कषाय हो वहाँ भी और शुक्ल लेश्यारूप मन्द कषाय हो वहाँ भी निरन्तर चारो ही का उदय रहता है, क्योकि तीव्र-मन्द की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नही है।

प्रश्न १५—शास्त्राभ्यास किसलिए और कैसे करना चाहिए ?

उत्तर—एक कारीगर ने तीन पुतलियाँ बनायी। तीनो देखने मे एक सी लगती थीं। वह उनको बेचने के लिए राजा के दरबार मे पहुचा। राजा ने मत्री से तीनो का मूल्य लगाने के लिए कहा। लेकिन मत्री की समझ मे नही आया। आठ दिन बाद तीनो पुतलियो की कीमत बताने को मत्री ने अनुमति माँगी। उनकी कीमत बताने के लिए आज सातवाँ दिन समाप्त होने को है परन्तु मत्री की कुछ समझ मे नही आया। मन्त्री ने एक सलाई एक पुतली के कान मे गेरी, वह

आरपार निकल गई। दूसरी पुतली के कान मे गेरी, वह मुह से निकल गई और तीसरी पुतली के कान मे गेरी, तो अन्दर समा गई। मत्री बडा प्रसन्न हुआ।

राज दरबार मे आकर मत्री ने तीसरी पुतली की कीमत एक लाख रुपया लगाया, बाकी दो पुतलियो की एक कानी फूटी कौडी भी नही। मत्री से यह बात स्पष्ट करने को कहा कि जबकि तीनो पुतलियाँ एक सी हैं तो दो की कीमत कुछ नही और तीसरी की एक लाख रुपया क्यो है ? मन्त्री ने कहा, न० १ की पुतली से जा कुछ कहा जावे तो यह दूसरे कान से जभी निकाल देती है। न० २ की पुतली जो कुछ सुनती है, वह दूसरो को सुना देती है। न ३ की पुतली जो कुछ सुनती है, वह अपने मे पचा लेती है उसी प्रकार (१) जो जीव शास्त्र पढता हैं, या सुनता है, इधर सुना, उधर निकाल दिया, या पता ही नही, क्या सुना या क्या पढा, यह व्यर्थ है। (२) जो जीव शास्त्र इसलिए पढता है या सुनता है, कि मै सुनकर दूसरो को बताऊ, तो लोग मेरा मान-आदर करे, यह भी व्यर्थ है। (३) जो जीव शास्त्राभ्यास अपने कल्याण के लिए पढता है या सुनता है अपने जीवन मे घटित करता है, वह ही धन्य है। जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा का वैसा निर्णय करने से मद कषाय हो जाती है और विशेष पुरुषार्थ करे तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए शास्त्राभ्यास हमेशा अपने कल्याण के निमित्त ही कार्यकारी है।

प्रश्न १६—जैन धर्म का सेवन किसलिए है और किसलिए नहीं है ?

उत्तर—जैनधर्म का सेवन तो ससार नाश के लिए क्रिया जाता है परन्तु जो जीव शास्त्र पढकर-सुनाकर, पूजा करके, सिद्धचक्र आदि का पाठ करके रुपया पैसा लेते हैं वह तो पापी भी है और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही। इसलिए पात्र जीव हिंसादि से आजीविकादि के अर्थ व्यापारादि करता है तो करे, परन्तु पूजा आदि कार्यों मे तो

आजीविकादि प्रयोजन विचारना योग्य नही है। जो जीव रुपया-पैसा लेकर आजीविका आदि के अर्थ धर्म की बाते करते है वे पापी है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २१९]

प्रश्न १७—वर्तमान मे ज्ञानी जीव तो मिलते नहीं तब रुपया-पैसा देकर हम शास्त्र-अभ्यास करे, तो क्या नुकसान है ?

उत्तर—श्रद्धानादिक गुणो के धारी वक्ताओ के मुख से ही शास्त्र सुनना। इस प्रकार के गुणो के धारक मुनि अथवा श्रावक-सम्यग्दृष्टि उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धतिवुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादिक गुणो से रहित पापी पुरुषो के मुख से शास्त्र सुनना उचित नही है क्योकि जिसको शास्त्र बाचकर आजिविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा हो वह आशावान यथार्थ उपदेश नही दे सकता। इसलिए मिथ्यादृष्टि चाहे वह कोई क्यो ना हो उससे उपदेश आदि नही सुनना चाहिए। जैसे—लौकिक में जिसको जो कार्य आता हो, वही उस कार्य को सुचारू रूप से कर सकता है, दूसरा नही, उसी प्रकार सच्चे गुरुगम बिना शास्त्रो का अभ्यास अनर्थकारी है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७]

प्रश्न १८—अनादिकाल की भूल कैसे मिटे ?

उत्तर—जहाँ भूल है वहाँ भूल को देखना, यही भूल को मिटाने का एकमात्र उपाय है। (१) जैसे—मुँह पर दाग है और सामने शीशा है। यदि दाग को मिटाने के लिए हम शीशे को रगडे तो क्या मुह का दाग दूर हो जावेगा ? कभी भी नही, उसी प्रकार गलती तो अपनी पर्याय मे है उसे दूर करने के लिए दूसरो का दोष देखें तो क्या कभी गलती दूर होवेगी ? कभी भी दूर नही होगी।

(२) जैसे—सामने शीशा है यदि हमारा मुह टेढा है, तो शीशे मे टेढा दिखायी देगा उसमे शीशे का कोई दोष नही; यदि हम मुह को टेढा नही देखना चाहते तो उसका उपाय मुह को सीधा करना है, उसी प्रकार दोष तो अपने मे है देखते है कर्म का या परद्रव्य का।

यदि हम अपने मे दोष नही देखना चाहते, तो अपने स्वभाव का आश्रय ले।

(३) जैसे एक स्त्री जल भरने गयी। रास्ते मे पीतल का कलशा गिर गया उसमे खडडा पड गया। यदि उस खड्डे को ऊपर उठाने के लिए ऊपर से हथौडा मारे, तो वह ऊपर नही आवेगा, बल्कि बढता चला जावेगा। मात्र उसे ठीक करने का उपाय अन्दर से चोट मारे तो ठीक हो सकता है, इसी प्रकार अज्ञानी जीव सुख-शान्ति-ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए बाह्य सामग्री, विकार की ओर दृष्टि करते है तो उन्हे सुख-शान्ति-ज्ञान प्राप्त नही होता है। जिसमे से सुख-शान्ति-ज्ञान आता है यदि उसमे दृष्टि दें, तो ही उसकी प्राप्ति हो सकती है।

(४) आचार्यकल्प प० टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक मे कहा है कि "तत्त्व निर्णय न करने मे किसी कर्म का दोष नही, तेरा ही दोष है और जो अपना दोष कर्मादिक को लगाता है तो तू स्वय महन्त होना चाहता है सो जिन-आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नही है।"

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१२]

(५) जैसे- कोई अपने हाथ मे पत्थर लेकर अपना सिर फोड ले, तो पत्थर का क्या दोष ? उसी प्रकार जीव मोह-राग द्वेष नही, अपना ही दोष है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ६०]

(६) समयसार कलश २२० तथा २२१ मे लिखा है कि जीव का ही दोष है, कर्मादि का नही। जो पर का दोष देखते है वह मोह नदी को कभी भी पार नही कर सकते हैं। इसलिए हे भव्य ? अपनी पर्याय मे दोष अपने अपराध से है, दूसरे के कारण नही ऐसा जानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो दोष रहित स्वभाव दृष्टि मे आवे, धर्म की प्राप्ति हो तब अनादि .ी भूल मिटे।

प्रश्न १९—'जबकि ज्ञान से ज्ञान होता है' तब वाणी सुनो, सत्समागम करो, ऐसा उपदेश आप क्यो देते हैं ?

उत्तर—भगवान का गणधर चार ज्ञान धारी होता है और गणधर की उपस्थिति भगवान की देशना के समय अवश्य ही होती है। भगवान की दिव्यदेशना एक दिन मे चार बार होती है। एक बार दिव्यदेशना ६ घडी होती है; इस प्रकार एक दिन मे ६॥ घण्टे से ज्यादा तो दिव्यदेशना धर्म वजीर गणधर भी श्रवण करता है। धर्म-वजीर गणधर अन्तर्मुहूर्त मे १२ अग की रचना करता है। इतना ज्ञान का धनी होने पर भी भगवान की वाणी सुनता है तब अल्पज्ञानी या अज्ञानी के लिए उसका निषेध कैसे हो सकता है ? कभी नही। परन्तु जो जीव स्वच्छन्दी है पूरी बात का विचार नही करते, वे ही कहते हैं कि "जब ज्ञान से ज्ञान होता है, तब वाणी, सत्समागम की क्या आवश्यकता है" ? लेकिन याद रखना चाहिए जब तक जीव विकार रहित नही होता, तब तक अल्प ज्ञानी को वाणी सुनने का और सत्समागम करने का भाव आता ही है। तब जो अज्ञानी है, उनको तो निरन्तर सत्समागमादि होना ही चाहिए। हमेशा उपदेश तो आगे बढने का ही दिया जाता है। जब तक केवलज्ञान ना हो, तब तक ज्ञानी भी वाणी श्रवण करते हैं। जो अपनी आत्मा मे पूर्ण स्थिरता करके अरहत-सिद्ध बन जाते हैं उनकी बात, तथा जो श्रेणी आरूढ होते है उनकी बात, यहाँ पर नही है।

प्रश्न २०—हमने तो भगवान की वाणी अनन्त बार सुनी है और आप कहते हैं कि गुरु की वाणी सुनो और सत्समागम करो—परन्तु गुरु की वाणी भगवान की वाणी के सामने क्या है ?

उत्तर—अज्ञानी कहता है कि मैने अनेको बार भगवान की दिव्य-वाणी को सुना है अब गुरु की वाणी का मेरे ऊपर क्या असर होना है।

(१) देखो भाई ! जैसे एक राजा था। उसके पास बहादुर लडाका एक ऊँट था। दूसरे राजा ने उसके राज्य पर चढाई कर दी। वहाँ की जमीन रेतीली थी वहाँ पर घमासान लडाई हुई। उस बहादुर

लडाके ऊँट ने वडी वहादुरी दिखाई। ऊँट की वहादुरी के कारण दूसरा राजा भाग गया। राजा ऊँट की वहादुरी पर बडा प्रसन्न हुआ। राजा ने उसको इनाम के वदले मे एक ऐलान निकाल दिया कि "ऊँट अपनी इच्छानुसार जिस किसी के भी खेत मे जाकर चर सकता है, उसे कोई मारे नही, यदि मारेगा तो दण्ड का भागी होगा।" एक बार वह ऊँट एक हरे-भरे वडे खेत मे चला गया और चरने लगा। वहाँ के मालिक ने ढोल टाँग रक्खा था ताकि उसके वजाने पर जानवर भाग जावें और खेत को खराब ना करे। मालिक ने कई जानवरो के साथ ऊँट को खेत मे चरते हुए देखकर, ढोल बजाना शुरू किया। आवाज सुनकर और जानवर तो डर कर सव भाग गये, ऊँट चरता ही रहा। मालिक जोर-जोर से ढोल बजाता हुआ ऊँट के नजदीक आया। तब ऊँट ने कहा कि मैंने बडी-बडी लडाइयाँ लडी हैं और वडी-वडी तोप वन्दूको की गर्जना सुनी हैं। मै तेरे ढोलरूप पीपनी की आवाज सुनकर नही भाग सकता, उसी प्रकार (अ) यहाँ पर मिथ्यात्वरूप ऊँट है, (आ) बन्दूक-तोपो की गर्जनारूप भगवान की दिव्यध्वनि हैं, (इ) ढोलरूप पीपनी की आवाजरूप गुरु की अमृतमयी वाणी है। मिथ्यात्वरूप ऊँट कहता है, कि मैंने अनन्तबार समवशरण मे तोपो गोलो की आवाजरूप भगवान की दिव्यध्वनि सुनी हैं। अब यह तेरी ढोलरूप पीपनी की आवाज रूप गुरु की वाणी मेरे लिए कुछ भी नही है।

(२) ऐसे ही व्यवहाराभासी के नशे मे निश्चय-व्यवहार के अर्थ को न जानने वाले अज्ञानी जन बकते है कि हमने भी शास्त्र पढे हैं, हम भी समयसार को पढते हैं, गौम्मटसार के अभ्यासी हैं, इनके सामने गुरु की वाणी कुछ नही है। (३) वास्तव मे जब तक जीव पर मिथ्यात्वरूप भूत चढा रहता है तव तक उसे भगवान की दिव्य देशनारूप गुरु की वाणी का वहुमान आता ही नही। पात्र जीव को जब तक वह पूर्ण नही हो जाता, तब तक अपने से वडो के प्रति आदर

का भाव आता ही है। उनकी वाणी, सत्समागम और अपूर्ण शुद्ध पर्याय का ऐसा ही कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। शुद्धि के साथ जो अशुद्धि है। उस अशुद्धि का और वाणी का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है शुद्धि का नही। इसका प्रगट रहस्य अनुभव सम्यग्दर्शन होने पर ही होता है।

प्रश्न २१—चौथे-पाँचवे-छठे गुणस्थान मे ज्ञानियो को कैसा-कैसा राग आता है ?

उत्तर—(१) चौथे गुणस्थान मे निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। तब सच्चे देव गुरु के प्रति आदर का भाव आता है, कुगुरु के प्रति नही आता है। (२) पाँचवे गुणस्थान मे १२ अणुव्रतादि का शुभ-भाव तथा छठे गुणस्थान मे २८ मूलगुण पालन का विकल्प आता है। इस भूमिका मे ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होता है।

प्रश्न २२—चन्दन क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—जैसे—चन्दन को घिसो, तो वह सुगन्ध देता है। चन्दन पर कुल्हाडी मारो तो वह कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना देता है। चन्दन को जलाओ तब भी वह अपनी सुगन्ध को नही छोडता है, उसी प्रकार हे आत्मा ! जब तुम्हे चन्दन के समान कोई घिसता नही, काटता नही और जलाता नही। तब तुम अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को क्यो छोडते हो ! देखो ! चन्दन पर कैसी-कैसी मुसीबत आने पर भी वह अपना सुगन्धी का स्वभाव नही छोडता, उसी प्रकार हे आत्मा ! तू अपने ज्ञायक स्वभाव को साथ रक्खे। तो ससार की कितनी ही प्रतिकूलता क्यो ना हो, तुझे दुखी नही कर सकती। चन्दन पर जैसी-जैसी मुसीबते आती हैं, वैसी तेरे साथ नही। इसीलिए तू अपने ज्ञायक स्वभाव को पहिचाने तो **'चन्दन'** को जाना कहलाया जावेगा।

प्रश्न २३—'गन्ना' क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—जैसे—गन्ने को कोल्हू मे पेलकर रस निकालते है। रस

को खूब औटा करके गुड बनता है। यह हमेशा मीठा ही लगता है। उसी प्रकार हे आत्मा! जब तुम्हे गन्ने के समान कोई पेलता नही, औटाता नही। तब तुम व्यर्थ मे क्यो आकुलित होते हो? इसलिए हे आत्मन्! तुम त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लो, तो हमेशा गन्ने के समान मीठा ही स्वाद आवेगा और चारो गतियो का भव-भ्रमण मिट जावेगा। गन्ना हमे यह शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मैं अपने मीठेपने के स्वभाव को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी नही छोडता, तब तुम भी अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी मत छोडो।

प्रश्न २४—सोना क्या शिक्षा देता है?

उत्तर—जैसे—सोने को गलाओ तो वह मैल को छोड देता है, उसी प्रकार हे आत्मा! तुम्हे कोई सोने के समान गलाता नही, तपाता नही, तो फिर तुम क्यो आकुलित होते हो? सोना सुनार से कहता है कि—

> **हे हेमकार, पर दु.ख विचारमूढ,**
> **किं मां मुहुः क्षिपसि वार शतानि वन्हौ।**
> **दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेको,**
> **लाभः पर खलु मुखे तब भस्म पात.॥**

अर्थ—हे सुनार, तुम मुझे बार-बार अग्नि मे क्यो तपाते हो? तुम मुझे चाहे कितनी ही बार अग्नि मे तपाओ, उससे मेरे मे तो शुद्धि की वृद्धि ही होती है लेकिन तुझे मुँह मे राख के अलावा कुछ भी लाभ नही मिलेगा। सोने से हमे यह शिक्षा मिलती है कि हे आत्मा! जिस प्रकार सोने पर मुसीबते आने पर वह शुद्ध ही होता जाता है, उसी प्रकार सासारिक प्रतिकूलता आने पर तुम भी अपने स्वभाव की दृष्टि करोगे, तो तुम्हे शुद्धोपयोग की ही प्राप्ति होगी।

प्रश्न २५—'बावना चन्दन' क्या शिक्षा देता है?

उत्तर—जैसे-गरम उबलते हुए तेल मे यदि नारियल गेरा जावे।

तो उसके तत्काल ही टुकडे-टुकडे हो जाते है और जलकर खाक हो जाता है। लेकिन उस उवलते हुए तेल मे जरा सा वावना चन्दन गेर दिया जावे, तो वह उसी समय ठण्डा हो जाता है, उसी प्रकार हे आत्मा ! जव अपने बावना चन्दन रूप त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेवे, तब क्षण भर मे अनन्त ससार का ताप समाप्त हो जाता है। यह जीव अनादि काल से एक-एक समय करके ससार ताप से दु खी होकर जल रहा है। इसको एक अपना स्वभाव ही ससार से पार होने मे महामत्र है। बावना चन्दन यह शिक्षा देता है कि मै जरा सा इतने उवलते तेल को शीतल वना देता हू तव हे आत्मा ! क्या तुम अनादि काल के ताप को क्षण भर मे शान्त नही कर सकते ? यदि यह आत्मा एक क्षण के लिए अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त अनादि का जन्म-मरण समाप्त हो जावे, कहा है—

क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किए निज आनन्द अमृत पीता है।।

प्रश्न २६—'लकड़ी' क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर—एक मनुष्य लकडी को देखकर कहने लगा, कि 'हे लकडी क्या तुझे खवर है तेरा तिरने का स्वभाव है, परन्तु तू लोहे का साथ करेगी तो डूब जावेगी।" इस पर लकडी बोली, अरे मनुष्य ! हम तिरे या डूवे, उसमे हमको कोई भी दु ख-सुख नही, इसलिए तू हमारी चिन्ता किसलिए करता है, तेरा तिरने का स्वभाव है उसकी क्या तुझे खबर है ? तेरा तिरने का स्वभाव होने पर भी, पर का सग मान करके ससार समुद्र मे क्यो डूब रहा है ? क्यो दुखी हो रहा है ? इस-लिए तू हमारी चिन्ता छोडकर और पर की भी चिन्ता छोडकर, अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को पर से पृथक जानकर उसी की भावना कर, जिससे तू ससार समुद्र से पार होकर सिद्ध परमात्मा बन जायेगा। लकडी हमे शिक्षा देती है कि जैसे-लकडी अपने स्वभाव

को नही छोडती, उसी प्रकार हमे अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को कभी भी नही छोडना चाहिए।

प्रश्न २७—'लकड़ी का छोटा टुकड़ा' क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—जैसे नदी, नहर, समुद्र मे लकडी का टुकडा पडा हो वहाँ कैसी भी बडी तरगे उठ रही हो परन्तु लकडी का टुकडा कभी भी डूबता ही नही, उसी प्रकार जो जीव अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेता है, ससार मे कितनी ही प्रतिकूलता क्यो ना हो, उसे डिगा नही सकती वह हर समय कुन्दन ही रहेगा। लकडी का छोटा सा टुकडा हमे शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मुझ पर लाखो तूफान आने पर भी मैं अपने तिरने का स्वभाव नही छोडता, उसी प्रकार हे आत्मा ! तुझे अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर प्रतिकूल सयोगो और विकारी भावो के होने पर कभी भी स्वभाव मे से विचलित नही होना चाहिए।

प्रश्न २८—'चीनी के नारियल' से क्या शिक्षा मिलती है ?

उत्तर—जैसा नारियल होता हैं, वैसा ही चीनी का नारियल हो और आप उसे खावें तो उसमे मिठास ही मिठास आता है, वैसे ही आत्मा तो सम्पूर्ण अमृत की पूरी नारियली जैसा ही है उसके अनुभव करने से अमृत तत्व की ही प्राप्ति होती है। चीनी का नारियल हमे यह शिक्षा देता है कि जैसे मैं सब तरफ से मीठा ही हू, उसी प्रकार हे आत्मा ! तू भी हर समय ज्ञायक स्वभावी हो रहा है और रहेगा।

प्रश्न २९—'चन्दन का इच्छुक पुरुष' से क्या शिक्षा मिलती है ?

उत्तर—जैसे-चन्दन का इच्छुक पुरुष जब चन्दन लेने जगल मे जाता है तो वह अपने साथ गरुड या मोर को ले जाता है मोर या गरुड की टहुकार की आवाज को सुनते ही चन्दन पर लिपटे हुए अजगर और साँप भी भाग जाते है। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष गरुड या मोर को साथ मे ना ले जावे, तो वह चन्दन को प्राप्त नही कर सकता, उसी प्रकार अनादिकाल से मिथ्यात्वरूपी अजगर राग-

द्वेप रूपी साँप चन्दन के समान शीतल आत्मा के ऊपर लिपटे हुए है, यदि यह जीव अपने ज्ञायक स्वभाव का टकारा मारे, तो मिथ्यात्व राग द्वेप रूपी अजगर और साँप सब स्वयं भाग जाते हैं। चदन के इच्छुक पुरुष के दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि जैसे—चदन का इच्छुक पुरुप अपने पास गरुड या मोर को रखता है तो वह चदन को प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार मोक्ष का इच्छुक अपने साथ अपने ज्ञायक स्वभावी आत्मा को रखे, तो मिथ्यात्वराग द्वेप कभी भी पास ना आवे।

प्रश्न ३०—'कीचड मे पड़ा सोना' क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—जैसे-कीचड मे सोना पडा हो, उसे कभी भी जग नही लगती, उसी प्रकार जो जीव अपने ज्ञायक स्वभावी आत्मा का अनुभव कर ले तो ससार की कोई भी ताकत चारो गतिरूप कीचड मे नही फसा सकता। इससे हमे यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार कीचड मे पडे सोने को जग नही लगती, उसी प्रकार जिसे अपने स्वभाव का अनुभव हो गया है, वह सम्यग्दृष्टि हो, गृहस्थ हो उसे मिथ्यात्वरूपी भूत कभी नही डसता।

प्रश्न ३१—'अग्नि' हमे क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर—जैसे-अग्नि मे जो डालो, वह स्वाहा हो जाता है। अग्नि किसी अल्प-वहुत मूल्यवान वस्तु का ख्याल नही करती और जलने योग्य को जला ही देती है, उसी प्रकार हे आत्मा! तेरा कार्य ज्ञान है। तू क्यो व्यर्थ मे पर की करूँ-करूँ की मान्यता मे वावला होकर पागल हो रहा है। अग्नि हमको यह शिक्षा देती है कि जिस प्रकार मैं अपने जलाने के स्वभाव को नही छोडती, उसी प्रकार हे भव्य आत्मा! तुझे भी अपने ज्ञान कार्य को नही छोडना चाहिए।

प्रश्न ३२—साप और नेवला हमे क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर—साँप और नेवला एक दूसरे का दुश्मन होता है। जव नेवला साँप के साथ लडाई करता है। तो जंगल मे एक नोलवेल नाम

की जडी-बूटी होती है। उसी के पास रहकर नोला साँप के साथ लडाई करता है। क्योकि यदि लडाई मे साप काट ले, तो उस नोल-वेल बूटी को सूंघ लेने से उसका विष दूर हो जाता है। तो हर हालत मे नेवला साप को मार देता है, उसी प्रकार यह सारा ससार सर्परूप है और पुरुषार्थ करने वाला जीव नौला के समान है। ससार—जो अपने ज्ञायक स्वभाव को नही जानता है और सँयोग और राग-द्वेष मे उलझा रहता है इस बुद्धि का नाम मसार है।

ससार सर्प के समान है। उसकी जब पुरुषार्थ करने वाले जीव के साथ लडाई चलती है। तो यह जीव अपने त्रिकाली अविनाशी आत्मा मे एकत्वबुद्धि करता है, तो अनादिकाल की ससार बुद्धि दूर हो जाती है। कहा है कि—

सर्प रूप ससार है, नौल रूप नर जान।
सन्त बुटी संयोग तें होत अहि-विषहाण।

यह ससार सर्परूप है और नौलारूपी पुरुपार्थ करने वाला जीव है। जव यह जीव ससार के विपय भोगो की अनुकूलता और प्रतिकूलता मे जलता है, तब उसको सतरूपी जडी-बूटी से सर्परूप जो मिथ्यात्व है, उसका नाश हो जाता है। यह जीव अनादिकाल से दुखी हो रहा है। उसका कारण केवल यही है कि इसे सन्तरूपी बूटी नही मिली। सन्त रूपी बूटी जो अपना स्वभाव ही है। वह चारो गतियो मे भ्रमण नही करने देता है। इसका पता न होने से दुखी है जिसे अपनी सन्तरूपी बूटी (ज्ञायक स्वभावी) का अनुभव-ज्ञान होता है। वह कभी भी आकुलित नही होता है। सॉप और नेवला के दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती हैं, जो अपने ज्ञायक स्वभाव रूप बूटी का आश्रय लेता है उसे ससार मे कभी भी परिभ्रमण नही करना पडता है, क्योकि आत्मा सयोग, सयोगी भावो से, और भेदरूप व्यवहार से भिन्न है।

प्रश्न ३३—जो जीव अपने ज्ञायक स्वभाव रूप सन्त बूटी का आश्रय लेता है तो उसे क्या-क्या प्रगट होता है और किस-किसका अभाव होता है ?

उत्तर—(१) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच परावर्तन रूप ससार का अभाव हो जाता है। (२) चारो गतियो से विलक्षण पचमगति मोक्ष की प्राप्ति होती है। (३) पच परमेष्टियो मे उसका नाम आता है। (४) पचम परम पारिणामिक भाव का महत्व आ जाता है। (५) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पाँच कर्म बन्धन के कारण है उनका अभाव हो जाता है।

प्रश्न ३४—कर्म के उदय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—उदय का अर्थ प्रगट है जो कर्म सत्ता मे पडा था, वह उदय मे आया अर्थात् जो उदय मे आता है, वह यह प्रगट करता है कि मैं जा रहा हू। कर्म बडा सज्जन है। वह कहता है कि मैं जा रहा हू, तुम आगे ऐसी औंधाई मत करना, जो मुझे आना पडे।

लेकिन अज्ञानी जीव कर्म के उदय मे रागभाव करके अपना जीवन खोते रहते हैं। जैसे हमारे घर पर कोई मेहमान आवे हम उसकी पूछताछ ना करे तो वह जल्दी ही चला जाता है। वास्तव मे जब जीव पागलपन करता है तो उस समय कर्म का उदय निमित्त है। निमित्त विकार नही कराता है परन्तु जीव विकार करे, तो वहाँ कौन उपस्थित है उसका ज्ञान कराता है।

प्रश्न ३५—आजकल के पडित कहते हैं कि कर्म चक्कर कटाता है और गोम्मटसार आदि शास्त्रो मे भी लिखा है कि ज्ञानावरणीय कर्म का उदय ज्ञान को नहीं होने देता है कर्म के उदय से जीव भ्रमण करता है आदि ऐसा तो शास्त्रो मे लिखा है, क्या वह असत्य लिखा है ?

उत्तर—शास्त्रो मे जो लिखा है वह तो सत्य है लेकिन उस कथन का क्या तात्पर्य हैं वह अज्ञानी नही जानता है—

देखो भाई ! कोई वकील का कार्य करता है तो उसमे दूसरा कोई आदमी दखल नही देता है। कोई डाक्टर डाक्टरी करता है, तो उसमे अन्य कोई दखल नही देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो जिस व्यापार को करता है—जानता है, उसमे दूसरे व्यापार वाला दखल नही देता है। लेकिन लोकोत्तर मार्ग मे भी हम ऐसा करे, कि जो आगम का अनुभवी ज्ञाता हो, उससे प्रथम धर्म श्रवण करे, निर्णय करे तो हम किसी भी शास्त्र को पढे, तो दृष्टि ठीक होने से वीतरागता ही प्रगट हो। मिथ्यादृष्टि जीव लोकोत्तर मार्ग मे अपनी बुद्धि लगाते है। परन्तु उसका रहस्य ना जानने से धर्म की प्राप्ति नही होती है। मोक्ष-मार्ग प्रकाशक मे लिखा है कि दिगम्बर जैन अनुयायी निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, भगवान की आज्ञा मानता है, तब भी मिथ्यात्व का अभाव नही होता है। जिनागम मे जो निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है उसका पता न होने से वह ससार का पात्र बना रहता है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १९३]

जिसको अभी यह भी मालूम नही कि 'मै कौन हूँ ? मेरा क्या कार्य है ? कहाँ से मैं आया हूँ ?' और पढ लिया गौम्मटसार। कहता है कि कर्म के कारण जीव चक्कर काटता है - यह जिनागम के अर्थ का अनर्थ करता है। इसलिए हे भाई ! जैसे—लौकिक कार्य मे जिसका अपने को पता नही, उसमे हम दखल नही देते है और जिस को उसका पता है उसकी बात मानते हैं, उसी प्रकार लोकोत्तर मार्ग मे भी धर्म गुरु से विनय से निश्चय-व्यवहार का रहस्य जानकर अपनी आत्मा का आश्रय ले, तो भला हो।

प्रश्न ३६—रागादि को पुद्गल का क्यो कहाँ है ?

उत्तर—(१) जैसे—लडका माँ का है परन्तु विवाह होने पर बहू का पक्ष करे तो बहू का कहलाता है, उसी प्रकार रागादिक पुद्गल के निमित्त से होता है इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है (१) जिसमे मिलना और बिछुडना हो, उसे पुद्गल कहते है, उसी प्रकार रागादि

आते है चले जाते है इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है। (३) रागादि आत्मा के स्वभाव मे विघ्नकारक है अत रागादि को आत्म-स्वभाव से विपरीत होने से पुद्गल कहा है। (४) जाने सो चेतन और न जाने सो अचेतन। रागादि अपने को भी नही जानता, पर को भी नही जानता। इसलिए रागादि को अचेतन होने ने पुद्गल कहा है। (५) जो निकल जाता है, वह अपना नही। रागादि आत्मा से निकल जाता है, इसलिए रागादि को पुद्गल का कहा है।

याद रहे—रागादि अज्ञानी जीव की पर्याय मे होता है यदि वह स्वभाव का आश्रय लेकर उनको दूर करे तो रागादि पुदगल का है ऐसा उनका कहना सार्थक है।

प्रश्न ३७—रागादि को आपने पुद्गल कहा; क्या रागादि मे स्पर्श-रस-गध-वर्ण पाया जाता है ?

उत्तर—नही-रागादि मे स्पर्शादि नही है परन्तु जड है। वास्तव मे रागादि ना जीव का है और ना पुद्गल का है। एक कहावत है कि रागादि जीव के पास गए, तुम हमे अपने मे मिला लो जीव ने कहा, क्या तुम्हारे मे चेतनपना है वह वहाँ से भाग गया। फिर रागादि पुद्गल के पास गया तुम हमे अपने अपने मे मिलालो तव दुगल ने कहा, क्या तुम्हारे मे स्पर्श-रस-गध-वर्ण हैं तो वह वहाँ से भी भाग गया अर्थात् त्रिशकु की तरह रागादि बीच मे लटकता रहता है।

प्रश्न ३८—आप कहते हो पर वस्तु से आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है और आत्मा पर वस्तु के ग्रहण त्याग से रहित है। तो आत्मा रागादिक का ग्रहण तो न करे, किन्तु छोड़ तो सकता है ना ?

उत्तर—बिल्कुल नही—(१) जैसे—जिस समय लडका उत्पन्न हुआ क्या उसी समय वह मर सकता है? आप कहेगे, नही, उसी प्रकार जिस समय रागादि उत्पन्न हुआ उसी समय उसका अभाव नही हो सकता। भूत का राग है ही नही, वह तो समाप्त हो गया है। भविष्य का राग आया ही नही। उसको क्या छोडे ? अत आत्मा

भूत-भविष्य वर्तमान के राग का त्याग नही कर सकता है। (२) अज्ञानी कहता है जब राग आवेगा, तब मै उसका अभाव कर दूंगा। किन्तु वह राग छद्मस्थ के ज्ञान मे असख्यात समय के बाद मे आता है तब जो राग वह छोडना चाहता है वह तो असख्यबार स्वय बदल गया होगा अर्थात् उस राग का तो व्यय हो गया होगा, तो किसको छोडेगा ? (३) अज्ञानी कहता है कि जब राग की पर्याय उत्पन्न होगी मै उसका अभाव कर दूंगा। किन्तु जब एक समय की पर्याय पकड़ मे आवेगी तब उसे केवलज्ञान होना चाहिए और केवलज्ञान होने से पहले १२वें गुणस्थान मे रागादि का सर्वथा अभाव हो जाता है। अत राग का त्याग करना नही पडता है।

प्रश्न ३९—शास्त्रो मे लिखा है कि रागादिक का त्याग करो तो क्या यह असत्य लिखा है ?

उत्तर—नही, असत्य नही लिखा है। वह निमित्त की अपेक्षा कथन किया है। जैसे—किसी को बुखार आया। डाक्टर ने दवाई दी तो वह उतर गया। वास्तव मे बुखार आया ही नही उसको बुखार उतर गया, ऐसा बोलने मे आता है, उसी प्रकार जीव ने अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लिया, तो राग-द्वेष उत्पन्न ही नही हुआ तो राग द्वेष को दूर किया, ऐसा व्यवहार से कथन किया जाता है। क्योकि स्वभाव का आश्रय लेना, अशुद्ध पर्याय का व्यय और शुद्ध पर्याय की उत्पत्ति का एक ही समय है।

प्रश्न ४०—साकार, निराकार का किस-किस अर्थ मे प्रयोग होती है ?

उत्तर—पहली प्रकार से (१) दर्शनोपयोग को निराकार उपयोग कहते हैं, क्योकि दर्शन पदार्थों को अभेदरूप से देखता है। २) ज्ञानोपयोग को साकार उपयोग कहते हैं, क्योकि ज्ञान पदार्थों को भिन्न-भिन्न जानता है। दूसरी तरह से (१) इन्द्रिय गम्य ना होने से आत्मा को निराकार कहते हैं। (२) प्रदेशत्वगुण के कारण आत्मा

को साकार कहते है ।

प्रश्न ४१—सविकल्प और निर्विकल्प किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उत्तर—पहली तरफ से (१) बुद्धिपूर्वक राग-अवस्था को सविकल्प अवस्था कहते है। (२) अबुद्धिपूर्वक राग सहित, किन्तु बुद्धिपूर्वक राग रहित अवस्था को निर्विकल्प अवस्था कहते है। **दूसरी तरफ से,** (१) ज्ञान मे पदार्थ भिन्न-भिन्न जाना जाता है, इसलिए ज्ञान को सविकल्प कहते हैं। (२) दर्शन मे पदार्थ अभेद रूप से देखा जाता है, इसलिए दर्शन को निर्विकल्प कहा जाता है।

प्रश्न ४२—सामान्य और विशेष किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उत्तर—पहली प्रकार से (१) दर्शन को सामान्य कहते है (दर्शनोपयोग) (२) ज्ञान को विशेष कहते है (ज्ञानोपयोग) **दूसरी तरफ से,** (१) सक्षेप मे (थोडे मे) बोलने के अर्थ मे सामान्य कहते है, जैसे भाई थोडे मे वर्णन करो। (२) विस्तारपूर्वक अर्थ के कथन करने को विशेष कहते है। **तीसरी प्रकार से** (१) द्रव्य को सामान्य कहते हैं। (२) गुण को विशेष कहते है। **चौथी प्रकार से** जब गुण को सामान्य कहे तो पर्याय को विशेष कहते है।

प्रश्न ४३—भेद-अभेद किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उत्तर—पहली तरफ से (१) एक वस्तु का दूसरी वस्तु से भेद करके जानना, उसे भेद कहते हैं। (२) भेद गेरे बिना देखना, वह अभेद है। **दूसरी तरफ से,** (१) गुण पर्याय को भेद कहते हैं। (२) द्रव्य को, अभेद कहते है।

प्रश्न ४४—अज्ञानी को राग-द्वेष क्यो उत्पन्न होता है ?

उत्तर—ससार के पदार्थों का अपने भाव अनुसार परिणमन होने पर राग उत्पन्न होता है। (२) ससार के पदार्थों का अपने भाव के अनुसार न परिणमन होने पर द्वेष उत्पन्न होता है।

प्रश्न ४५—अज्ञानी के राग-द्वेष का अभाव कैसे हो ?

उत्तर—जिनेन्द्र कथित विश्वव्यवस्था को मानने से या निमित्त-रूप सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानने से ही राग-द्वेष का अभाव हो सकता है।

प्रश्न ४६—हुंडावर्सणी काल मे अछेरा क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) तीर्थंकर के पुत्री का होना। (२) चक्रवर्ती का हारना। (३) ६३ शला के पुरुषो की जगह साठ की सख्या का होना।

प्रश्न ४७—स्मरण, विस्मरण और मरण से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—(१) जिनका करना चाहिए निरन्तर स्मरण, उनका करता है विस्मरण। इसलिए नही मिटता है भयकर भाव मरण। (२) जिनका करना चाहिए निरन्तर विस्मरण। उनका करता है स्मरण। इसलिए नही मिटता है भयकर भावमरण।

प्रश्न ४८—"जिओ और जीने दो" का क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) अपने चैतन्य प्राण से सदा काल जीवे वह जिओ से तात्पर्य है। (२) अन्य जीव भी सदा काल अपने चैतन्य प्राणो से जीवे यह जीने दो से तात्पर्य है।

प्रश्न ४९—दृष्टिवन्त को भव और भव का भाव क्यों नहीं है ?

उत्तर—जैसे—स्वभाव मे भव नही है और भव का भाव नहीं है। उसी प्रकार दृष्टिवन्त को भव नही है और भव का भाव नही है।

प्रश्न ५०—जीव को लोकाग्र जाने मे एक समय से ज्यादा समय लगे, तो क्या हानि है ?

उत्तर—जब जीव सम्पूर्ण शुद्ध हो जाता है तब उसमे सम्पूर्ण शक्ति प्रगट हो जाती है। यदि लोकाग्र जाने मे एक समय से ज्यादा लगे तो जीव की पूर्ण शक्ति प्रगट नही हुई ऐसा कहा जा सकता है। लेकिन पर्याय मे पूर्ण शक्ति प्रगट हो गई है। इसलिए लोकाग्र जाने मे एक समय ही लगता है।

प्रश्न ५१— छेद और छेदोपस्थापना किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने स्वरूप की रमणता से हटकर श्रद्धा सहित प्रमाद के वश होना उसे छेद कहते हैं। उस प्रमाद को हटाकर अपने स्वरूप मे आना उसे छेदोपस्थापना कहते हैं। जैसे—सातवा गुणस्थान वाले मुनि जब छठे गुणस्थान मे आते है, उन्हे २८ मूलगुण पालने का भाव आता है, उसका नाम भी छेद है और उस वृत्ति को तोडकर सातवे गुणस्थान मे आना, छेदोपस्थापना है।

प्रश्न ५२—हिंसा और महान हिंसा क्या है ?

उत्तर—(१) रागादि की उत्पत्ति होना हिंसा है। (२) रागादि भावो मे धर्म मानना महान हिंसा है।

प्रश्न ५३—अहिंसा और अहिंसा की सच्ची समझ क्या है ?

उत्तर—(१) रागादिक की अनुत्पत्ति वह अहिंसा है। (२) रागादिक मे धर्म नही मानना, वह है अहिंसा की सच्ची समझ।

प्रश्न ५४—संसार का अभाव और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर—परिवर्तनशील ससार मे अपरिवर्तनशील अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय ले तो अपरिवर्तनशील मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्रश्न ५५—सामान्य के आश्रय से क्या होता है और विशेष के आश्रय से क्या होता है ?

उत्तर—अपने सामान्य स्वभाव का आश्रय लेने से अपने विशेष मे सवर-निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति होती है और अपने विशेप का आश्रय ले तो अपने विशेप मे आस्रव-वन्ध की वृद्धि होकर निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ५६—मुझे-दुःख मिटाकर-सुख प्राप्त करना है। सात तत्त्व लगाकर वताओ ?

उत्तर—जीव-अस्रव-वन्ध-सवर-निर्जरा मोक्ष।

प्रश्न ५७—"समझा तो समाया" से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—जो अपने मे समा जाता है वह समझा है और समझने वाले को वाहरी प्रसिद्धि की आवश्यकता नही होती है।

प्रश्न ५८—मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर—पर्याय का लक्ष्य करने वाला छद्मस्थ जीव को पर्यायी का (द्रव्य का) लक्ष्य न होना वह मिथ्यात्व है।

प्रश्न ५९—क्या पर्याय का ज्ञान करना मिथ्यात्व है ?

उत्तर—पर्याय का ज्ञान करना वह मिथ्यात्व नही है परन्तु पर्याय का आश्रय मानना वह मिथ्यात्व है।

प्रश्न ६०—आप्त किसे कहते हैं।

उत्तर—वीतराग-सर्वज्ञ और हितोपदेशी को आप्त कहते हैं।

प्रश्न ६१—जो वीतराग हो, वह सर्वज्ञ है या नहीं ?

उत्तर—११-१२वे गुणस्थान मे वीतराग है, सर्वज्ञ नही है।

प्रश्न ६२—सर्वज्ञ हो, वह वीतराग है या नहीं ?

उत्तर—नियम से है क्योकि १३वे गुणस्थान मे सर्वज्ञ है और वह १२वे गुणस्थान मे वीतराग हो ही जाता है।

प्रश्न ६३—पूर्ण आप्तपना नियम से किसके होता है ?

उत्तर—तीर्थंकर के ही होता है, क्योकि उनकी दिव्यध्वनि नियम से खिरती है।

प्रश्न ६४—तीर्थंकर पद का बन्ध, तीर्थंकर के लिए कार्यकारी है या भव्य जीवो के लिए कार्यकारी है ?

उत्तर—तीर्थंकर पद का बन्ध जिस जीव को प्राप्त होता है। उसका फायदा ना तो स्वय तीर्थंकर होने वाले को है और ना भव्य जीवो के पार होने के लिए है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति विशिष्ट पुण्य प्रकृति है।

प्रश्न ६५—तीर्थंकर पद का बंध तीर्थंकर होने वाले के लिए, क्यों कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर—(१) जैसे—महावीर स्वामी के जीव को नन्दराजा के भव मे तीर्थंकर गोत्र का बध हुआ। उससे उनके तीन भव बढ गये। यदि वह उस समय विशेष स्थिरता करके अपने मे पूर्ण लीन हो जाते

नो उसी भव से मोक्ष हो जाता। (२) तीर्थंकर प्रकृति का उदय १३वे गुणस्थान मे आता है, तो विचारो ! तीर्थंकर पद का वध, तीर्थंकर के लिए क्या कार्यकारी रहा ? कुछ भी नही, क्योंकि उनको जो समवशरणादि ऋद्धि की प्राप्ति हुई, वह तो उनका ज्ञान का ज्ञेय बना।

प्रश्न ६६—क्या भव्य जीवो को पार करने के लिए भी तीर्थंकर पद कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर—नही है, क्योकि कोई जीव भगवान के समवशरण मे दिव्य ध्वनि सुन रहा है, उसका उपयोग दिव्यध्वनि की ओर रहे तो वह धर्म प्राप्त नही कर सकता है, इसलिए तीर्थंकर पद से भी दृष्टि उठावो। एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय लो तो ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न ६७—आत्मा में वंध का निमित्तकारण कौन नहीं है और कौन है ?

उत्तर—(१) कर्म आठ है, इनमे से अघाति कर्म तो वध के कारण नहीं है, क्योंकि अघाति के कारण सयोग मिलता है। (२) घातियो मे से ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय और अन्तराय का क्षयोपशम किसी ना किसी अश मे सर्व ससारी जीवो को प्रगट है। इन तीनो की हीनादिक अवस्था भी वध का कारण नही है। ज्ञान-दर्शन-वीर्य का जितना उघाड है, वह भी वध का कारण नही है, क्योकि वह स्वभाव का अश है। यदि स्वभाव वध का कारण हो तो स्वभाव त्रिकाल है, फिर वध भी त्रिकाल हो जावेगा, इसलिए जितना उघाड है वह वध का कारण नही है। ज्ञान-दर्शन-वीर्य का जितना अभाव है वह भी वध का कारण नही है। (३) अव रहा मोहनीय। उसमे भी विशेष वन्ध का कारण दर्शनमोहनीय का उदय है और चारित्र मोहनीय के उदय से जो रागद्वेष होता है वह भी वध का

कारण है। इस प्रकार मात्र मोहनीय कर्म ही बंध का निमित्त कारण है।

प्रश्न ६८—पाँच भावो में से बंध का कारण कौन है ?

उत्तर—पाँच भावो मे से मात्र औदयिक भाव ही बंध का कारण है, किन्तु सर्व औदयिक भाव भी बंध के कारण नही है. किन्तु मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योग ये चार बंध के कारण है।

[धवला भाग सात पृष्ठ ६]

प्रश्न ६९—पुद्गलो मे बंध कैसे होता है और यह क्या बताता है ?

उत्तर—पुद्गल मे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि सब पाये जाते हैं। इसमे भी स्पर्श को छोडकर बाकी गुणो की पर्यायो के कारण बंध होता ही नही। स्पर्श गुण की ८ पर्याये हैं। इन आठ पर्यायो मे से मात्र स्निग्ध और रुक्ष इन दो पर्यायो मे ही बंध होता है। जैसे—पुद्गल मे स्निग्ध—रुक्ष के कारण बंध होता है। वैसे ही जीव मे राग—द्वेष के कारण बंध होता है।

प्रश्न ७०—यह जीव स्वयं स्वर्ण अक्षरों मे निगोद के टिकट पर हस्ताक्षर कैसे कर रहा है ?

उत्तर—इग्लैण्ड मे जिस समय चार्ल्स चौथा राजा था। उस समय वहाँ की पार्लियामेण्ट ने चार्ल्स के लिए फाँसी का प्रस्ताव पास किया। चार्ल्स के पास हस्ताक्षर करने के लिए भेज दिया, क्योंकि वहाँ पर उस समय ऐसा ही कायदा था, कि पार्लियामेन्ट द्वारा पास होने पर भी जब तक किंग के हस्ताक्षर नही हो जावे, तब तक वह पास नही माना जाता था। देखो, उस समय राजा ने अपनी फाँसी पर स्वय हस्ताक्षर किये, उसी प्रकार अनादिकाल से मोहरूपी पागलपन के कारण यह अज्ञानी जीव क्षण-क्षण मे भाव मरण कर रहा है। ससार मे इसका किसी के साथ सम्बन्ध नही है लेकिन यह अज्ञानी जीव जहाँ भी जाता है, वहाँ पर 'यह मेरा, यह तेरा' करता

रहता है, 'किसी पदार्थ को इष्ट मानता है और किसी को अनिष्ट मानता है जबकि कोई भी पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नही है, इसी कारण यह जीव भाव मरण करता आ रहा है और निगोद का पात्र वनता रहता है।

प्रश्न ७१—राग द्वेष की उत्पत्ति का क्या कारण है ?

उत्तर—आत्म तत्त्व से छूटकर, परद्रव्य का लक्ष करना वह राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण है और पुद्गल कर्म के प्रदेशो मे स्थित होना यह निमित्त कारण है। (समयसार के शब्दो मे)

हर कार्य दो कारण होते हैं; (१) उपादान कारण, (२) निमित्त कारण।

(१) रागद्वेष की उत्पत्ति मे अनादिकाल से एक-एक समय करके निमित्तकारण मोहनीय कर्म है। (२) उपादानकारण—अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय न लेना अर्थात् उससे खिसक जाना है। वास्तव मे आत्म स्वभाव से भ्रष्ट होना ही राग द्वेष की उत्पत्ति का उपादान कारण है। जब उपादानकरण होता है उस समय निमित्त मोहनीय कर्म का उदय होता ही है ऐस सहज ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्रश्न ७२—राग-द्वेष के अभाव मे उपादान और निमित्त क्या है ?

उत्तर—मोहनीय कर्म का अभाव निमित्त कारण है और त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय उपादान कारण है।

प्रश्न ७३—साधक जीव को राग-द्वेष की उत्पत्ति मे क्या कारण है ?

उत्तर—४-५-६ गुणस्थान मे अपनी-अपनी भूमिका अनुसार शुद्ध परिणति तो निरन्तर रहती है। श्रद्धा गुण की तो निर्मल पर्याय सौ फीसदी पूरी-पूरी है। लेकिन साधक को चारित्र गुण की एक समय की पर्याय मे दो धारा चलती है; एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध। इसकी

पहिचान ज्ञानियो को है, अज्ञानियो को नही ।

शुद्ध परिणतिरूप जितनी स्थिरता होती है, वह तो राग-द्वेष का अभावरूप वर्तती है और जितना वह अपने से खिसक जाता है वह राग-द्वेष की उत्पत्ति का मूल कारण है ।

प्रश्न ७४—एक मुमुक्षु भाई की पंडित जी के साथ आपस में क्या चर्चा हुई थी ?

प्र०—मुमुक्षु=राग-द्वेष की उत्पति का क्या कारण है ? साथ ही आप यह तो जानते और मानते ही है, कि हर कार्य की उत्पत्ति मे दो कारण होते हैं—उपादान और निमित्त । राग-द्वेष की उत्पत्ति मे निमित्त कारण मोहनीय कर्म है इसमे आपको और हमे किसी को भी आपत्ति नहीं है, लेकिन पण्डित जी ! उपादान कारण क्या है ?

उत्तर—पण्डितजी=वैभाविक शक्ति उपादान कारण है ।

प्र०—मुमुक्षु=वैभाविकशक्ति गुण है यदि वह राग-द्वेष का उपादानकारण हो तो सिद्धो मे भी राग होना चाहिए, इसलिए पण्डित जी वैभाविकशक्ति तो राग-द्वेष का उपादानकारण प्रतीत नहीं होता है ?

उत्तर—पण्डित जी=फिर आप ही बताइए ।

प्र०=मुमुक्षु=मैं तो आपको बता ही दूंगा, लेकिन मै आप से ही इसका उत्तर कहलवाना चाहता हूं । अच्छा पण्डित जी, आप थोड़ी देर के लिए इस प्रश्न को डिपोजिट रखिये और पण्डित जी ! यह बताइए कि 'राग-द्वेष के अभाव का क्या कारण हैं ?

उत्तर—पण्डित जी=निमित्तकारण मोहनीय कर्म का अभाव है और उपादानकारण त्रिकाली स्वभाव का आश्रय है ।

प्र०—मुमुक्षु=ठीक है, पण्डित जी ! देखिये जैसे राग-द्वेष के अभाव का उपादानकारण त्रिकाली स्वभाव का आश्रय है, उसी प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति का उपादानकारण अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय ना करना, यह है । देखिये पण्डित जी ! जो बात डिपोजिट

कराने से परिणमित नही होती है। तथापि मिथ्यादृष्टि सोचता है, मैं जैसा चाहू वैसा पदार्थ परिणमन करें तब ठीक हो। सब मेरे मित्र हो, दुश्मन न हो। सब मेरी प्रशसा करे निन्दा ना करे। ससार मे मैं सबसे बडा कहलाऊँ, सब मेरे दास रहे आदि अगणित इच्छा करके दु खी होता है। इसलिए उन्हे यथार्थ मानना और परिणमित कराने से अन्यथा परिणमित नही होगे—ऐसा मानना ही दु ख दूर होने का उपाय है। भ्रम जनित दु ख दूर करने का उपाय भ्रम दूर करना ही है। सो भ्रम दूर होने से सम्यक् श्रद्धान होता है। वही सत्य उपाय आकुलता मिटाने का है, अन्य नही।

प्रश्न ७७—कोई दिगम्बर नाम धराके निश्चय रत्नत्रय १२ वें गुणस्थान में व कोई ८ वें गुणस्थान मे और कोई १३ वें गुणस्थान में बतलाते हैं, क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर—(१) वास्तव मे निश्चय रत्नत्रय की शुरूआत चौथे गुणस्थान से ही होती है। चौथे गुणस्थान मे कषाय की एक चौकडी अभावरूप, पाँचवे मे दो चौकडी अभावरूप, छठे मे तीन चौकडी अभावरूप शुद्ध अश होता है। उतना निश्चय रत्नत्रय होता है। क्रम-क्रम से बढता जाता है। जो जीव उलटा बोलते है उनका कथन मिथ्या है, क्योकि 'अचिरात्-शीघ्र तद्भवे तृतीय भवादौ वा अवश्य-नियमत समयस्य पदार्थस्य-सिद्धान्तशासनस्य वा सार परमात्मान टकोत्कीर्ण स्वभाव विदति-लभते, साक्षात परमात्मा भवतीति यावत्।' देखिये ! निश्चय रत्नत्रय से एक भव, दो भाव या तीन भव मे निर्वाण को प्राप्त होता है।" यदि ८, १२-१३ वें गुणस्थान मे निश्चय रत्नत्रय हो, तो वहाँ दो भव या तीन भव की बात कहाँ रही ? क्योकि १२-१३वा गुणस्थान हो, उसको उसी भव से नियम से मोक्ष हो जाता है। (सर्व विशुद्धि अधिकार कलश ४७ टीका शुभचन्द्राचार्य)

(२) नियमसार परमभक्ति अधिकार गाथा १३४ मे लिखा है 'जो श्रावक व श्रमण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भक्ति करते हैं, उसको भगवान ने निर्वाण की भक्ति कही है।

प्रश्न ७८—यह जीव इतना सुनने पर भी क्यों नहीं चेतता है ?

उत्तर—(१) जैसे कोई आदमी मोटे-मोटे तीन गद्दे ओढकर सो रहा है उसे कितना ही मारो, वह उठता नही; उसी प्रकार अनादि-काल से यह जीव मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्ररूप तीन गद्दे ओढकर सो रहा है। उसे सद्‌गुरु कितना ही जगायें, वह उठता ही नही है और (२) जैसे कोई पतली चादर ओढकर सो रहा है उसे जरा हिला दो, वह तुरन्त उठ जाता है, उसी प्रकार पात्र जीव को जरा ही कहो कि तू भगवान है तो फौरन जाग जाता है।

प्रश्न ७९—शास्त्रो मे (१) स्फटिकमणि की उपमा (२) दीपक की उपमा और (३) दर्पण की उपमा देने के पीछे आचार्यों का क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) जिन वाणी मे स्फटिकमणि की उपमा वहाँ देते है, जहाँ आत्मा का स्वभाव वतलाना हो। (२) दीपक की उपमा वहाँ देते है, जहाँ आत्मा का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव वतलाना हो और (३) दर्पण की उपमा वहाँ देते है, जहाँ जैसा पदार्थो का स्वरूप है वैसा का वैसा वतलाना हो।

प्रश्न ८०—भावक-भाव्य का क्या-क्या अर्थ है ?

उत्तर—(१) समयसार गाथा ३२-३३ मे "भावक = कर्म का उदय और भाव्य = अस्थिरता सम्बन्धी शुभ भाव को वताया है।" (२) प्रवचनसार गाथा २४२ मे 'भावक-आत्मा और भाव्य = सम्यग्दर्शनादि शुद्ध पर्याय को वताया है।

प्रश्न ८१—सोपक्रम और निरुपक्रम आयु से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—(१) सोपक्रम = जिस आयु की पूर्णता मे वाह्य के प्रति-कूल सयोग निमित्तरूप होवे, वह सोपक्रम आयु कहलाती है। (२) निरुपक्रम = जिस आयु की पूर्णता मे वाह्य सयोग निमित्तरूप ना होवे वह निरुपक्रम आयु कहलाती है।

प्रश्न ८२—आप कहते हो (१) कोई आत्मा शरीर का काम

नहीं कर सकता, (२) रोटी खाने का कार्य पुद्गल का ही है, आत्मा का नहीं, (३) कर्मों के उपशमादि कार्माणवर्गणा का ही कार्य है जीव से उसका सम्बन्ध नहीं है। लेकिन हमको तो जैसा आप कहते हैं उल्टा ही दिखता है इसका क्या कारण ?

उत्तर—(१) जैसे—किसी की आँख मे पीलिया रोग हो गया हो तो उसे सब चीजें पीली ही दीखती है, उसी प्रकार अज्ञानियो को सब बातें शास्त्र से विरुद्ध ही दिखाई देती है। (२) जैसे—आप रेल मे जाते है। वहाँ से बाहर की तरफ देखे, तब पेड चलते हुए दीखते है। क्या पेड चलते हैं ? आप कहेगे नही, उसी प्रकार अज्ञानी को सब कार्य शरीरादि के हम करते है, ऐसा दीखता है, लेकिन जैसे आपके ज्ञान मे आता हैं कि पेड़ चलते नही हैं, वैसे ही जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो सही बात ध्यान मे आवें। (३) "वछरे के अण्डे के समान आत्मा ने किया, ऐसा अज्ञानी मानता है। अज्ञानी जीव कहता है कि आत्मा पर द्रव्य के कार्य को करता देखा जाता है ना ? अरे भाई जब आत्मा पर द्रव्य का कुछ कर ही नही सकता। तो तूने देखा कहाँ से ? खोटी दृष्टि से देखा है कि आत्मा ने यह जडकी क्रिया की है। यह देखो ! हाथ मे लकडी है। अब यह ऊँची हो गई, इसमे आत्मा ने क्या किया ? आत्मा ने यह जाना तो सही कि लकडी पहले नीचे थी और अब ऊपर हो गई है। परन्तु आत्मा लकडी को ऊचा करने मे समर्थ नही है। अज्ञानी मानता है कि मैंने लकडी ऊँची की है यह विपरीत मान्यता है। इस लिए याद रक्खो —(क) एक आत्मा दूसरी आत्मा का कुछ नही कर सकता है। (ख) एक आत्मा जड का कुछ नही कर सकता है। (ग) एक पुद्गल दूसरे पुद्गल का कुछ नही कर सकता है। (घ) एक पुद्गल भी आत्मा का कुछ नही कर सकता है। ऐसा मानना सम्यग्ज्ञान है, इससे उल्टा मानना महान पाप मिथ्यात्व है। (४) देखो ! अरहत भगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई है। वह उसी समय चार

अघाती कर्म और औदारिक शरीर का अभाव नही कर सकते है और उनका भक्त कहे, कि हम कर सकते हैं, कितना आश्चर्य है। (५) सिद्ध भगवान सबको जानते हैं, किसी का कुछ भी नही कर सकते हैं। ऐसा जानकर अपना आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति सभव है।

प्रश्न ८३—त्रेसठ शलाका पुरुष सम्यग्दृष्टि होते हैं या मिथ्यादृष्टि ?

उत्तर—त्रेसठ शालाका बन्ध सम्यग्दर्शन होने के बाद ही होता है। मिथ्यादृष्टि को इनमे से एक का भी वन्ध नही होता है परन्तु :—

(१) २४ तीर्थंकर तो सम्यग्दृष्टि ही होते हैं और उसी भव से मोक्ष जाते है। (२) चक्रवर्ती कोई मोक्ष जाता है, कोई स्वर्ग जाता है और कोई सम्यक्त्व का अभाव करके सातवे नरक भी जाता हैं। (३) नव बलदेव सब सम्यग्दृष्टि ही रहते है। कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग जाता है। (४) नारायण और प्रतिनारायण का सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है और नरक जाते है।

प्रश्न ८४—पर्याप्ति कितनी हैं और उससे क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—पर्याप्ति छह होती है—(१) आहार, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) श्वासोच्छ्वास, (५) भाषा, (६) मन।

जैसे—सज्ञी पचेन्द्रिय जीव जब-जब जहाँ पर उत्पन्न होता है। वहाँ पर इन सब पर्याप्तियो की शुरुआत एक साथ होती है। लेकिन पूर्णता क्रम से होती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर सर्व गुणो मे अशरूप से शुद्धता आ जाती है, परन्तु पूर्णता क्रम से होती है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान मे पूर्ण हो जाता है। चरित्र १२वें गुणस्थान मे तथा ज्ञान, दर्शन, वीर्य की पूर्णता १३वे गुणस्थान मे और योग की पूर्णता १४वे गुणस्थान मे होती है।

प्रश्न ८५—कोई कहे कि सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता होनी चाहिए। नही तो हम सम्यग्दर्शन होना मानते ही नहीं। क्या उनका कहना ठीक है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता हो जावे तो निम्न दोष आते हैं। (१) सम्यग्दर्शन होते ही सिद्ध हो जावे, तो किसी जीव को ज्ञानी के उपदेश का निमित्त नही बनेगा इसलिए यह मान्यता मिथ्या है। (२) श्रावकपना, मुनिपना श्रेणीपना और अरहतपने के अभाव का प्रसग उपस्थित होवेगा। (३) गुणस्थानो के अभाव का प्रसग उपस्थित होवेगा। (४) शास्त्रो की रचना नही होगी, क्योकि विशेष रूप से श्रावक और भावलिंगी मुनियो को शास्त्रादि रचने का विकल्प-हेय-बुद्धि से आता है। इसलिए सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता होनी चाहिए, यह वात मिथ्यादृष्टियो की है और उनका कहना असत्यार्थ है।

प्रश्न ८६—ध्रुव धाम की धुन रूपी ध्यान यह धर्म है। इससे क्या तात्पर्य है?

उत्तर—एक मात्र अनादि अनन्त जो परम पारिणामिक ध्रुवधाम जो आत्मा है उसी के आश्रय से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है और किसी के आश्रय से नही होती है।

(१) जैसे ऊपर ध्रुवतारा है। उसके चारो तरफ सात तारे चक्कर लगाते रहते हैं परन्तु वह ध्रुवतारा एक ही जगह रहता है। समुद्र मे उस ध्रुवतारे के सहारे जहाज भी चलते हैं, उसी प्रकार अनादि अनन्त ध्रुवधाम है। उसी के आश्रय से धर्म की शुरुआत वृद्धि पूर्णता होती है औरो के आश्रय से नही।

२) जैसे—एक आदमी के हाथ मे एक पक्षी था। उसने वृक्ष पर दो पक्षी बैठे देखे। देखकर उसने अपने हाथ का पक्षी छोड दिया और उन दोनो को पकडने दौडा तो वे दोनो भी उड गये, उसी प्रकार अनादि काल से अज्ञानी अपना जो अनादिअनन्त ध्रुवधाम आत्मा है, उसे छोडता है अध्रुव स्त्री-पुत्र-धनादि, शुभाशुभभावो का आश्रय करता है तो दुखी होता है। इसलिए हे आत्मा! जो तेरा ध्रुव-धामरूपी अनादि अनन्त आत्मा है उसका आश्रय ले, तो भला हो

और पर द्रव्य, विकारी, अविकारी पर्यायो का आश्रय छोड।

(३) जैसे— एक मजबूत खूँटे से वडी मोटी भैस वधी है। भैस जोर मारती है। लोग कहते हैं भैस जोरावर है परन्तु जोर है खूँटे का, जो हिलता ही नही, उसी प्रकार अज्ञानी लोग वाहरी क्रिया का, शुभभावो का जोर देखते हैं लेकिन जोर है अपने त्रिकाली ध्रुवधाम का। इसलिए अपने ध्रुवधाम की धुनरूपी ध्यान से धर्म प्रगट करना चाहिए।

(४) एक वार छोटी उम्र मे पूज्य गुरुदेव ध्रुव का नाटक देखने गये। नाटक मे दिखाया गया कि ध्रुव वच्चा है वह अपने वाप की गोद मे वैठने जा रहा है। उसी समय उसकी दूसरी माँ ने टोका, तू तू उसका पुत्र है गोद मे कैसे जाता है ? वह यह देखकर जगल मे चला गया और ऐसा ध्यान लगाया—कि आँख उठाकर ऊपर को देखता ही नही था। तव स्वर्ग से दो अप्सरा उसे डिगाने आई। उन्होने वडा हाव भाव प्रकट किया, परन्तु ध्रुव ने उनकी तरफ आँख उठाकर देखा ही नही। तब उन अप्सराओ ने कहा—ध्रुव तुम इतनी छोटी उम्र मे क्यो ध्यान करते हो ? तुम अभी हमारे साथ भोग करो—आनन्द लो। वाद मे दीक्षा ले लेना, तव भी ध्रुव ने अपनी नजर ऊँची ना की। अप्सराओ ने कहा, हे ध्रुव ! जरा एक वार हमारी ओर नजर उठाकर के तो देख लो। तव ध्रुव ने आँख खोलकर उनसे कहा हे माता ! यदि मुझे जन्म लेना पडे, तो मैं तेरी कोख मे उत्पन्न होऊँगा तव वह अप्सराएँ निराश चली गई; उसी प्रकार यह जीव अनादि से एक-एक समय करके पर की ओर देखकर पागल हो रहा है। यदि एक वार अपने ध्रुवधाम की ओर दृष्टि करे, तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है।

(५) जैसे—एक आदमी ने एक लाख रुपया दान देने को कहा और वाद मे मुकर गया। तो जो मुकर जाता है उसका कोई विश्वास नही करता, उसी प्रकार ससार की सब पर वस्तु और शुभभाव

फिरने वाले है जो इनका विश्वास करता है, धोखा खाता है और जो न फिरने वाला अपना ध्रुवधाम है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होती है।

(६) क्षायिक, क्षयोपशम, औदयिक, औपशमिकभाव अध्रुव है। इनके आश्रय से धर्म की प्राप्ति नही होती है और जो अपना परम पारिणामिक त्रिकाली ध्रुवधाम है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होती है।

(७) हे आत्मा! (१) परवस्तुओ से (२) विकारी भावो से, (३) अपूर्ण पूर्ण शुद्ध पर्यायो से, जो कि सब अध्रुव हैं, इनसे दृष्टि उठा और जो अपना ध्रुवधाम ज्ञायक भगवान है। उसका आश्रय ले, तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होकर श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहतपना-सिद्धपना की प्राप्ति हो। इसलिए अपने ध्रुवधाम की धुनरूपी ध्यान से ही धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न ८७—सर्वज्ञ है, इसकी सिद्धि किस प्रकार हो ?

उत्तर—पचास्तिकाय जयसेनाचार्य गा० २९ मे तथा वृहत् द्रव्य सग्रह गा० ५० की टीका मे सर्वज्ञ की सिद्धि की है।

प्रश्न ८८—कोई सर्वज्ञ का निषेध करने वाला कहता है कि सर्वज्ञ है ही नहीं, क्योकि देखने में नहीं आते, उसे शास्त्र मे किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर—हे भाई ! यदि तुम कहते हो 'सर्वज्ञ नही है' तो हम पूछते है कि सर्वज्ञ कहाँ नही है ? इस क्षेत्र मे और इस काल मे नही है अथवा तीनो काल मे और तीनो लोको मे नही है। [अ] यदि तुम यह कहते हो कि 'इस क्षेत्र मे और इस काल मे सर्वज्ञ नही है,' तो हम भी ऐसा ही मानते है। [आ] यदि तुम यह कहते हो कि 'तीनो काल और तीनो लोको मे सर्वज्ञ नही है' तो हम तुमसे पूछते हैं कि यह तुमने कैसे जाना ? यदि तीनो लोक को और तीनो काल को सर्वज्ञ के बिना तुमने देख-जान लिया तो तुम्ही सर्वज्ञ हो गए।

क्योकि जो तीन लोक और तीन काल को जाने, वही सर्वज्ञ है। इसलिए सर्वज्ञ का निषेध योग्य नही है।

प्रश्न ८९—देवागम स्तोत मे समन्तभद्र स्वामी और महावीर स्वामी की क्या वार्ता है?

उत्तर—(१) भगवान महावीर ने समन्तभद्र से पूछा कि तुम मुझे भगवान इसलिए मानते हो, कि मुझे देवता, चक्रवर्ती आदि नमस्कार करते हैं ?

समन्तभद्र ने कहा—नही भगवान।

(२) भगवान ने फिर पूछा—चामर, छत्र आदि विभूति हैं। आकाश मे मेरा गमन होता है। इसलिए तुम मुझे भगवान मानते हो ?

समन्तभद्र ने कहा—नही भगवान ! इन कारणो से आप हमारे लिए महान नही है। ऐसी बाते तो मायावी इन्द्रजाली आदि मे भी पाई जाती हैं।

(३) भगवान ने कहा, तब फिर तुम मुझे किसलिए भगवान मानते हो ?

समन्तभद्र ने कहा—मेरे मे पहले बहुत दोप थे और ज्ञान का उघाड भी बहुत कम था और अब दोष बहुत कम हो गये हैं और ज्ञान भी बढ गया है। जब मेरा दोप कम हुआ, तो कोई दोष रहित भी होना चाहिए और मेरा ज्ञान बढा, तो कोई पूर्ण ज्ञानवाला भी होना चाहिये।

सो हे प्रभो ! मैं आपको दोप रहित वीतरागरूप और पूर्ण केवलज्ञानी पाता हूँ। इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ और आपकी वाणी पूर्वा पर विरोध रहित ही होती है। कहा है —

देवागम, नभोयान, चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान ॥२॥

दोषावरणयोर्हानिर्नि: शेषास्त्यतिशायनात् ।
क्वचिद्यथा स्व हेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षयः ॥४॥

सामान्य अर्थ—हे भगवन् ! आप हमारी दृष्टि मे मात्र इसलिए महान नही हो कि (१) आपके दर्शनार्थ देवगण आते है। (२) आपका गमन आकाश मे होता है और (३) आप चवर-छत्रादि विभूतियो से विभूषित हो। क्योकि यह सब तो मायावियो मे भी देखे जाते है।-२॥ हे भगवन् ! आपकी महानता तो वीतरागता और सर्वज्ञ के कारण ही है। वीतरागता और सर्वज्ञता असम्भव नही है। मोह, राग-द्वेषादि दोष और ज्ञानावरणादि आवरणो का सम्पूर्ण अभाव सम्भव है। क्योकि इनकी हानि क्रमश: होती देखी जाती है। जिस प्रकार लोक मे अशुद्ध कनक-पाषाणादि मे स्व हेतुओ से अर्थात् अग्नि तापादि से अन्तर्बाह्य मल का अभाव होकर स्वर्ण की शुद्धता होती देखी जाती है। उसी प्रकार शुद्धोपयोगरूप ध्यानाग्नि के ताप से किसी आत्मा के दोषावरण की हानि होकर वीतरागता और सर्वज्ञता प्रगट होना सम्भव है ॥४॥

हे भगवान ! आपने एक समय मे प्रत्येक द्रव्य मे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताया है और यह सर्वज्ञ की निशानी है।

प्रश्न ९०—क्या मिथ्यात्वी भगवान को नहीं पूज सकता है ?

उत्तर—यथार्थतया नही पूज सकता है, क्योकि मुनिसुव्रतनाथ की स्तुति करते हुए स्वयभूस्तोत्र मे श्लोक न० १३९ मे लिखा है कि —

हे जिन सुर असुर तुम्हे पूजें। मिथ्यात्वी चित्त नहीं तुम्हे पूजें ॥

जिस जीव ने अपनी आत्मा का अनुभव किया, उसने ही सर्वज्ञ को माना और जाना। क्योकि सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की श्रद्धा किये बिना सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नही होती है। इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही भगवान को सत्यरूप से माना, इससे पहले नही माना। प्रवचनसार गा० ८० मे कहा है कि—

जो जाणदि अरहतं दव्वत गुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्य लयं ॥८०॥

जिस जीव ने अपनी वर्तमान पर्याय को अपने त्रिकाली भगवान की ओर सन्मुख किया, उस समय उसका मोह का अभाव हो जाता है तब अरहत भगवान को जाना और माना ।

प्रश्न ६१—उत्साह, आदर, भावना और फल से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—(१) जिसकी रुचि—उसकी सावधानी । (२) जिसकी सावधानी—उसकी मुख्यता । (३) जिसकी मुख्यता—उसकी महिमा । (४) जिसकी महिमा—उसका आदर । (५) जिसका आदर—उसका उत्साह । (६) जिसका उत्साह—उसकी भावना । (७) जिसकी भावना उसका फल । (८) जिसका फल—उसका जीवन मे टोटल हर समय आता है । इससे यह पता लगता है कि जीव कहाँ खडा है और कहाँ सावधान है ।

प्रश्न ६२—पुद्गल कर्म की कौनसी अवस्था रागादि में निमित्त नहीं है और कौनसी अवस्था मे निमित्त है ?

उत्तर—(१) कर्म सत्ता मे पडा हो वह रागादि मे निमित्त नही है । (२) कर्म की प्रकृति भी रागादि मे निमित्त नही है । (३) कर्म के प्रदेश भी रागादि मे निमित्त नही हैं । (४) कर्म की स्थिति भी रागादि मे निमित्त नही है । (५) एक मात्र पुराने कर्म का उदय (अनुभाग) रागादि मे निमित्त पडता है ।

प्रश्न ६३—संयोगकी पृथकता, विभावकी विपरीतता और स्वभाव की सामर्थ्यता, पर से तीन बोल कौन-कौन से निकलते हैं और इनको जानने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर—(१) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किये उसमें से एक भी रजकण अपना नही हुआ । (२) अनादि काल से आज तक असख्यात लोक प्रमाण विभाव भाव किया । परन्तु "वह का वह रहता नही ।" जो अपने साथ न रहे, वह अपना है ही नही ।

(३) अखण्ड ज्ञायक स्वभाव की सामर्थ्यता का भान हो तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर मोक्ष का पथिक बने। जो अपना कल्याण चाहता है। वह सयोग जो पृथक् है उससे अपना ध्यान हटावे। शुभाशुभ विकारी भाव विपरीत रूप है इनसे भी जीव का कल्याण नही होता है। एकमात्र स्वभाव की सामर्थ्यता की ओर दृष्टि करे, तो शान्ति प्राप्त हो।

प्रश्न ९४—सर्वज्ञ भगवान के केवलज्ञान का विषय क्या है ?

उत्तर - "सर्वद्रव्य पर्यायेषु केवलस्य।" अर्थ—केवलज्ञान का विषय सर्वद्रव्य (गुणो सहित) और उनकी सर्व पर्याये है—अर्थात् केवलज्ञान एक साथ सर्व पदार्थों को और उनके सर्व गुणो तथा पर्यायो को जानता है। [मोक्ष शास्त्र अ० १ सूत्र २९]

प्रश्न ९५—हमारे मे थोड़ी बुद्धि है। हमे ऐसी बात बताओ—जिससे हमारा कल्याण हो जावे ?

उत्तर—देखो भाई ! भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव पर हम सब लड्डू चढाते हैं। तब आप एक चतुर बाई के पास निर्वाणोत्सव के लड्डू बनवाने गये, तो बाई ने चूल्हे पर कढाई रक्खी और पानी गेरा। आपसे कहा लाओ चीनी। तब आपने डिब्बा जिसमे चीनी थी, उसको दिया। उसने कढाई मे चीनी गेरकर डिब्बा तुम्हे पकडा दिया। थोडी देर मे उसमे उफान आया तो बाई ने आपसे दूध माँगा। तो आपने दूध का लोटा पकडा दिया, बाई ने दूध गेरकर लोटा वापस कर दिया। चीनी मे मैल आया तो बाई ने उसे उतारकर फेंक दिया। तब आपने कहा, बाई जी ! तुम तो बहुत हुश्यार हो, तुमने चीनी से मैल अलग कर दिया। अब जरा मिठास को अलग कर दो। बोली, मिठास अलग नही हो सकता, उसी प्रकार जिसमे थोडी बुद्धि है और अपना कल्याण करना चाहता है तो (१) डिब्बा, की तरह अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माये, अनन्तानन्त पुद्गल धर्म-अधर्म-आकाश एक एक और लोक प्रमाण असख्यात

काल द्रव्य हैं--इनसे दृष्टि उठावो, (२) चीनी मे मैल की तरह हिंसा, झूठ आदि पापभाव हैं और दया, दान, पूजा, अणुव्रत, महाव्रत का भाव पुण्यभाव है--इनसे भी दृष्टि उठावो, (३) जैसे--चीनी से मिठास अलग नही हो सकता, उसी प्रकार अनन्त गुणो का अभेद पिण्ड जो अपना आतमा है उस पर दृष्टि दे तो तुरन्त कल्याण होता है।

प्रश्न ६६—मनुष्य भव के लिए ज्ञानी देवता भी तरसते हैं यह वात कैसे है ?

उत्तर—एक राजा था। उसे अपनी दौलत का वहुत वडा अभिमान था। वह चाहता था कि मैं सवको अपनी सम्पत्ति दिखलाऊँ लेकिन मौका नही मिलता था। एक वार भगवान का समोशरण आया। उसने समोशरण मे जाने के लिए रणभेरी वजवादी। उसने सोचा-अव अपनी सम्पत्ति दिखलाने का अच्छा मौका है। उसने अपनी तमाम दौलत, फौज, हाथी आदि सजाकर लोगो को दिखाकर समोशरण मे जाने का विचार किया। उसके विचार को इन्द्र ने जान लिया। इन्द्र ने राजा का मान गलाने के लिये वडे-वड़े हाथी और हाथी की सूंड पर अप्सरा नृत्य करती हुई, वडाभारी वैभव निकलवाया, इन्द्र के वैभव को देख कर राजा का मान गल गया।

इन्द्र और राजा भगवान के समोशरण मे पहुँचे और राजा ने इन्द्र को ललकारा, हे इन्द्र देव ! तुमने दौलत सम्वन्धी मेरे मान को नीचा दिखाया, अव मैं भगवती जिनेश्वरी दीक्षा लेता हू तुम्हारे मे शक्ति है तो आजाओ। तव इन्द्र कहता है तुम वडे भाग्यशाली हो, जो भगवती जिनदीक्षा ले रहे हो। मेरे इन्द्रपद से भी मनुष्यभव विशेष दुर्लभ है, क्योकि मैं मनुष्यभव मे ही दीक्षा अगीकार करके मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ।

भाई विचारो ! जो जीव मनुष्यभव पा करके पाँचो इन्द्रियो के विषयो मे ही अपना जीवन खो देते हैं उन्हे सौ-सौ वार धिक्कार है। वास्तव मे वालकपन सम्यग्दर्शन है। जवानी मुनिपना है। बुढापा

केवलज्ञान है। इसके बदले जो जीव "बालकपने मे ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरणी रत रह्यो। अर्धमृतक सम बूढापना, कैसे रूप लखै आपनो।" यदि मनुष्यभव होने पर धर्म की प्राप्ति ना की, तो त्रस की स्थिति पूर्ण होने वाली है निगोद तैय्यार है। सावधान-सावधान !

प्रश्न ९७—मोक्षमार्ग प्रकाशक मे मनुष्यभव के इस विषय पर क्या लिखा है ?

उत्तर—एक मनुष्य पर्याय मे कोई अपना भला होने का उपाय करे तो हो सकता है जैसे—काने गन्ने की जड व उसका ऊपरी फीका भाग तो चूसने योग्य ही नही है और बीच की पोरी कानी होने से वे भी नही चूसी जाती। कोई स्वाद का लोभी उन्हे बिगाडे तो बिगाडो, परन्तु यदि उन्हे बोदे, तो उनसे बहुत से गन्ने हो और उनका स्वाद बहुत मीठा आवे, उसी प्रकार मनुष्य पर्याय का बालक-वृद्धपना तो सुखयोग्य नही है और बीच की अवस्था रोग क्लेशादि से युक्त है वहाँ सुख हो नही सकता। कोई विषय सुख का लोभी उसे बिगाडे तो बिगाडो परन्तु यदि उसे धर्म साधन मे लगाये, तो बहुत उच्च पद को पाये वहाँ सुख बहुत निराकुल पाया जाता है। इसलिए यहाँ अपना हित साधना, सुख होने के भ्रम से मनुष्यभव को वृथा ना खोना।

प्रश्न ९८—मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि से ज्यादा पुण्य का बंध होता है क्या ऐसा शास्त्रों मे आया है ? अथवा त्रस की स्थिति तो बहुत थोड़ी है, उसे काकतालीय न्यायवत् कहो, वह क्यो कही जाती है ?

उत्तर—(१) मिथ्यादृष्टि को साता का उत्कृष्ट बंध १५ कोडा-कोडी सागरोपम का बँधता है। सम्यग्दृष्टि को साता का उत्कृष्ट बंध अंत कोडा-कोडी सागरोपम का बंधता है। अज्ञानी कहता है देखो ! मिथ्यादृष्टि का पुण्य कितना लम्बा बंधा है। अज्ञानी को मालूम नही कि मिथ्यादृष्टि की स्थिति बढी, संसार बढ़ा। और

सम्यदृष्टि की स्थिति घटी, अनुभाग बढा। त्रस की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो हजार सागर है।

(२) मिथ्यादृष्टि के पुण्य की १५ कोडा-कोडी सागरोपम स्थिति बहुत ज्यादा है इतना पुण्य भोगने का स्थान है नही। तो मिथ्यादृष्टि त्रस की स्थिति पूर्ण होने से पहले-पहले शुभ का अभाव करके, अशुभ करके एकेन्द्रिय मे चला जावेगा—जिसका दृष्टान्त द्रव्यलिंगी मुनि है। वह भगवान के कहे हुए व्रतादि का अतिचार रहित पालन करता है और उससे शुभभाव द्वारा नववे ग्रैवेयक तक मे चला जाता है परन्तु फिर निगोद चला जाता है "जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन विन दुःख पाय। तहँ तैं चय थावर तन धरै, यो परिवर्तन पूरे करै ॥" [छहढाला] मिथ्यादृष्टि को इतना लम्बा पुण्य भोगने का स्थान नही है।

(३) सम्यक्दृष्टि को अन्त कोडा-कोड़ी सागरोपम का उत्कृष्ट पुण्य बँधता है। अन्त कोडा-कोडी सागरोपम से त्रस की स्थिति कम है, इतना पुण्य भोगने का स्थान है नही। तो सम्यग्दृष्टि पुण्य का अभाव करके अल्पकाल मे पूर्ण शुद्ध होकर नियम से मोक्ष चला जाता है—जिसका दृष्टान्त सम्यग्दृष्टि है जो नियम से मोक्ष प्राप्त करता है।

(४) अब जिसको मनुष्यभव मिला; दिगम्बर धर्म मिला, सच्चे-देव-गुरु-शास्त्र का समागम मिला। ऐसे समय मे जो जीव अपने स्वभाव का आश्रय नही लेता है परन्तु निमित्त से कार्य होता है या शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति वृद्धि और पूर्णता होती है ऐसा मानता है। शुभभाव से भला होता है ऐसा माने तथा आत्मा-आत्मा की बातें तो करे परन्तु अपना आश्रय ना ले, तो समझ लो उसकी त्रस त्रस की स्थिति पूरी होने को आई है। हे भव्य! तू सावधान होजा, सावधान होजा, ऐसा अवसर मिलना कठिन है और सावधान नही हुआ तो निगोद तैयार है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३२ मे लिखा है "परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरो मे असख्यात

कल्पमात्र है और दो इन्द्रियादि से पचेन्द्रिय पर्यन्त त्रसो मे साधिक दो हजार सागर है।" इस प्रकार अधिकाश तो एकेन्द्रिय पर्यायो का ही धारण करना है। अन्य पर्यायो की प्राप्ति (त्रस पर्यायो की प्राप्ति) तो काकतालीय न्यायवत् जानना।]

प्रश्न ९९—क्या द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से ज्ञान की हानि-वृद्धि होती है ?

उत्तर—नही होती है, क्योकि द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से ज्ञान की हानि-वृद्धि का सम्बन्ध नही है। (१) **नोकर्म** जैसे—एक आदमी का पैर कट गया, शरीर के अग मे तो कमी हुई। परन्तु कट गया—ऐसा ज्ञान तो हुआ। किसी के पास ५० हजार रुपया था उसमे से २५ हजार रुपये घट गये। परन्तु घट गये—इतना ज्ञान तो वढ गया। इसलिए नोकर्म मे कमी हो तो ज्ञान घट जावे—यह बात गलत है। (२) **द्रव्यकर्म**—कोई कहे, ज्ञानवरणीय के उदय से ज्ञान रुकता है। तो विचारो! पहिले कर्म सत्ता मे था अब उदय मे आया। उदय मे आया-इतना ज्ञान वढा—इसलिए द्रव्यकर्म के कारण ज्ञान घटता है या वढता है-ऐसा नही है। (३) **भावकर्म**—चारित्रगुण का विभाव रूप कार्य है। ज्ञान हुआ वह ज्ञान गुण का कार्य है। राग हुआ और ज्ञान हुआ दोनो का समय एक है। ज्ञान गुण की पर्याय ने राग को जाना। तो बिचारो! इतना ज्ञान बढा, इसलिए भावकर्म के कारण भी ज्ञान मे रुकावट नही होती है। इससे निश्चित होता है कि आत्मा को ज्ञान और सुख उत्पन्न करने मे शरीर आदि नोकर्म, पाँचो इन्द्रियो के विषय, द्रव्यकर्म और भावकर्म किंचित् भी कार्यकारी नही है। एकमात्र नोकर्म, भावकर्म, द्रव्यकर्म से दृष्टि उठाकर अपने ज्ञायक स्वभावी पर ही दृष्टि देने से सम्यग्ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है।

प्रश्न १००—संसार परिभ्रमण का अभाव कैसे हो ?

उत्तर—(१) स्व मे एकता (२) पर से भिन्नता (३) करो

अपनी आत्मा मे लीनता (३) हो जावेगी कषाय भावो की हीनता (४) मिट जावेगी ससार परिभ्रमण की एकता।

प्रश्न १०१—भूत क्या है और अभूत क्या है ?

उत्तर—जिसमे जो हो उसे उसका कहना वह भूत है और जो जिसमे ना हो उसे उसका कहना वह अभूत है।

प्रश्न १०२—कुन्द-कुन्द भगवान क्या कहते हैं ?

उत्तर—मैं ऐसा नही कहता, परन्तु सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते है।

प्रश्न १०३—सर्वज्ञ भगवान क्या कहते हैं ?

उत्तर—जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा हमारे ज्ञान मे आया है—इसलिए हम कहते हैं।

प्रश्न १०४—आत्मा मात्र शुद्ध या अशुद्ध भाव ही कर सकता है तो फिर हम शरीर की क्रिया, दान देना, पूजा आदि की क्रिया करें या नही ?

उत्तर—जैसे बढवाण मे एक नदी बहती है। उसमे बहुत सूक्ष्म बालू होता है। अब हमे बालू से तेल निकालना है, उस तेल निकालने की मशीन का आर्डर अमेरिका को दे या रूस को दे। अरे भाई ! जब बालू से तेल निकलता ही नही, तब आर्डर देने की बात कहाँ से आई ? उसी प्रकार जब आत्मा शरीर की क्रिया, रुपया-पैसा देने की क्रिया करता ही नही है तब हम करें या नही—यह प्रश्न ही झूठा है। जीव तो मात्र भाव ही कर सकता है। मिथ्या दृष्टि की मर्यादा विकारी भावो तक है। ज्ञानी की मर्यादा शुभ भावो तक है। परन्तु द्रव्यकर्म-नोकर्म की क्रिया तो ज्ञानी-अज्ञानी कर सकता ही नही है, तब मै करूँ या न करूँ यह प्रश्न मिथ्यात्व से भरा हुआ है।

प्रश्न १०५—जो यह कहता है कि अभी तो हम बच्चे हैं जवान होकर गृहस्थी के मजे ले-लें, घर और बाल बच्चो का इन्तजाम कर दें तब बाद में धर्म करूँगा। तो क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर—अरे भाई ! क्या तुझे निश्चिय है कि मैं अगले समय

रहूगा या नही। इसलिए जो कहता है धर्म फिर करूँगा, वह कभी धर्म को प्राप्त न कर सकेगा और ऐसे विचारो मे ही चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद चला जावेगा।

(१) जैसा एक आदमी था। उसकी स्त्री बडी लडाका थी। उस आदमी ने एकबार कबीर से कहा—क्या गृहस्थी मे धर्म नही हा सकता ? तब कबीर उसे अपने घर ले गया और उससे कहा, घर मे धर्म हो सकता है। तब उस आदमी ने कहा, तुम मुझे प्रत्यक्ष दिखाओ तब मैं मानूगा। कबीर बुनने का काम करता था। उसने दिन के १२ बजे अपनी स्त्री से कहा—लालटेन लाओ। स्त्री लालटेन लेकर आई, कबीर ने उसकी तरफ देखा भी नही। एक घण्टे बाद कहा—आप इतनी देर क्यो खडी रही। लालटेन जलाओ। उसने लालटेन जलाई, तब वह एक घण्टा फिर खडी रही। तब कबीर ने कहा, अच्छा लालटेन को ले जाओ। तब उस आदमी ने कहा, मैं भी तुम्हारे पास रह कर धर्म सीखूँगा, लेकिन जरा घर का, पुत्रो का, लडकियो का इन्तजाम कर आऊँ।

उसे जाते हुए देखकर कबीर ने आश्रम देखने को कहा और तुम सब तरफ घूमो, फिरो। परन्तु इस घडे को मत छूना। जरा मैं अभी आता हू। कबीर बाहर चले गये। उसके हृदय मे घडे को ही देखने की इच्छा रही। जैसे ही उसने घडे को उघाडा तो उसमे से तीन बडे-बडे मैढक उछलकर निकल पडे। वह उन्हे पकडने के लिए दौडा। उनमे से दो तो भाग गये, एक को पकडकर लाया और उस घडे मे रखने लगा। तो उसमे से तीन और मैढक निकलकर भाग गये; उसी प्रकार वह जीव विचार करता है—अभी तो बच्चा है, खूब खाओ-पीओ। जवानी मे विषय भोग करो, आनन्द लो। जरा लडका हो जावे, बडा हो जावे, जरा इसका व्याह कर दूँ। आदि झगडो मे ही पूरा मनुष्य जन्म खो देता है। हे भव्य आत्मा ! धर्म के कार्य को प्रथम कर, अगला समय आया या ना आया, कौन जान सकता है।

(२) एक धोवी उडद की दाल, लहसन आदि खाकर निर्मल जल से भरे हुए तालाव मे कपडे धोने लगा। उसे प्यास लगी-तो विचारता है। अभी तो दो ही वस्त्र धुले है, थोडे और धुलने पर पानी पीऊँगा। फिर प्यास जोर से लगी 'ये धोने के वाद, ये धोने के वाद, जल पीऊँगा। इस प्रकार सकल्प विकल्प करता रहा और मगज मे गरमी चढ गई, इससे वेसुध होकर जल मे गिर गया और वही मर गया।

उसी प्रकार निगोद से लगाकर द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि तक सव ससारी जीव सोचते है कि यह करने के वाद, गुरु के उपदेश द्वारा सम्यग्ज्ञान रूपी जल पीकर सुखी होऊँगा। यह करने के वाद, यह करने के वाद, ऐसा करता-करता मरकर, पता नही कहाँ चला जाता है। इसलिए हे आत्मा ! तुरन्त चेत, देर मत कर। इसलिए पात्र जीव को एक समय की भी देरी न करके अपना कल्याण तुरन्त कर ही लेना चाहिए।

यह जीव इसी प्रकार मनुष्य जन्म पाकर, विषयो के लुभाव मे पागल होकर, चारो गतियो मे घूमकर, निगोद मे चला जाता है। इसलिए हे भव्य ! अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर मिलना कठिन है। तू अपने भगवान का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति कर, सावधान हो, देर मत कर।

प्रश्न १०६—परिणामों की विचित्रता कैसी है?

उत्तर—देखो, परिणामो की विचित्रता। (१) कोई जीव तो ११वें गुणस्थान मे औपशमिक चारित्र प्राप्त करके, पुन मिथ्यादृष्टि होकर किंचित् न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल पर्यन्त ससार मे परिभ्रमण करता है। (२) कोई जीव नित्य निगोद से निकलकर मनुष्य होकर मिथ्यात्व छूटने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मे केवलज्ञान प्राप्त करता है। (३) सीता को रावण हरण करके ले गया। रामचन्द्र जी वृक्षो से पूछते हैं, मेरी सीता तुमने देखी है। (४) वही सीता घर आने पर लोगों के कहने से रावण के पास से आई हुई, सीता को बनवास में

भिजवा दिया। (५) अग्नि-परीक्षा पर वही रामचन्द्र सीता से कहते हैं, घर चलो, तुम्हे पटरानी बनाकर रखूंगा। सीता अर्जिका बन जाती है। (६) सीता का जीव मरकर १६वें स्वर्ग मे देव हो जाता है। रामचन्द्र जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करते हैं; सीता का जीव स्वर्ग से आकर सीता का रूप बनाकर रामचन्द्र जी को डिगाने का प्रयत्न करती है। अरे भाई, देखो परिणामो की विचित्रता ! ऐसा जानकर अपने परिणाम बिगडने का भय रखना और उनके सुधारने का उपाय करना। **जीवन के परिणामनि की यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी॥**

प्रश्न १०७—श्रुतज्ञान मे ही नय पड़ते हैं और ज्ञान की पर्यायों मे नय क्यो नहीं पड़ते हैं ?

उत्तर—श्रुतज्ञान विचारक ज्ञान है। श्रुतज्ञान मे त्रिकाली स्वरूप क्या है, वर्तमान स्वरूप क्या है, दो बातें चलती हैं इसलिए श्रुतज्ञान मे नय पडते हैं। मतिज्ञान सीधा जानता है। अवधि और मन पर्यय ज्ञान का विषय पर है और विकल प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। इसलिये इन चार ज्ञानो मे नय नही पडते है। मात्र भाव श्रुतज्ञान मे ही नय पडते हैं।

गाली क्या है ?

प्रश्न १०८—कोई हमें गाली दे, क्या हम उसे सुनते ही रहे, हम उसे थप्पड़ न मारे ?

उत्तर—वस्तु स्वरूप समझे, तो शान्ति प्राप्त होगी।

(१) उसने मुझे गालियाँ दी। जिनको तू गाली कहता है वह गाली ही नही है। विचारियेगा ! गाली दी—इसमे पाँच बोल हैं। (अ) गाली क्या है ? अ से लेकर ह तक स्वर-व्यजन का परिणमन है इसका कर्ता भाषा वर्गणा है, जीव नही। इसलिए मुझे गाली दी, यह बात झूठ है। (आ) यदि गाली सुनते ही गुस्सा आवे, तो सब जगह एक सा सिद्धान्त होना चाहिये परन्तु ससुराल मे साली गाली देवे तो

कितनी अच्छी लगती है। इसलिये गाली सुनने से किसी को भी दु:ख-सुख नही होता, मात्र अपने राग-द्वेष के कारण ही दु:ख-सुख होता है ऐसा माने-जाने तो क्रोध नही आवेगा।

(२) उस जीव ने मुझे गालियाँ दी। विचारियेगा! क्या कोई जीव शब्द का परिणमन करा सकता है? आप कहेगे, नही। गाली देने वाले ने अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को भूलकर मात्र गाली देने का भाव किया। वह द्वेष भाव है। वह द्वेष भाव से स्वय दु:खी है। क्या दु:खी को दु:खी करना भले आदमी का कार्य है? नही। क्योकि दु:खी जीव तो दया का पात्र है।

(३) उसने मुझे गालियाँ दी। विचारियेगा! क्या उसने तुम्हारे जीव को देखा है? आप कहेगे, नही। उसने नाम—शरीर को उद्देश्य करके गाली देने का द्वेष भाव किया। विचारो, नाम—शरीर तो तुम नही। नाम और शरीर तुम्हारा न होने पर भी उसको (शरीर, नाम को) अपना मानना भूल है। अज्ञानी जीव शरीर और नाम को अपना मान बैठा है इसलिए दु:खी होता है। ज्ञानी जानता है कि मैं आत्मा हू, शरीर और नाम मैं नही हू। ऐसा जाने-माने तो क्रोध नही आवेगा।

एक साधु अपने चेलो के साथ चला जा रहा था। रास्ते मे एक आदमी चलते-चलते साधु महाराज को गालियाँ दे रहा था। चेलो को बहुत गुस्सा आया। साधु ने चेलो को चुप रहने का आदेश दिया। चलते-चलते साधु की कुटिया आ गयी। साधु चेलो सहित अन्दर चला गया। गाली देने वाला देखता ही रहा। बाद मे साधु ने चेलो को बुलाया—देखो कोई हमको १० रुपया देता है, हम ना ले तो किस पर रहे? उसी पर रहे; उसी प्रकार उसने गालियाँ दी, हमने नही ली। वह उसी पर रह गयी। ऐसा जाने तो शान्ति आ जावेगी।

(४) उसने मुझे गालियाँ दी—जब तेरे ज्ञान का उघाड गाली सुनने का हो तो सामने गाली ही होगी। विचारियेगा! गाली का

जीव के भाव के साथ कैसा सम्बन्ध है ? ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है कर्ता-कर्म सम्बन्ध नही है। तुम एक आत्मा हो और आत्मा मे अनन्त गुण है। ज्ञान गुण मे प्रत्येक समय पर्याय होती है। जब तेरी क्षयोपशम रूप ज्ञान की पर्याय अपनी योग्यता से गाली सम्बन्धी ज्ञान की होती है उस समय गाली मात्र ज्ञान का ज्ञेय है क्योकि जब तेरे ज्ञान का उघाड जिस प्रकार का हो, उस समय ज्ञेय भी उसके अनुकूल ही होता है। सामने गाली आई—तो ज्ञान बढा। पहले गाली सम्बन्धी ज्ञान नही था। अब गाली का ज्ञान हुआ। हमे गुरु ज्ञान देवे, उसका उपकार मानना चाहिये या उस पर गुस्सा करना चाहिए।

(५) उसने मुझे गालियाँ दी—विचारियेगा! अज्ञानी कहता है मुझे गाली नही चाहिये अर्थात् मुझे उस सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय नही चाहिये। ज्ञान पर्याय आती है ज्ञान गुण से और ज्ञान गुण है आत्मा का। अर्थात मुझे आत्मा नही चाहिए। ऐसी मान्यता वाले को शास्त्रो मे आत्मघाती महापापी कहा है।

आत्मघाती, महापापी, मूढ कहाँ पर लिखा है ?

उत्तर—

पुद्गल दरव बहुभाँति, निन्दा-स्तुति-वचन रूप परिणमे।
सुनकर उन्हे मुझको कहा गिन रोष तोष जु जीव करे॥
पुद्गल दरव शब्दत्व परिणत, उसका गुण जो अन्य है।
तो नहीं कहा, कुछ भी तुझे, हे अबुध! रोष तूँ क्यो करे॥
यह जानकर भी, मूढ जीव पावै नहीं, उपशम अरे।
शिव बुद्धि को पाया नहीं, वो पर ग्रहण करना चहे॥

प्रश्न १०९—तीन प्रकार के ईश्वर कौन-कौन से हे। उनके जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—(१) जडेश्वर (२) विभावेश्वर, (३) स्वभावेश्वर।

(१) जडेश्वर—प्रत्येक द्रव्य गुणो का समूह है। पुद्गल द्रव्य वह भी गुणो का समूह है। भाषा, मन, वाणी, कर्म आदि परिणमन पुद्गल का स्वय स्वतः कार्य है। प्रत्येक पुद्गल जड़ेश्वर है। जडेश्वर

का आत्मा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। तब जडेश्वर जाना।

(२) विभावेश्वर—हिंसादि भाव, अहिंसा आदि भाव विभावेश्वर कहलाते है। अज्ञानी को हजारो तीर्थंकरादि भी ज्ञानी नही बना सकते, क्योकि अज्ञानी विभाव करने मे भी ईश्वर है।

(३) स्वभावेश्वर—अनन्त गुणो का पिण्ड जो अपनी आत्मा है। वह मेरा स्वभावेश्वर है। जीव स्वभाव रूप परिणमन करे, उसे अनन्त प्रतिकूलता रुकावट नही कर सकती है। ऐसा जानकर अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति हो, तव तीनो ईश्वरो का पता चलता है।

प्रश्न ११०—धर्म प्राप्ति के तीन बोल कौन-कौन से ध्यान मे रखना चाहिए ?

उत्तर—(१) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किये, परन्तु एक रजकण भी अपना नही बना। रजकण कहता है मैं तेरा स्वामीपना स्वीकार नही करता हू। लेकिन तू ज्ञान स्वभावी आत्मा होने पर भी अपनी मूर्खता से मेरा स्वामी बनता है। तू मेरा स्वामी वन तो नही सकता। परन्तु मान्यता मे स्वामी वनने से तुझे आकुलता हुए बिना नही रहेगी। जब तक तू मेरा स्वामीपना मानता रहेगा, तब तक चारो गतियो मे घूम-घूम कर निगोद की सैर करता रहेगा।

(२) अनादिकाल से आजतक असख्यात लोक प्रमाण विकार भाव किया लेकिन **वह का वह** विकार नही रहा। जैसे—पाँच दिन पहले हमारी किसी से लड़ाई हुई, उस समय जो लाल-पीले हुए थे अब आज विचार करने पर वैसा लाल-पीला पना दृष्टि मे नही आता है अर्थात् **वह का वह** विकार नही रहता। विकार आकुलता का कारण है शुभाशुभ भाव दोनो आकुलतारूप है दु खरूप है इसलिए पात्र जीवो को इनसे दृष्टि उठा लेनी चाहिए।

(३) अनादिकाल से आजतक एकरूप रहने वाला जो अपना

त्रिकाली स्वभाव है उसका लक्ष्य नही किया है। यदि उसका लक्ष्य करे तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है। राग विकार और पर वस्तु फिरने वाली है, अध्रुव है और अपना ज्ञायक स्वभाव फिरने वाला नही है, ध्रुव है, वह ही प्राप्त करने योग्य है, अध्रुव शरीर-धन-विकार-लक्ष्मी आदि प्राप्त करने योग्य नही है।

प्रश्न १११—ज्ञानी को बंध क्यो नहीं होता है और अज्ञानी को क्यो होता है ?

उत्तर—जैसे—किसी की आँख पर पट्टी बाँध दो, (१) वह पर पदार्थों को नही देख सकता। (२) पट्टी को भी नही देख सकता है। (३) शरीर को भी नही देख सकता है। यदि जरा पट्टी को दूर करदो, तो वह (१) पर पदार्थों को भी देख सकता है। (२) पट्टी को भी देख सकता है और (३) शरीर को भी देख सकता है, उसी प्रकार अज्ञानी के ऊपर अनादिकाल से एक-एक समय करके मोह राग द्वेष रूप मिथ्यादर्शन ज्ञान-चारित्र की पट्टी बँधी हुई है उसी पट्टी के नशे मे (१) न ही स्व को जानता है। (२) न ही पर को जानता है। (३) न ही विकार को जानता है। यदि अपने त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से पट्टी को दूर कर दे, तो (१) स्व को जानता है। (२) पर भी ज्ञात होता है और (३) विकार भी ज्ञात होता है। मिथ्यादृष्टि को जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा दृष्टि मे नही आता है इसलिए बध होता है और ज्ञानी को जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा ही ज्ञान मे आता है इसलिए बध नही होता है। श्री समयसार १९वी गाथा मे मिथ्या-दृष्टि की पहिचान और ७५ वी गाथा मे ज्ञानी की पहिचान बतलाई है।

प्रश्न ११२—पर का दोष देखने वाले अज्ञानी के स्वभाव को ज्ञानियो ने 'अनीति' 'हरामजादीपना' आदि शब्दो से क्यों सम्बोधन किया ?

उत्तर—जैसे—कोई पतली सी चादर ओढकर सो रहा हो उस पर

कोई जरा धीरे से हाथ फेरे, तो तुरन्त जाग जाता है, उसी प्रकार पात्र जीव को ज्ञानी कहते है। तेरा कार्य तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा है पर से, विकार से तेरा सम्बन्ध नही है। इतना कहते ही ज्ञानी हो जाता है और जैसे—जिसने अपने ऊपर मोटे-मोटे तीन गद्दे गेर रक्खे हों उस पर कोई लाठियाँ भी वरसावे, तो वह जागता नही है, उसी प्रकार अनादि के अप्रतिवुद्ध को ज्ञानी वारम्वार समझाते है परन्तु वह समझता नही है इसलिए ज्ञानियो ने 'हरामजादीपना' आदि शब्दो द्वारा उसके भले के लिए ही सम्वोधन किया है। वह उनका वडा उपकार है।

प्रश्न ११३—जव जीव विकार करता है, तव उसी के अनुसार कर्म का वंध होता है यह बात तो ठीक है। परन्तु दूसरा पक्ष कहता है कि कार्माणवर्गणा मे से जव कर्म वध होने की योग्यता होती है, तव जीव को विकार करना ही पड़ेगा, यह आप क्यो नहीं कहते ?

उत्तर—(१) उस समय होगा कोई जगत मे ऐसा अज्ञानी जो विकार करता होगा। तुझे विकार करना पडेगा, यह बात कहाँ से आई। (२) यह जीव स्वय अपने अपराध से विकार करता है ऐसा जाने तो स्वभाव के आश्रय से विकार को दूर भी कर सकता है (३) यदि कर्म का उदय विकार कराये तो कभी मोह-राग-द्वेप का अभाव नही होगा क्योकि कर्म का उदय तो समय-समय होता है (४) जयसेनाचार्य प्रवचनसार गा० ४५ मे कहा है कि 'द्रव्यमोह का उदय होने पर भी जीव शुद्धात्म भावना के वल द्वारा विकार न करे तो वध नही होता, परन्तु निर्जरा होती है। (५) यदि द्रव्यकर्म विकार कराये तो जीव जहाँ पडा है, वही पडा रहेगा, कभी निगोद मे भी न निकल सकेगा। (६) जैसे अपने घर पर कोई मेहमान आवे, आप उसका आदर न करे, तो वह चला जाता है, उसी प्रकार कर्म का उदय आने पर आप विकार करने रूप उसका आदर न करे, तो वह भी चला जाता है अर्थात् उसकी निर्जरा हो जाती है। लेकिन अज्ञानी

जीव मूर्खता करता है, तब कर्म आकर बध जाता है।

प्रश्न ११४—समयसार गा० ५० से ५५ तक २९ बोलों को तीन बोलो में किस-किस प्रकार बाँटा है और इनसे क्या-क्या लाभ हैं ?

उत्तर—(१) रग (पुद्गल) (२) राग (विकार) (३) भेद (गुण-भेद) इन तीनो के आश्रय से अधर्म की प्राप्ति होती है, धर्म की प्राप्ति नही होती है। इनसे दृष्टि हटा कर स्वभाव पर दृष्टि दे, तो भला हो। अर्थात् (१) निरग, (२) निराग, (३) निभद जो अपना त्रिकाली स्वभाव है उसका आश्रय ले, तो ही धर्म की शुरूआत होकर, वृद्धि होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ११५—पर का करूँ, विस्मरूँ और मरूँ पना मानता है। उसका फल क्या है ?

उत्तर—(१) मैं पर का करूँ-करूँ, (२) तो आत्मा को समय-समय विस्मरूँ और (३) समय-समय भयकर भाव-मरण से मरूँ। इसलिए जो जीव पर के करने-धरने के भाव मे लगा रहता है उसका फल निगोद है और उसका मिथ्यात्व गुणस्थान है।

प्रश्न ११६—मै परका कुछ ना करूँ, ऐसे श्रद्धानादि का क्या फल है ?

उत्तर—(१) मैं परका कुछ ना करूँ, किन्तु आत्मा को स्मरूँ (चौथा गुणस्थान)। (२) अपने स्वरूप मे ठहरूँ। (६-७वाँ गुणस्थान) (३) रागादि को सर्वथा परिहरूँ (१२वाँ गुणस्थान)। (४) मोक्ष लक्ष्मी को वरूँ (१३-१४ वाँ गुणस्थान और सिद्धदशा)।

प्रश्न ११७—नौ के अंक को अफर क्यो कहते हैं ?

उत्तर—नौ का पहाडा पढते जावे तो सबका जमा नौ ही होता है इसलिए नौ के अक को अफर कहा जाता है। जैसे—(१) ९ दूनी १८=तो १ और ८ जोड ९ हुए। (२) ९ तीया २७=तो २ और ७ का जोड ९ हुआ, इसी प्रकार आगे जानना। नौ का अक बताता है

कि अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय ले, तो पर्याय मे नौ क्षायिक लब्धियो की प्राप्ति हो।

प्रश्न ११८—आत्मा में जोड़, बाकी, गुणा और भाग कैसे करना चाहिये ?

उत्तर—(१) जोड—अपनी आत्मा मे शुद्धता का जोड करना। (२) बाकी—अपनी आत्मा मे से राग विकार का बाकी करना। (३) गुणा—शुद्धि का गुणाकार रूप करना। (४) भाग—भाग करते हुए जो एक ज्ञायक भाव बचा, वह "मैं" यह आत्मा का जोड, बाकी, गुणा और भाग है।

प्रश्न ११९—सब से सूक्ष्म कौन है और उसके जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—(१) जब औदारिक शरीर को स्थूल कहे, तो वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म है। (२) जब वैक्रियिक शरीर को स्थूल कहे, तो आहारक शरीर सूक्ष्म है। (३) जब आहारक शरीर को स्थूल कहे, तो तैजस शरीर सूक्ष्म है। (४) जब तैजस शरीर को स्थूल कहे, तो कार्माण शरीर सूक्ष्म है। (५) जब कार्माण शरीर को स्थूल कहे, तो पुण्य-पाप विकारी भाव सूक्ष्म है। (६) जब विकारी भावो को स्थूल कहे, तो शुद्ध पर्याय सूक्ष्म है। (७) जब शुद्ध पर्याय को स्थूल कहे, तो त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव सूक्ष्म है। इसलिए एक मात्र अपना त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव अति सूक्ष्म है। उसका आश्रय लेने से ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है। त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव की अपेक्षा सब स्थूल है। स्थूल का आश्रय लेने से चारो गतियो मे परिभ्रमण करना पडता है।

प्रश्न १२०—पात्र धीर पुरुष कौन है ?

उत्तर—जैसे-जब राक्षसो ने देवो को तग किया। तब वह भगवान के पास गये कि हमे राक्षस तग करते हैं। तब भगवान ने कहा, राक्षसो से बचने के लिए यदि समुद्र मे से अमृत निकाल कर पी लिया

जावे तो राक्षस नुकसान नही पहुँचा सकेंगे। तब देवो ने समुद्र को मथना शुरू किया तो उसमे से कीमती रत्न निकले, तो उन्होने उसकी परवाह नही की, क्योकि उनको तो अमृत की आवश्यकता थी। फिर मथते-मथते हलाहल जहर निकला, तब भी घवडाये नही, क्योकि उनको तो अमृत चाहिए था। फिर बाद मे मथते-मथते अमृत की प्राप्ति हुई, तब राक्षसो से देवो की रक्षा हुई, (यह लौकिक दृष्टान्त है), उसी प्रकार यह जीव अनादि से एक-एक समय करके दु खी हो रहा है। तब वह दु खी जीव भगवान के शमोशरण मे गया। तो भगवान की दिव्यध्वनि मे आया, यदि यह जीव दु खो से बचना चाहता है तो अपना जो त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव समुद्र है उसका आश्रय ले, तो यह दु खो से मुक्त हो सकेगा। तब पात्र जीव स्वभाव का आश्रय लेने का प्रयत्न करता है तो बीच मे शुभभाव आता है तो पात्र जीव उसकी ओर दृष्टि नही करता, क्योकि उसे तो सम्यग्दर्शनादि की आवश्यकता है। कोशिश करते-करते कभी अशुभ भाव का उदय भी आ जाता है तब भी पात्र जीव घबराते नही क्योकि उनको तो रत्नत्रय की आवश्यकता है। फिर विशेष पुरुषार्थ किया तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हुई, तब मोह राग द्वेषरूप राक्षसो से बचा—ऐसे धीर पुरुष सम्यग्दृष्टि आदि हैं।

प्रश्न १२१—दिगम्बर नाम धराने पर भी क्या बौद्ध, सांख्य, चार्वाक, श्वेताम्बर हो सकता है ?

उत्तर—(१) दिगम्बर जैन कहलाने पर भी, लडका मरने से वह मर गया। ससार के पदार्थों मे इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन होने पर अपने मे इष्ट-अनिष्टपना मानना, वह स्वय क्षणिक वादी बौद्ध है। (२) सांख्य मतावलम्बी—दिगम्बर जैन नाम धराके, आत्मा तो सर्वथा त्रिकाल शुद्ध ही है, कर्म ही राग-द्वेष कराता है, कर्म ही ससार-मोक्ष कराता है ऐसी मान्यता वाला स्वय साख्य मतावलम्बी है। (३) चार्वाक—दिगम्बर जैन नाम धराके अरे भाई! शरीर की सम्हाल

रक्खो। यदि शरीर को ठीक ना रक्खोगे, तो धर्म नही होगा इत्यादि मान्यता वाला स्वय चार्वाक है। (४) दिगम्बर नाम धराके शुभभाव करो तो तुम्हे धर्म का लाभ होगा इत्यादि मान्यता वाला स्वय श्वेताम्बर है।

प्रश्न १२२—इन्द्रियो को क्यो जीतना चाहिए ?

उत्तर—(१) ज्ञानी कहते है, कि शास्त्रो मे कथन आया है कि इन्द्रियो को जीतो। अज्ञानी कहता है इन्द्रियाँ तो ज्ञान मे निमित्त पडती है, उन्हे क्यो जीतना चाहिए ? (२) ज्ञानी कहते है इन्द्रियाँ ज्ञान मे निमित्त है, तो भोग मे भी निमित्त है इसलिए इन्द्रियो को जीतना चाहिए। अज्ञानी कहता है जितनी भोग मे निमित्त है उसे जीतो और जो ज्ञान मे निमित्त है उसे मत जीतो। (३) ज्ञानी कहता है इन्द्रियाँ पुद्गलो के जानने मे निमित्त है। अतीन्द्रिय ज्ञायक स्वभावी आत्मा को जानने मे निमित्त नही है इसलिए इन्द्रियो को जीतना चाहिए।

प्रश्न १२३—नन्द, आनन्द, महानन्द, सहजानन्द और परमानन्द मे क्या तात्पर्य है तथा इनमे गुणस्थान लगाकर बताओ ?

उत्तर—[अ] नन्द—अपना त्रिकाली भगवान है। उसकी मर्यादा मे जो रहता है उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। अपने नन्द की विशेष एकाग्रता करने मे महानन्द की प्राप्ति होती है। नन्द मे और विशेष एकाग्रता करने से सहजानन्द की प्राप्ति होती है और फिर पूर्ण एकाग्रता करने मे परमानन्द की प्राप्ति होती है। (१) नन्द=त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव। (२) आनन्द=चौथा गुणस्थान। (३) महानन्द=सातवा गुणस्थान। (४) सहजानन्द=१२वाँ गुणस्थान। (५) परमानन्द=१३-१४वाँ गुणस्थान और सिद्ध दशा। [आ] जो अपने नन्द का आश्रय ना ले, उल्टा पर नन्द का आश्रय, शरीर का आश्रय, विकार का आश्रय, शुद्ध पर्याय का आश्रय लेता है, वह चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद मे चला जाता है।

प्रश्न १२४—श्री अमृतचन्द्राचार्य ने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय क्या बताया है ?

उत्तर—(१) जीव को अनादिकाल से अपने स्वरूप की भ्रमणा है। इसलिए प्रथम आत्मज्ञानी पुरुष से आत्मा का स्वरूप सुनकर युक्ति द्वारा आत्मा ज्ञानस्वभावी है—ऐसा निर्णय करना। (२) फिर पर पदार्थ की प्रसिद्धि के कारण जो इन्द्रिय तथा मन द्वारा प्रवर्तित बुद्धि को मर्यादा मे लाकर अर्थात् पर पदार्थों की ओर से लक्ष्य हटाकर स्वसन्मुख लक्ष करना। (३) पश्चात् "आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है, अन्यथा नही" ऐसा निर्णय हुआ। (४) निर्णय किये हुए आत्मा के बोध को दृढतारूप से धारण करना यह सम्यक् मतिज्ञान हुआ। (५) तत्पश्चात् अनेक प्रकार के नय पक्षो का आलम्बन करने वाले विकल्पो से आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की बुद्धि को भी गौणकर उसे भी आत्माभिमुख करता हुआ विकल्पो को पारकर स्वानुभव दशा प्राप्त करता है। [समयसार गाथा १४४ के आधार से]

प्रश्न १२५—ज्ञानी के पास जाकर क्या करे, तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—जैसे-एक गरीब आदमी था। उसके चार लडके थे। उस आदमी ने ४ काँच के टुकडे लाकर जमीन मे दाब दिये और अपने लडको को बुलाकर कहा—बेटा, मेरे मरने के बाद जब तुम भूखे मरने लगो तब तुम ऐसा करना—मैंने ४ हीरे जमीन मे दाब दिये है। उनमे से एक हीरा निकालकर धन्नालाल सेठ के पास जाना। वह तुम्हे ठीक पैसे दे देगा, उससे अपना गुजारा चलाना।

पिता तो मर गया - खाने को रहा नही। तब उन्होने जमीन खोदकर हीरो को निकाला और एक हीरे को लेकर धन्नालाल सेठ के पास गये। धन्नालाल समझ गया। उसने कहा, यह हीरा बहुत कीमती है, इसका ग्राहक इस समय नही है। तुम इस हीरे को इस

अलमारी मे रख दो और जितना रुपया गुजारे के लिये चाहिए ले जाओ और आज से यही काम सीखना शुरू कर दो। तो उन्होने ऐसा ही किया। काम करते-करते दो साल हो गये तव धन्नालाल सेठ ने कहा, तुम आज अपने हीरे को निकालकर लाओ आज उसका खरीददार आया है। तव उसने अलमारी मे से निकाला और देखकर फेंक दिया और सेठ से आकर कहा, सेठ जी वह तो काँच का टुकडा था, आपने उसे कीमती कैसे वताया था। सेठ ने कहा—भाई जिस दिन तुम उसे लेकर आये थे, यदि मै काँच का टुकडा कहता तो तुम विश्वास ना करते और यह कहते कि यह सेठ हमे ठगना चाहता है, इसलिये मैने ऐसा कहा था, उसी प्रकार अज्ञानी ने अनादिकाल से दिगम्वर धर्म धारण करने पर भी शुभभाव करते-करते धर्म हो जावेगा, ऐसी मान्यता पक्की कर ली है। इसलिए जव हम ज्ञानी के पास जावें तो अपनी मान्यता को तिजोरी से वन्द करके, उनकी वात सुने और विचारे तो कल्याण का अवकाश है। अत प्रथम सच्चे गुरु का निर्णय करके, जैसा गुरु ने कहा, देव ने कहा और जैसा उपदेश दिया। वैसा ही निर्णय करके, अपने अन्तरग मे जव तक भावभासन ना हो तव तक पात्र जीव को वरावर उद्यम करना चाहिए। परन्तु जो गुरु की वात झूठी माने, उसके कल्याण का अवकाश नही है।

प्रश्न १२६—"जे विनयवन्त सुभव्य उर, अम्वुज प्रकाशन भान है। जे एक मुख चारित्र भासित, त्रिजग माहीं प्रधान है" इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे आया है कि "तीन काल और तीन लोक मे चारित्र ही प्रधान है" (यहाँ 'मुख' का अर्थ मुख्य है) इसलिए विनयवन्त सुभव्य (अति आसन्न) जीवो को चारित्र ग्रहण करना चाहिए। यदि चारित्र धारण ना कर सके तो श्रावकपना ग्रहण करना चाहिए और यदि श्रावकपने को भी प्राप्त कर सके तो सम्यग्दर्शन तो प्राप्त कर ही लेना योग्य है।

प्रश्न १२७—यह कहाँ आया है कि पहले चारित्र का उपदेश और जो चारित्र ना ग्रहण कर सके, तो फिर श्रावक, सम्यक्त्व का उपदेश देना चाहिए ?

उत्तर—पुरुषार्थसिद्धयुपाय गाथा १७ मे लिखा है कि जो जीव सम्पूर्ण निवृत्तिरूप मुनिदशा को कदाचित् ग्रहण न कर सके, तो उसे गृहस्थाचार का कथन करे तथा १८वें श्लोक मे 'जो उपदेशक मुनि-धर्म का उपदेश न देकर श्रावक धर्म का उपदेश देता है उस उपदेशक को सिद्धान्त मे दण्ड पाने का स्थान कहा है।

प्रश्न १२८—

दिव्य विटप वहुपन की वर्षा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुम प्रातिहार्य मनहारी ॥
इस छन्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—इस शान्ति पाठ मे भगवान के आगे जो आठ प्रातिहार्य होते हैं उनके नाम हैं—१. दिव्य विपट (अशोकवृक्ष) २ पहुपन की वर्षा (पुष्पो की वर्षा का होना) ३ दुन्दुभि (बाजो का बजना) ४ आसन (सिंहासन) ५ वाणी सरसा (दिव्यध्वनि) ६ छत्र ७ चमर ८ भामण्डल।

प्रश्न १२९—साम्यवाद कितने प्रकार का है ?

उत्तर—तीन प्रकार का है —(१) भोगभूमि का साम्यवाद= पुण्य का करीब साम्यपना। (२) निगोद का साम्यवाद=अनन्त दु ख (३) सिद्धदशा का साम्यवाद=अनन्त अव्यावाध सुख।

प्रश्न १३०—चार प्रकार की मुक्ति को कार्माण शरीर की अपेक्षा बाँटो ?

उत्तर—(१) दृष्टि मुक्ति मे=७॥ कर्म का सम्बन्ध है (२) मोह मुक्त मुक्ति मे=सात कर्म का सम्बन्ध है। (३) जीवन मुक्त मुक्ति मे=चार अघाति कर्म का सम्बन्ध है (४) विदेह मुक्ति मे—किसी भी कर्म का सम्बन्ध नही है।

प्रश्न १३१—जगत मे एक समय में पूरे होने वाले अद्भुत कार्य क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) सिद्ध भगवान एक समय मे मध्यलोक से लोक के अग्रभाग मे चले जाते है। (२) जाने मे एक समय मे धर्मास्तिकाय का निमित्त होता है। (३) केवली भगवान जबकि केवलि समद्घात करते है तब सम्पूर्ण कालाणु एक समय मे एक साथ निमित्त होते है। (४) एक परमाणु एक समय मे चौदह राजू गमन कर जाता है। (५) जीव की पर्याय मे रागादि विकार एक समय का है और भगवान आत्मा के लक्ष्य से नाश को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न १३२—क्या आत्मा ज्ञान होने पर ही आगमज्ञान का उपचार आता है ?

उत्तर—(१) जिसको आगम ज्ञान ना हो, उसे कभी भी आतम ज्ञान नही होगा। (२) परन्तु जिसको आगमज्ञान हो, उसे आतम ज्ञान होवे ही होवे ऐसा नियम नही है। (३) लेकिन जिसको आतम-ज्ञान होता है उसे आगमन ज्ञान होता ही है, और आगम ज्ञान मे अटक नही रहती है। (४) आतम ज्ञान होने पर ही आगम ज्ञान कहा जाता है, क्योकि उपादान के बिना निमित्त नही होता है।

प्रश्न १३३—शास्त्र ज्ञान कब कार्यकारी कहा जाता है और कब कार्यकारी नहीं कहा जाता है ?

उत्तर—(१) भिन्न वस्तुभूत आत्मा का भान ना हो, तो शास्त्र ज्ञान कार्यकारी नही परन्तु अनर्थकारी बन जाता है। (२) भिन्न वस्तुभूत आत्मा का भान होने पर ही शास्त्र ज्ञान कार्यकारी कहा जाता है।

प्रश्न १३४—किसके आश्रय से शुद्ध पर्याय नियम से प्रगट हो ?

उत्तर—अपने त्रिकालीकारण भगवान परमात्मा की ओर दृष्टि करे तो नियम से शुद्ध पर्याय प्रकट होती है और पर द्रव्यो के और विकार के आश्रय से शुद्ध पर्यायें कभी भी प्राप्त नही होती हैं। जैसे

भावनगर नरेश ने एक नौकर को निकाल दिया। तो वह भावनगर के नरेश के पास आया। तो नरेश ने पूछा तुम क्यो आये ? उसने कहा 'सरोवर के पास कौन न आवे ? भावनगर नरेश ने कहा, जाओ तुम्हारी नौकरी दी, उसी प्रकार जो अपने सरोवर रूप त्रिकाली कारण परमात्मा भगवान के पास जावे, उसे भगवान की प्राप्ति नियम से होती है।

प्रश्न १३५—सिद्धांत (नियम) किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमे कोई अपवाद ना हो वह सिद्धान्त (नियम) है। जैसे दो और दो चार होते है। चाहे अमेरिका मे जावे या रूस मे जावे, उसी प्रकार सिद्धान्त हमेशा एकसा होता है। जिसमे कही भी अन्तर नही आता है।

प्रश्न १३६—निगोद किसका फल है ?

उत्तर—एक ज्ञानी की विराधना का फल निगोद है अर्थात् अपने ज्ञायक स्वभाव की विराधना का फल निगोद है। जहाँ एक ज्ञानी की विराधना है वहाँ अनन्त ज्ञानियो की विराधना है।

प्रश्न १३७—मोक्ष किसका फल है ?

उत्तर—एक ज्ञानी की आज्ञा की आराधना का फल मोक्ष है अर्थात् अपने ज्ञायक स्वभाव की आराधना सो मोक्ष है। जहाँ एक ज्ञानी की आराधना है वहाँ अनन्त ज्ञानियो की आराधना है।

प्रश्न १३८—निश्चय गति कितनी है ?

उत्तर—निगोद और मोक्ष दो है बाकी चार तो मात्र हवा खाने की हैं। जैसे आप बम्बई समुद्र पर सैर करने गये वहाँ पर आपने चार घण्टे सैर की, फिर वापस घर को, उसी प्रकार यह जीव निगोद से निकलकर मनुष्य आदि पर्याय पायी और अपनी ओर नही झुका तो फिर निगोद है और अपनी ओर झुका तो मोक्ष है।

प्रश्न १३९—मनुष्य गति मिलने पर भी अपनी आराधना नही की तो क्या फल होगा ?

उत्तर—त्रस की स्थिति का उत्कृष्ट काल दो हजार सागर से कुछ अधिक है यदि दो हजार सागर के अन्दर आत्मा को यथार्थतया समझ ले तो मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यदि ना समझे तो त्रस की स्थिति पूर्ण होने पर निगोद मे चला जावेगा जिसका दृष्टान्त द्रव्यलिंगी मुनि मिथ्यात्व के कारण अल्पकाल मे निगोद चला जाता है। सम्यग्दृष्टि को शुभभाव हेय बुद्धि से आता है वह उसका अभाव करके शुद्ध रूप परिणत होकर अल्पकाल मे मोक्ष मे चला जाता है।

प्रश्न १४०—भिखारी कौन है और राजा कौन है ?

उत्तर—(१) जो अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों का, (२) औदारिक आदि शरीरो का, (३) विकारी भावो का, (४) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायो का माहात्म मानने वाला भिखारी है और अपने स्वभाव का आश्रय लेने वाला भगवान राजा है।

प्रश्न १४१—अपराध क्या है और राध क्या है ?

उत्तर—(अ) (१) पर पदार्थों का, (२) विकारी भावो का (३) अपूर्ण-पूर्ण पर्यायो का आश्रय मानना अपराध है। (आ) अपने स्वभाव का आश्रय लेना वह राध है, प्रसन्नता है सुखीपना है।

प्रश्न १४२—गुरु के कहे अनुसार आज्ञा का पालन करने वाला शिष्य कैसा होता है ?

उत्तर—अमावस्या की अर्ध रात्रि मे १२ बजे गुरु ने शिष्य को जगाया और कहा देख ! "मध्यान्ह का सूर्य कैसा प्रकाशित हो रहा है।" शिष्य ने कहा, हाँ भगवान, ठीक है। अगले दिन शिष्य ने गुरु से पूछा, हे भगवान ! जो आपने कहा था "देखो मध्यान्ह का सूर्य कैसा प्रकाशित हो रहा है" यह मेरी समझ मे नही आया—कृपा करके समझाइये। गुरु ने कहा हमारा तात्पर्य यह था कि तुझे सम्यग्दर्शन तो हो गया है और अब जल्द ही केवलज्ञान रूप मध्यान्ह का उदय होने वाला है।

प्रश्न १४३—मरण के भय का अभाव कैसे हो ?

उत्तर—जिसे मरण का भय लगता है, उसे आयु के बध का भय लगना चाहिए। आयु का बध शुभाशुभ भावो के कारण होता है इसलिए जिसे आयु का बध ना करना हो, उसे शुभाशुभ से रहित अपनी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए। फिर शुभाशुभ भावो की उत्पत्ति नही होगी। जब शुभाशुभ भावो की उत्पत्ति नही होगी, तब आयु का बध नही होगा, फिर मरण का भय रहेगा ही नही।

प्रश्न १४४—वस, खस, रस, कस, बस, से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—स्व मे वस, पर से खस, आयेगा आत्मा मे अतीन्द्रिय रस, वही है अध्यात्म का कस, इतना करो तो बस।

प्रश्न १४५—ज्ञानी प्रतिकूलता के समय क्या विचारते हैं ?

उत्तर—(१) कोई गाली दे (तो विचारो) उसने मुझे पीटा तो नही। (२) यदि पीटे तो (विचारो) उसने जान से तो नही मारा। (३) यदि जान से मारे (तो विचारो) उसने तडफा कर के तो नही मारा (४) यदि तडफा करके मारे (तो विचारो) उसने मेरी आत्मा का तो नाश नही किया और मैं तो आत्मा हूँ। उसका कोई नाश कर सकता ही नही, अत उनको दु ख नही होता।

प्रश्न १४६—अज्ञानी लोग कहते हैं 'पहिला सुख निरोगी काया; दूसरा सुख लडका चार; तीसरा सुख सुकुल की नारी; चौथा सुख कोठी मे जार।' क्या यह ठीक है ? और ज्ञानी क्या कहते हैं ?

उत्तर—(१) अज्ञानी लोग पहला सुख निरोगी काया कहते हैं। ज्ञानी कहते हैं अपने ज्ञायक स्वभाव का लक्ष्य करे तो मिथ्यात्वरूपी महारोग का अभाव होता है वह आत्मा की निरोग दशा है यह पहला सुख है। (२) अज्ञानी लोग दूसरा सुख चार लडका कहते हैं। ज्ञानी कहते हैं—अनन्तचतुष्टय की प्राप्ति, वह दूसरा सुख चार लडका है। (३) अज्ञानी लोग तीसरा सुख सुकुल की नारी कहते हैं। ज्ञानी कहते हैं कि शुद्ध परिणति वह सुकुल की नारी है। (४) अज्ञानी लोग चौथा सुख कोठी मे जार अर्थात कोठी मे नाज भरने को कहते है। ज्ञानी

कहते हैं मेरी कोठी मे असख्यात प्रदेश और उनमे अनन्तगुण भरे हुए हैं उसमे मग्न रहना यह कोठी मे जार चाथा सुख है।

प्रश्न १४७—शास्त्र श्रवण मे नीद आवे तो क्या नुकसान होगा?

उत्तर—(१) जैसे—एक सेठ स्नान करके सो गया और नल खुला रह गया, तमाम कमरे मे पानी-पानी भर गया, घर का सब कीमती सामान खराब हो गया, उसी प्रकार जो शास्त्र मे जहाँ जन्म मरण के अभाव की बात चलती हो वहाँ सोवे, तो कितना नुकसान होगा? जरा विचारो। (२) जैसे—नई दुल्हन घर मे आई। उसने दूध आग पर रक्खा और उसे नीद आ गई तमाम दूध निकल गया, उसी प्रकार जो जीव शास्त्र मे सोता है अवसर चला जावेगा, चारो गतियो मे भटकेगा। (३) एक बाई मे घी कढाई मे डालकर उसमे पूरी डाली तो उसे नीद आ गई तो तमाम घी जल गया पूरी भी काली हो गयी, उसी प्रकार जो जीव जहाँ जन्म-मरण के अभाव करने की बात चलती है वहाँ सोता है या उस बात को सुनकर अपने अन्दर नही डालता, वह चारो गतियो मे घूमकर निगोद चला जाता है। इसलिए पात्र जीव को शास्त्र मे कभी नही सोना चहिए। बल्कि उस बात को सुनकर अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए ऐसा अवसर आना कठिन है।

प्रश्न १४८—निश्चय के बिना व्यवहार पर आरोप क्यो नहीं आता?

उत्तर—एक आदमी बढिया बादाम ४०) रुपया का एक सेर लाया और घर पर आकर उनको फोडा, तो उसमे आधा सेर गिरी निकली बाकी रहा छिलका वह भी आधा सेर रहा। क्या कोई उस छिलके के २०) देगा? एक पैसा भी ना देगा, क्योकि बादाम की गिरी होने के कारण छिलके की कीमत कही जाती है, है नही। उसी प्रकार निश्चय हो, तो व्यवहार नाम पाता है। अकेला व्यवहार हो तो वह व्यवहार नाम भी नही पाता है। इसलिए निश्चय के बिना व्यवहार का आरोप भी नही किया जा सकता है।

प्रश्न १४९—सवर क्या है ?

उत्तर—शुभाशुभ भावो का रुकना, शुद्धि का प्रगट होना, वह संवर है।

प्रश्न १५०—सवर मे क्या-क्या होता है ?

उत्तर—त्रिकाली स्वभाव, शुद्ध पर्याय का प्रगट होना, अशुद्धि का उत्पन्न नही होना और द्रव्यकर्म का नही आना, यह चार बाते होती हैं।

प्रश्न १५१—इन चार बातो से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—प्रत्येक कार्य मे एक ही समय मे चार बातें नियम से होती हैं चाहे वह परिणमन शुद्ध हो या अशुद्ध।

प्रश्न १५२—प्रत्येक कार्य मे चार बाते एक ही समय में नियम से हैं, इसका खुलासा कीजिये ?

उत्तर—जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असख्यात कालद्रव्य है। इन द्रव्यो मे प्रत्येक-प्रत्येक मे अनन्त-अनन्त गुण हैं एक-एक गुण के कार्य मे एक ही समय मे यह चारो बाते घटित होती हैं। जैसे औपशमिक सम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय, आत्मा का श्रद्धा गुण ध्रौव्य और दर्शन मोहनीय का उपशम।

प्रश्न १५३—चार बातें कौन-कौनसी हैं ?

उत्तर—उत्पाद व्यय, ध्रौव्य और निमित्त।

प्रश्न १५४—संवर मे चार बातों के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—जब प्रत्येक कार्य मे चारो बाते एक साथ होती हैं तो फिर करना क्या ? एकमात्र अपने स्वभाव पर दृष्टि दें, तो एक ही समय मे अशुद्धि का अभाव, शुद्धि की उत्पत्ति, द्रव्यकर्म का न आना स्वयमेव हो जाता है।

प्रश्न १५५—तत्व अभ्यास का क्या फल है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त-अनन्त गुण हैं। एक-एक गुण में

एक समय मे चारो बाते (उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, निमित्त) होती रही है, हो रही है और होती रहेगी यह पारमेश्वरी व्यवस्था है। जब सब मे ऐसा होता ही है, तब करना क्या रहा ? मात्र जानना-देखना रहा, यह तत्त्व अभ्यास का फल है।

प्रश्न १५६—तत्व के अभ्यास का दूसरा फल क्या है ?

उत्तर—तत्व के अभ्यास से ससार का कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट ना प्रतिभासे। तब स्वयमेव धर्म उत्पन्न होकर वृद्धि होकर, पूर्णता की प्राप्ति होती है। जब एक-एक गुण मे चार बाते अनादिअनन्त होती हैं, होती रहेगी, और होती रही है ऐसा मानसिक ज्ञान लेकर सूक्ष्म रीति से गहराई मे उतरे तो, तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १५७—कैसा शुभभाव करे-तो कल्याण का अवकाश है और कैसे-कैसे भाव का कैसा-कैसा फल है ?

उत्तर—विचारियेगा ! [(१) कोई जीव दान देता है। इसलिए कि यह लोग बार-बार तग करते हैं—लो ले जावो। क्या वह दान है, उसका क्या फल होगा और क्या फल नही होगा ?]

उत्तर—यह तो तीव्र कषाय का भाव है। रुपया गया रुपयो के कारण, वह तो जड की क्रिया है। इसमे जीव का कुछ कार्य नही, वह तो क्रियावती शक्ति का कार्य है। परन्तु मेरे को विशेष तग ना करे इसलिए क्रोध पूर्वक दान दिया, इससे तो पाप का ही बन्ध है। इससे अगले भव मे तिर्यंचादि का सयोग मिलेगा, वहाँ तुझे भी लोग तँग करने पर रोटी का टुकडा डाल देगे; बस इसका फल यह है इससे धर्म की प्राप्ति नही होगी।

[(२) मेरा नाम हो, अगले भव मे मुझे विशेष सपत्ति मिले, ऐसा विचार कर दान देवे, तो उसका क्या फल होगा और क्या फल नही होगा ?]

उत्तर—जो जीव कपडा आहार औषधादिक देने का भाव करता

है। उसमे यदि मद कषाय हो यो पापानुबन्धी पुण्य होगा। कपडा-आहार-औषधादिक तो पुद्गल का कार्य है, उसमे जीव का कुछ कार्य नही। उस भाव मे एकत्व बुद्धि करे तो मिथ्यात्व सहित का पुण्य बन्ध होता है। इससे अगले भव मे शरीर की अनुकूलता, रुपया-पैसे-महल आदि का सयोग मिलेगा, धर्म की प्राप्ति नही होगी।

[(३) यात्रा करूँ, पूजा करूँ, शास्त्र पढूँ, ऐसा विचार करे तो इसका क्या फल होगा और क्या फल नही होगा ?]

उत्तर—यात्रा करूँ, भगवान की भक्ति करूँ, पूजा करू, शास्त्र पढूँ, आदि का भाव मन्द कषाय रूप पुण्य का बन्ध है। शरीर के चलने, पाठ आदि बोलने, हाथ जोडने आदि की क्रिया तो पुद्गल की है। मात्र जो भाव किया है उससे अनुकूल सयोग मिलेगा, धर्म की प्राप्ति ना होगी। (जो यात्रा करके आया और आते ही मुनीम पर गुस्सा हो जावे, तुमने हमारा खाने का इन्तजाम नही किया, पैर दबाने वाले का इन्तजाम नही किया, ऐसे जीव की बात यहाँ पर नही हैं, क्योकि इससे तो पाप का ही बन्ध होता है।)

[(४) अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास करलूँ ताकि मेरी आत्मा का भला हो, तो इसका फल क्या होगा और क्या नही होगा ?]

उत्तर—अध्यात्म शास्त्रो का अभ्यास करके वस्तुस्वरूप समझकर अपनी आत्मा का हित करलूँ ऐसा भाव पूर्वक जो अभ्यास करता है यदि उसका विशेष पुरुषार्थ बढ जावे तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। यदि तत्त्व का अभ्यास करते-करते आयु पूरी हो जावे, तो बाद मे सच्चे देव-गुरु का ऐसा सयोग मिलेगा कि जिनके निमित्त से सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति हो जावेगी। (जो जीव अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास इसलिए करता है कि लोग मेरा आदर करे, मैं बडा कहलाऊँ, सब शास्त्र जबानी याद हो जावे, मुझे रुपया-पैसा, आदर-मान आदि की प्राप्ति हो, उस जीव की बात यहाँ पर नही है।)

इसलिए तत्त्व का अभ्यास विशेष रुचि पूर्वक करने वाले को ही धर्म की प्राप्ति का अवकाश है।

प्रश्न १५८—जीव का कल्याण क्यो नहीं होता। इसका कारण क्या है?

उत्तर—ससार परिभ्रमण मे स्वय का दोष है। परन्तु परका दोष देखता है इसलिए इसका कल्याण नही होता है। ससार-परि-भ्रमण मे मेरा ही दोष है। ऐसा जानकर निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त कल्याण हो जाता है। इस बात को १३ दृष्टान्तो से समझाते हैं।

(१) जैसे—दस वर्ष का बच्चा आठ वर्ष के बालक को पीट रहा हो। तो लौकिक सज्जन हैरान करने वाले १० वर्ष के बच्चे को ही डाँटते है। उसी प्रकार यदि कर्म आत्मा को हैरान करते हो। तो लोकोत्तर भगवान सर्वज्ञ हैं। उन्हे हैरान करने वाले कर्म को उपदेश देना चाहिए। परन्तु भगवान कहते है, यह जीव अपनी भूल से ही स्वय हैरान हो रहा है। यदि यह अपनी भूल को जाने और दोष रहित स्वभाव का आश्रय ले, तो कल्याण हो जावे और यदि पर का दोष निकालता रहेगा, कभी भी कल्याण ना होगा।

(२) जैसे—मुंह पर दाग है। शीशे मे वह दिखाई देता है। उसे दूर करने के लिए शीशे को रगडे तो क्या दाग साफ हो जावेगा? कभी नही; उसी प्रकार अपनी गलती के लिए कर्म से प्रार्थना करे। तो क्या वह हट जावेगा? कभी नही। यदि मुंह के दाग को कपडे से साफ करदे, तो शीशे मे भी साफ दिखाई देगा, उसी प्रकार हम अपनी ओर दृष्टि करे, तो कर्म स्वय भाग जावे।

(३ जैसे—एक डाकू को पचास पुलिस के पहरे मे रक्खा जाता है। ताकि वह भाग न जावे। अज्ञानी लोग पुलिस का जोर देखते है। वास्तव मे जोर डाकू का है, क्योकि एक डाकू के लिए ५० पुलिस रखनी पडती है; उसी प्रकार एक आत्मा को बन्धन में रखने के लिए

निमित्त कारण अनन्त रजकण है। देखो ! अज्ञानी लोग कर्म का जोर देखते हैं। वास्तव मे जोर आत्मा का ही है। इसलिए हे भव्य ! तेरा स्वभाव अनादि अनन्त है। उसका आश्रय ले, तो कल्याण हो जावे और कर्म का दोष देखे तो कल्याण ना हो।

(४) तत्त्व निर्णय न करने मे कर्म का दोष नही है, तेरा ही दोष है। जो कर्म का दोप निकालते हैं यह अनीति है। यदि मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो कर्म का दोप ना निकाले। अपना दोष देख--कर निर्दोप स्वभाव का आश्रय ले, तो कल्याण हो जावे।

(५) जैसे—मुंह टेढा करके शीशे से कहे, सीधा हो जा। तो क्या कभी सीधा होगा ? कभी नही। उसी प्रकार गलती हम करें और कर्म से कहे गलती दूर करो। क्या कभी दूर होगी ? कभी नही। जैसे-हम मुंह को सीधा कर ले, तो शीशे मे भी सीधा दिखाई देगा, उसी प्रकार हम सीधे हो जावे अर्थात् स्वभाव का आश्रय ले-ले, तो कर्म स्वय ही सीधा है।

(६) गिरनार वहुत ऊँचा पहाड है। उस पर ८० वर्ष की बुढिया चढे। तो गिरनार पर्वत समाप्त हो जावेगा, परन्तु बुढिया समाप्त ना होगी। उसी प्रकार कर्म की स्थिति प्रवाहरूप से है वह समाप्त हो जावेगी। परन्तु तू अनादिअनन्त रहने वाला समाप्त नही होगा। इसलिए हे भव्य ! तू स्वय अनादिअनन्त है उसका आश्रय ले तो ससार समाप्त हो सकता है। पर का आश्रय ले, तो ससार समाप्त नही होगा।

(७) दर्शन मोहनीय की स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम की है। लोग उसे वलवान कहते हैं। देखो ! सवसे पहिले दर्शनमोहनीय कर्म हो भागता है। इसलिए हे आत्मा ! तू स्वय वलवान है, उसका आश्रय लेते ही प्रथम मोहनीय भागता है और मोह के जाते ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय भी भाग जाते है। अत अनन्त चतुष्टयमयी अपनी आत्मा का आश्रय ले तो कल्याण हो जाता है।

(८) दोष तो जीव का है। कर्म का देखता है यह तेरा हराम-जादीपना है ऐसा आत्मावलोकन मे आया है। मेरी पर्याय मे दोष अपने अपराध से है। ऐसा जानकर निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले, तो कल्याण का अवकाश है।

(९) बाई जल भरने गई। कलशा नीचे गिर गया। उसमे खड्डा पड गया। खड्डे को दूर करने के लिए ऊपर से चोट मारे। क्या खड्डा ठीक होगा ? कभी नही, उसी प्रकार अपने कल्याण के लिए पर का, कर्मो का, विकारी भावो से लाभ माने तो क्या कल्याण होगा ? कभी नही। जैसे—कलशे के ऊपर पत्थर रखकर अन्दर से चोट मारे, तो ठीक हो जाता है, उसी प्रकार जीव स्वभाव का आश्रय ले, तो पर्याय मे से दोष चला जाता है, कल्याण हो जाता है।

(१०) जैसे—कृष्ण के शखनाद से धनुष चढाने से पद्मोत्तर राजा की सेना भाग गई और पद्मोत्तर राजा भी भागकर द्रौपती के पास गया। हे माता ! मेरी रक्षा करो। तब द्रौपती ने कहा, तुम साडी पहर कर श्री फल लेकर मेरे भाई के पास जाओ, वह स्त्री पर हाथ नही उठाता; उसी प्रकार य जीव एकबार अपने स्वभाव का आश्रय ले, तुरन्त कल्याण हो जाता है।

(११) जैसे—बन्दर की उलझन इतनी ही है वह मुट्ठी नही खोलता; उसी प्रकार यह जीव मात्र अपने स्वभाव का आश्रय नही लेता। जैसे—बन्दर मुट्ठी खोलदे, तो छूटा ही है, उसी प्रकार जीव अपना आश्रय ले-ले तो ससार अलग पड़ा है।

(१२) तोते की उलझन इतनी ही है कि वह नलिनी को नही छोडता, यदि छोड दे, तो छूटा ही पडा है, उसी प्रकार जीव की उलझन इतनी सी है, कि स्वभाव का आश्रय नही लेता यदि ले-ले, तुरन्त कल्याण हो जावे।

(१३) जैसे—मृग मरीचिका मे जल मानकर दौडता है। इसी से वह दु खी है, इसी प्रकार यह जीव पर को अपना मानता है, इसीलिए

दु खी है। न माने और स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त कल्याण हो जावे।

प्रश्न १५६—जैन किसे कहते हैं और जैन कितने प्रकार के है ?

उत्तर- अपनी आत्मा के आश्रय से मोहराग द्वेष को जीत लिया हो-वह जैन है। कुल जैन सात प्रकार के हैं।

प्रश्न १६०—जैन कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर तीन सच्चे जैन हैं और चार झूठे प्रकार के जैन हैं।

प्रश्न १६१—तीन सच्चे जैन कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) उत्तम जैन=अरहत और सिद्ध। (२) मध्यम जैन =सातवे गुणस्थान से १२ वे गुणस्थान तक। (३) जघन्य जैन= ४-५-६ गुणस्थानवर्ती जीव।

प्रश्न १६२—चार झूठे प्रकार के जैन कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) सधैया=जो रोज मन्दिर जाते है, शास्त्र पढते है, लेकिन शास्त्र का मतलब क्या है ? इसका पता नही। यह तो जैसे अन्य मतावलबी है, वैसे यह रहे। (२) भदैय्या=जो मन्दिर मे मात्र भादवे के दस दिनो मे ही आते हैं। (३) लडैय्या=जो मात्र अनन्त चौदस के दिन या कभी-कभी मन्दिर मे लडाई करने आते हैं। (४) मरैय्या=जो चौधरी बनकर मात्र जब कोई लौकिक प्रसग हो तो उसके यहाँ आते हैं। हे भाई ! एकबार अपनी आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट करके देख, फिर अपूर्व आनन्द आवेगा।

प्रश्न १६३—क्या मोक्षार्थी को जरा भी राग नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—(१) पचास्तिकाय गा० १७२ मे लिखा है कि "मोक्षार्थी को सर्वत्र, किंचित् भी राग नही करना चाहिए।" (२) राग कैसा ही हो, वह अनर्थ सन्तति का क्लेशरूप विलास ही है। (३) ज्ञानी का अस्थिरता सम्बन्धी राग भी मोक्ष का घातक, दुष्ट, अनिष्ट है, बध का कारण है। (४) मिथ्यादृष्टि राग को उपादेय मानता है इसलिए

उसका राग अनर्थ परम्परा निगोद का कारण है। (५) परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम गा० ६८ मे ज्ञानी का राग पुण्य बध का कारण और मिथ्यादृष्टि का शुभराग पाप बध का कारण है, ऐसा लिखा है।

प्रश्न १६४—पद्मनन्दी पंच विंशति मे एकत्व अधिकार मे (१) सर्व (२) सर्वत्र, (३) सर्वदा और (४) सर्वथा की बात क्यो ली है?

उत्तर—[अ] हे भव्य! (१) सर्व द्रव्यो को, (२) सर्वत्र अर्थात् सर्व क्षेत्रो को, (३) सर्वदा अर्थात् सर्वपर्यायो को भूत-भविष्य-वर्तमान कालो को, (४) सर्वथा अर्थात् सबके सर्व गुणो को जानना, तेरा स्वभाव है। ऐसा तू जान, ऐसा जानने से तुझे मोक्ष की प्राप्ति होगी। [आ] और (१) सर्व पर द्रव्यो मे, (२) सर्वत्र=सब द्रव्यो के क्षेत्रो मे, (३) सर्वदा=सर्व द्रव्यो को भूत, भविष्य, वर्तमान पर्यायो मे, (४) सर्वथा=सब द्रव्यो के गुणो मे कर्ता-भोक्ता की बुद्धि निगोद का कारण है।

ऐसा बताकर ज्ञाता दृष्टा रहने के लिए एकत्व अधिकार मे सर्व सर्वत्र सर्वदा और सर्वथा की बात की है।

प्रश्न १६५—धर्म क्या है?

उत्तर—(१) वस्तु का स्वभाव वह धर्म है। (२) चारो गतियो से छूटकर उत्तम मोक्ष सुख मे पहुँचावे वह धर्म है। (३) स्वद्रव्य मे रहना सुगति अर्थात् धर्म है। और २८ मूलगुण पालने का भाव, १२ अणुव्रतो का भाव, भगवान के दर्शन का भाव, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र का बध होता है ऐसा सोलह कारण का भाव आदि सब ससार है, धर्म नही है। (४) निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र की एकता धर्म है, व्यवहार रत्नत्रय धर्म नही है। (५) वस्तु स्वभाव रूप धर्म, उत्तम क्षमादि दश विध धर्म, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप धर्म, जीव रक्षा रूप धर्म इन सब मे सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। सम्यग्दर्शन-पूर्वक ही धर्म होता है। सम्यग्दर्शन के बिना चारो मे से एक प्रकार भी धर्म नही होता है। निश्चय से साधने मे चारो मे एक ही प्रकार धर्म है।

प्रश्न १६६—प्रमाण का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है।

उत्तर—प्र=विशेश करके जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा ही। माण= ज्ञान मे आना।

प्रश्न १६७—प्रमाण-प्रमेय-प्रमाता का अर्थ है ?

उत्तर—प्रमाण=जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा ही ज्ञान मे आना। प्रमेय-ज्ञेय। प्रमाता-जानने वाला।

प्रश्न—१६८—भाव दीपिका मे सम्यग्दृष्टि को आप्त क्यो कहा है। जब कि आप्त का लक्षण वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी ह ?

उत्तर—(१) जैसे—खजाँची लाखो रुपया का लेन देन करता है परन्तु उसे अपना नही मानता, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को राग के स्वामीपने के अभाव के कारण **वीतराग** कहा है। (२) सर्वज्ञ= सम्यग्दृष्टि को जितना ज्ञान का उघाड है और जितने पदार्थो को जानता है। उन्हे जानता ही है और जानने का कार्य मेरा है। मैं पर पदार्थों का करूँ या भोगूँ ऐसी एकत्व बुद्धि का अभाव होने से मात्र उनको जानने के कारण **सर्वज्ञ** कहा है। (३) हितोपदेशी—तुम अपने आश्रय से ही शुद्धता प्रकट करो दया-दान-पूजा आदि भाव आस्रव-बन्ध का कारण है। निमित्त से उपादन मे कार्य नही होता है। कार्य उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादनकारण से ही होता है। ऐसा हित का उपदेश ही सम्यग्दृष्टि को वाणी मे आने से उसे **हितोपदेशी** कहा है। इसलिए भाव दीपिका मे सम्यग्दृष्टि को आप्त कहा है। आप्त के तीन भेद हैं (१) अरहत भगवान=उत्तम आप्त हैं। (२) ५ वे गुणस्थान से १२ गुणस्थान तक मध्यम आप्त है। (३) ४ गुण-स्थान वाला जघन्यआप्त है।

प्रश्न १६९—श्री पंचास्तिकाय गा० ३ मे "समवाओ" शब्द आया है उसमे अमृतचन्द्रचार्य ने कौन-कौन से अर्थ निकाले हैं ?

उत्तर—तीन शब्द निकाले हैं। (१) समवाद, (२) समवाय, (३) समअवाय।

प्रश्न १७०—समवाद (शब्द समय) किसे कहते हैं ?

उत्तर—राग-द्वेप रहित शब्द को अर्थात् समदर्शिता की उत्पन्न करने वाला कथन, (भगवान की वाणी को) शास्त्रारूढ निरूपण वह

समवाद है। समवाद कहो, शब्दसमय कहो एक ही बात है। ज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थ का प्रतिपादन शब्द द्वारा होता है। इसलिये उस शब्द को शब्दनय कहते हैं।

प्रश्न १७१—समवाय (शब्द समय) किसे कहते हैं ?

उत्तर—समवाय अर्थात् समूह। पचास्तिकाय के समूह को अर्थात् सर्व समूह पदार्थ को समवाय कहते हैं। समवाय कहो, अर्थ समय कहो एक ही बात है। ज्ञान का विषय पदार्थ है, इसलिए शब्दनय से प्रतिपादित किये जाने वाले पदार्थ को भी नय कहते हैं वह अर्थसमय शब्द से उस पदार्थ का ज्ञान होना यह अर्थ समय है।

प्रश्न १७२—सम्अवाय (ज्ञान समय) किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम् अर्थात् सम्यक् प्रकार से (मिथ्यादर्शन के नाशपूर्वक), मवाय अर्थात् ज्ञान का निर्णय (सम्यग्ज्ञान) वह सम् अवाय है। सम् अवाय कहो, ज्ञानसमय कहो एक ही बात है। वास्तविक प्रमाण ज्ञान है, वह (प्रमाण ज्ञान) जब एक देशग्राही होता है तब उसे नय कहते हैं, इसलिए उसे ज्ञाननय कहा है।

प्रश्न १७३—समवाद (शब्द समय), समवाय (अर्थ समय), सम् अवाय (ज्ञान समय) दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर—(१) जैसे हमारे रजिस्टर मे सौ रुपया लिखा है, वह शब्द समय है (२) तिजोरी मे नकद सौ रुपया है वह अर्थ समय है। (३) हमारे ज्ञान मे भी सौ रुपये आये, वह ज्ञान समय है, उसी प्रकार गुरुदेव ने कहा, आत्मा ! तो आत्मा शब्द वह शब्दनय है। (२) आत्मा पदार्थ मैं हू, यह अर्थ समय है। (३) आत्मा का अनुभव होना, वह ज्ञानसमय है। जैसे मिसरी शब्द शब्दनय। मिसरी पदार्थ अर्थ समय और मिसरी का अनुभव रूप ज्ञान ज्ञानसमय है।

१	शब्य दन	खाते मे १००)	आत्मा शब्द	पाच अस्तिकाय कथन
२	अर्थनय	तिजोरी मे नकद १००)	आत्मा पदार्थ	पाच अस्तिकाय पदार्थ
३	ज्ञानमय	ज्ञान मे १००)	आत्मा का अनुभव	पाँच अस्तिकाय का ज्ञान

प्रश्न १७४—(१) शब्दसमय, (२) अर्थसमय, (३) ज्ञानसमय को आगम के शब्दो मे समझाओ ?

उत्तर—(१) भगवान की वाणी मे पाँच अस्तिकाय, ६ द्रव्य, सात तत्व, नौ पदार्थ, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, छह कारक, त्याग करने योग मिथ्यादर्शनादि, ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि और आश्रय करने योग्य एकमात्र अपना त्रिकाली भगवान है, ऐसा जो कथन आया है, या शास्त्रो मे है यह तो शब्द-समय है। (२) पाँच अस्तिकाय, ६ द्रव्य, सात तत्व, नौ पदार्थ निश्चय व्यवहार, उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, छह कारक, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि और ग्रहण करने योग्य सम्यग्-दर्शनादि और आश्रय करने योग्य एकमात्र अपना त्रिकाली भगवान है ऐसा पदार्थ वह अर्थ समय है। (३) जैसा है वैसा ही सब ज्ञान मे आना, वह ज्ञान समय है।

प्रश्न १७५—तीनो समय कब माने कहा जाय ?

उत्तर—(१) जैसा कथन हो, (२) वैसा ही पदार्थ हो, (३) वैसा ही ज्ञान हो, तीनो समय को माना।

प्रश्न १७६—शास्त्रो मे जैसा कथन आता है और जैसा देव-गुरु कहते हैं वैसा ही हम मानते हैं। फिर हमारे अन्दर क्यो नहीं उतरता है ?

उत्तर—(१) जैसा घर-कुटुम्ब, बेटा-बेटी से प्रीति-प्रेम है, वैसा ही स्व सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा से तन्मय-अमल प्रीति-प्रेम हो जाय तो सहज मे अर्थात् परिश्रम किये बिना अन्दर बात उतर जावे। परन्तु ऐसा प्रेम न होने के कारण अन्दर बात नही उतरती हैं।

(२) जैसे--लडकी १६ वर्ष तक माँ बाप के यहाँ रहती है। उसका पति के साथ सम्बन्ध होते ही सारा प्रेम वही आ जाता है, उसी प्रकार देव-गुरु-शास्त्र के कथन के प्रति प्रेम आ जाय तो अन्दर उतर जावे। परन्तु ऊपर-ऊपर से कहता है कि देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं—मानता नही, इसलिए अन्दर नही उतरता है।

(३) एक मालदार आदमी था। उसका रिश्तेदार वहुत गरीब था और बाजार मे बोरियाँ ढोने का काम करता था। मालदार आदमी ने रिश्तेदार को बुलाकर कहा। देखो ! तुम बाजार मे बोरी ढोते हो, हमे बुरा लगता है। अब तुम इस काम को छोड दो और तुम इस मकान मे आराम से रहा करो। खूब खाओ, पियो, रेडियो सुना करो और खर्च के लिए जो चाहे मुनीम जी से ले लिया करो। उसने कहा, बहुत अच्छा। परन्तु वहाँ पडे-पडे उसका मन ना लगे और घर वालो की नजर बचाकर बाहर निकल जाता और बाजार मे जाकर बोरी ढोने का काम शुरू कर देता। बोरी उठाकर कहता, अरे जीव ! तुझे सब मने करते है, बोरी मत उठा। तू आराम कर। इसी प्रकार रोज करता और कहता, उसी प्रकार अनादि से तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, ज्ञानी श्रावक, सम्यग्दृष्टि और शास्त्र कहते है कि हे आत्मा ! तेरा अत्यन्त भिन्न पर पदार्थो से, शरीर आँख, नाक, कान, मन, वाणी से आठ कर्मों से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है और जो तू दुखी हो रहा है एकमात्र मोह-राग-द्वेष के साथ एकत्व-बुद्धि से ही हो रहा है और एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय ले तो तेरा कल्याण हो। यह अज्ञानी रोज ऐसा कहता है, परन्तु अपनी खोटी एकत्वबुद्धि को छोडता नही है। इसलिए देव-गुरु-शास्त्र के अनुसार कहने पर भी अन्दर नही उतरता है। जैसा देव-गुरु-शास्त्र कहते है वैसा ही निर्णय करके अन्तर्मुख होकर सावधान हो जावे तो, तुरन्त अनादि के मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो जावे। योगसार मे कहा है—

ज्यों मन विषयो मे रमे, त्यो हो आतम लीन।
शीघ्र मिले निर्वाण पद, धरै न देह नवीन ॥५०॥
व्यवहारिक धधे फसा करे न आतम ज्ञान।
यही कारण जग जीव ये, पावे नहि निर्वाण ॥५२॥

प्रश्न १७७—अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—(१) क्रोध—अपने स्वरूप की अरुचि, पर द्रव्य-परभाव की रुचि। (२) मान—पर वस्तु से, शुभाशुभ भावो से अपने को बडा मानना तथा पर द्रव्य की क्रिया मैं कर सकता हू ऐसा मान्यता। (३) माया—अपने स्वरूप की आड मारना अर्थात् पचमकाल है। इस समय किसी को मोक्ष की प्राप्ति तो होती नही। इसलिए वर्तमान मे शुभभाव करो और करते करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी, यह मायाचारी है। (४) लोभ—पुण्य की सग्रहबुद्धि या क्षयोपशम ज्ञान के उघाड की रुचि। मिथ्यादृष्टि को एक ही समय मे चारो कषाय एक साथ ही होती है, चाहे वह द्रव्यलिगी मुनि क्यो ना हो। सम्यग्दृष्टि लडाई मे खडा हो, तीर पर तीर छोड रहा हो, ९६ हजार स्त्रियो के वृन्द मे वैठा हो। उसे अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ नही है।

प्रश्न १७८—अनन्तानुबधी मे 'अनन्त' से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—(१) अनन्त ससार का वध जिस भाव से होता है वह अनन्तानुबधी है। (२) मिथ्यात्व के साथ जिसका वध होता है उसे अनन्तानुबधी कहते हैं।

प्रश्न १७९—सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव होने पर भी भव बढता और बिगड़ता क्यो नही है ?

उत्तर—अनादि ससार अवस्था मे इन चारो ही का निरन्तर उदय पाया जाता है। परम कृष्ण लेश्यारूप तीव्र कषाय हो—वहाँ भी और शुक्ललेश्यारूप मन्दकषाय हो—वहाँ भी निरन्तर चारो का ही उदय रहता है, क्योकि तीव्र मन्द की अपेक्षा अनन्तानुबधी आदि भेद नही है सम्यक्त्वादि का घात करने की अपेक्षा यह भेद है। मोक्ष-मार्ग होने पर इन चारो मे से तीन, दो, एक का उदय रहता है। फिर चारो का अभाव हो जाता है। सम्यग्दृष्टि का भव बढता

भी नही और भव बिगडता भी नही। क्योकि सम्यग्दृष्टि के पास सदैव ज्ञायक स्वभावी अमृत की सजीवनी बूटी है। याद रक्खो—बाह्य सयोग के अनुसार राग-द्वेष का माप नही है और बाह्य राग-द्वेष के अनुसार अज्ञानी-ज्ञानी का माप नही है।

प्रश्न १८०—मोह-राग-द्वेष क्या है ?

उत्तर—(१) मोह —अपने स्वरूप की असावधानी और पर मे सावधानी। (२) राग —अपनी आत्मा ने अलावा पर पदार्थों मे तथा शुभभावो मे यह मेरे लिए लाभकारक है ऐसी मान्यता पूर्वक प्रीति वह राग है। (३) द्वेष .—अपनी आत्मा के अलावा पर पदार्थों मे तथा अशुभभावो मे यह मेरे लिए नुकसान कारक है ऐसी मान्यता पूर्वक अप्रीति वह द्वेष है।

प्रश्न १८१—क्या मोह, राग-द्वेष के अभाव किये बिना जैन नहीं हो सकता ?

उत्तर—नही हो सकता, क्योकि निज शुद्धात्म द्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व राग-द्वेषादि को जीतने वाली निर्मल परिणति जिसने प्रगट की है वही जैन है। वास्तव मे जैनत्व का प्रारम्भ निश्चय सम्यग्दर्शन से ही होता है इसलिए पात्र जीव को प्रथम अपने स्वभाव का आश्रय लेकर मोह-राग द्वेष रहित मेरा स्वरूप है ऐसा निर्णय कर, सम्यग्दर्शन सहित स्वरूपाचरण चारित्र-प्रगट करना-अपना परम कर्तव्य है।

प्रश्न १८२—आराधना किसे कहते हैं और कितनी हैं ?

उत्तर—अपनी आत्मा की आराधना अर्थात् आधि-व्याधि और उपाधि से रहित आत्मा की स्वस्थता वह आराधना है और आराधना चार है—दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप।

प्रश्न १८३—शकित कौन होता है और कौन नहीं होता ?

उत्तर—जो चोरी आदि के अपराध करता है वह लोक मे घूमता हुआ मुझे कोई चोर समझकर पकड ना ले, इस प्रकार शकित होता

हुआ घूमता है, और जो अपराध नही करता वह लोक मे निशक घूमता है उसे कभी बँधने की चिन्ता उत्पन्न नही होती है, उसी प्रकार अज्ञानी पर वस्तुओ से, शरीर इन्द्रियो से, कर्मों से, शुभाशुभ भावो से लाभ-नुकसान मानने के कारण निरन्तर शकित रहता है और ज्ञानी की दृष्टि अपने सकल निरावरण अखण्ड एक-प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्म द्रव्य पर होने से कभी शकित नही होता है।

प्रश्न १८४—ज्ञानी पर द्रव्यो के ग्रहण का भाव क्यो नहीं करता ?

उत्तर—समयसार गाथा २०७ मे लिखा है कि—

पर द्रव्य, यह मुझ द्रव्य, यो तो कौन ज्ञानी जन कहै।

निज आत्मा को निज का परिग्रह, जानता जो नियम से ।२०७।।

अर्थ—ज्ञानी अपने अनन्त गुणो के अभेद पिण्ड को ही अपना परिगह जानता है। क्या सम्यग्दृष्टि लक्ष्मी, सोना, चाँदी, मकान, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, वाणी, आठ कर्मो, शुभाशुभ विकारीभाव, गुण भेद और अपूर्ण पूर्ण शुद्ध पर्याय के पक्ष को अपना कहेगा ? कभी नही कहेगा। क्योकि एक तरफ राम (अपनी आत्मा) और दूसरी तरफ गाम (पर, शरीर, इन्द्रियाँ, कर्म, विकार, शुद्ध पर्याय) के भेद विज्ञान की सच्ची दृष्टि प्रगट होने से ज्ञानी को पर द्रव्यो के ग्रहण का भाव नही होता है।

समयसार गाथा २०८ मे लिखा है कि—

परिग्रह कभी मेरा बने, तो मैं अजीव बनूँ अरे।

मै नियम से ज्ञाता हि, इससे नहि परिग्रह मुझ बने ।।२०८।।

अर्थ—यदि पर द्रव्य मेरा परिग्रह बने तो, जैसे—अज्ञानी ज्ञानी से कहे, आप ५० करोड रुपये के स्वामी हैं। ज्ञानी कहते है—भाई मुझे ऐसी गाली मत दो। क्या मुझे जड बना देना चाहते हो, क्योकि जड का स्वामी जड होता है।

अज्ञानी कहे—आप बहुत पुण्य शाली है। जहाँ जाते है वहाँ सम्मान होता है।

ज्ञानी कहते हैं—अरे भाई ! हमे गाली मत दो। क्योकि मै पुण्य शाली अर्थात् विकार शाली नही हू। मैं तो अनन्त ज्ञायक चैतन्य स्वभावी भगवान हू। पर द्रव्य को अपना नही मानने वाला ज्ञानी कहता है कि समयसार गाथा २०९ मे कहा है कि :—

छेदाय वा भेदाय, को ले जाय, नष्ट बनो भले।

या अन्य को रीत जाय, परिग्रह न मेरा है अरे ॥२०९॥

अर्थ—छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे, नष्ट हो जावे, तथा चाहे जिस प्रकार से चला जावे, वास्तव मे यह पर पदार्थ मेरा परिग्रह नही है ऐसा जानता हुआ ज्ञानी पर द्रव्यो के ग्रहण का भाव नही करता है।

प्रश्न १८५—ज्ञानी अपनी आत्मा का किस-किस से प्रदेशभेद जानता है ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों से। (२) शरीर इन्द्रियाँ मन वाणी से। (३) आठ कर्मों से (४) शुभाशुभ विकारीभावो से (५) गुण भेदो से। (६) एक समय की शुद्ध पर्याय जितना भी मेरा स्वरूप नही, इसलिए ज्ञानी इन सबसे अपना प्रदेशभेद जानता है।

प्रश्न १८६—ज्ञानी अपना निवास कहाँ रखता है और कहाँ नहीं रखता ?

उत्तर—

जहाँ दु ख कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।

सुख स्वरूपी निज आतम में ज्ञाता होके राचिए ॥१॥

जैसे —(१) क्या नारकी नरक मे पडा ऐसा मानता है—कि मैं स्वर्ग मे पडा हू ? नही मानता है। (२) स्वर्ग का देव स्वर्ग मे पडा हुआ क्या ऐसा मानता है—कि मैं नरक मे पडा हूँ ? नही मानता है; उसी प्रकार ज्ञानी अनन्त प्रकाश युक्त असख्यात प्रदेशी मेरा क्षेत्र है। वह सुखधाम स्वरूप है उसमे रहता हुआ ज्ञानी कभी मैं पर द्रव्यो मे,

शरीर इन्द्रियो मे, कर्मो से, विकारी भावो मे पडा हू—ऐसा मानेगा ? कभी भी नहीं ।

जहाँ राग कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए ।
वीतराग स्वरूपी निजआत्म मे वस ज्ञाता होके राचिए ।।२।।

जहाँ भेद कभी नहीं न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए ।
अभेद स्वरूपी निज आत्म मे वस ज्ञाता होके राचिए ।।३।।

जहाँ चार कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए ।
पारिणामिक स्वभावी निज आत्म मे वस ज्ञाता होके राचिए ।।४।।

श्री समयसार के कलश ६९ मे लिखा है कि "जो नयो के पक्षपात को छोडकर सदा अपने स्वरूप मे गुप्त होकर निवास करते है वह ही विकल्प जाल से रहित साक्षात् अमृतपान करते है ।" और जो पर, विकार, भेदकर्म, अभेदकर्म, नय के पक्ष मे पडे रहते है, उनका विकल्प कभी मिटेगा नही और उन्हे वीतरागता की प्राप्ति भी नही होगी । इसलिए ज्ञानी तो एक मात्र अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभावी अखड एक आत्मा मे ही निवास करता है, पर मे नही करता ।

प्रश्न १८७—किस-किस गति मे किस-किस कषाय की मुख्यता है ?

उत्तर—(१) क्रोध की मुख्यता नरक गति मे । (२) मान की मुख्यता मनुष्य गति मे है । (३) माया की मुख्यता तिर्यंच गति मे है । (४) लोभ की मुख्यता देव गति मे है ।

प्रश्न १८८—यदि व्यवहार बढे, तो निश्चय बढ़े, क्या यह ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, क्योकि (१) द्रव्यलिगी को व्यवहार-भास जिनागम के अनुसार है, उसे निश्चय होता ही नही है । (२) ८-९-१० वें गुणस्थान मे निश्चय है । वहाँ देव, गुरु, शास्त्र, अणुव्रत, महाव्रतादि का विकल्परूप व्यवहार है ही नही । इसलिए व्यवहार वढे तो निश्चय बढे यह बात मिथ्यादृष्टियो की है ।

प्रश्न १८९—नैगमादि सात नयों का आध्यात्मिक रहस्य क्या है ?

उत्तर—(१) मैं सिद्ध समान शुद्ध हू ऐसा सकल्प वह सकल्प ग्राही नैगमनय है। (२) मैं अनन्त गुणो का पिण्ड हूं यह अभेद ग्राही सग्रह नय है। (३) मै दर्शन-ज्ञान-चारित्र वाला हू ऐसा भेदग्राही व्यवहार-नय है। (४) पूर्णता के लक्ष से शुरूआत करता हू यह ऋजुसूत्र नय का विषय है। (५) जैसा विकल्प उठा है वैसा परिणमन होना शब्द-नय का विषय है। (६) उसमे कचास ना रह जावे ८ से १२ वे गुण-स्थान तक समभिरूढनय का विषय है। (७) शुद्धि आगे बढता रहे ऐसा १३-१४वाँ गुणस्थान यह एवभूत नय का विषय है।

प्रश्न १९०—इन सातो नयो में और क्या विशेषता है ?

उत्तर—सातो नय एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म है। नैगमनय की अपेक्षा सूक्ष्म है सग्रहनय। और सग्रहनय की अपेक्षा सूक्ष्म है व्यवहार नय। इसी अपेक्षा से एव भूतनय सबसे सूक्ष्म है। अर्थात् एवभूत नय का विषय अति सूक्ष्म है।

प्रश्न १९१—नैगमनय का पेट बड़ा भारी है। ऐसा क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—नैगमनय—वर्तमान मे जो जीव मिथ्यादृष्टि हो उसे सम्यग्दृष्टि कह देता है। जैसे—भरत महाराज का पुत्र तथा आदिनाथ भगवान का पोता मारीच जो कि उस समय गृहीत मिथ्यादृष्टि था। उसे महावीर कह दिया। जब कि मारीच के बडे-बडे भव जिसमे निगोद भी शामिल है। तब भी नैगमनय की अपेक्षा महावीर कह दिया। निर्विकल्प अवस्था होने पर सिद्ध कह देना। तथा राजा श्रेणिक जो कि वर्तमान मे पहिले नरक मे है उसे तीर्थंकर कह देना। इसी अपेक्षा कहा जाता है कि नैगमनय का पेट बडा भारी है।

प्रश्न १९२—सातो नय कौन-कौन से गुणस्थान मे होते हैं ?

उत्तर—(१) नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहानय पहला और चौथे

गुणस्थान मे होता है। (२) ऋजुसूत्रनय—चौथा, पाँचवाँ, छठा गुणस्थान वाले अविरत, श्रावक और मुनिपने को स्वीकार करता है। (३) शब्दनय—४, ५, ६, गुणस्थान स्थिति उपदेशकरूप भूमिका है। वैसा भाव परिणमित होता है। (४) समभिरूढनय—८-९-१०-१२ श्रेणी माँडने वाले जीवो पर ही लागू होता है। क्योकि वे श्रेणी मे आरूढ हो गये है। श्रेणी चढ गया वह समभिरूढनय मे गिना जाता है। (५) एवभूतनय—जैसा द्रव्य है वैसी ही पर्याय मे हो जाता। १३-१४वाँ गुणस्थान का ग्रहण एवभूतनय मे होता है।

प्रश्न १९३—८-९-१०-१२-१३-१४ वे गुणस्थान वालो को तो उस समय ऐसा विकल्प नहीं आता कि—हम श्रेणी माँड रहे हैं। फिर ऐसा क्यो कहा ?

उत्तर—जो जीव सम्यग्दृष्टि है और ४-५-६ गुणस्थान मे हैं। वे जीव विचारते है कि ऐसी-ऐसी अवस्था कौन-कौन से गुणस्थान मे होती है। तथा १३-१४ वाँ गुणस्थान नयो से अतिक्रान्त होने पर भी साधक जीव उसका विचार करते है।

प्रश्न १९४—अध्यात्म मे नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—"तद् गुण सविज्ञान, सो नया।"

अर्थ जो गुण जैसा है उसका वैसा ही ज्ञान करना वह नय है। इससे यह साबित हुआ, जो पर के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध हो, अध्यात्म उसे नय ही नही कहता। पचाध्यायीकार ने पर के साथ सम्बन्ध को नयाभास कहा है।

प्रश्न १९५—नय किसको लागू होते हैं और किसको नहीं होते हैं ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि और केवली को नय नही होते है क्योकि नय तो भावश्रुत ज्ञान का अश है। सम्यग्दर्शन होने पर ही नय लागू होते हैं और केवली नय से रहित है। चौथे गुणस्थान से १२ वे तक नय का विषय है।

प्रश्न १९६—मिथ्यादृष्टि के अवुद्धि पूर्वक राग को वुद्धि पूर्वक सम्यग्दृष्टि के वुद्धि पूर्वक राग को अवुद्धिपूर्वक क्यो कहते हैं ?

उत्तर—श्रद्धा की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि की राग सहित अवस्था भी अवुद्धिपूर्वक मे गिनी जाती है, क्योकि सम्यग्दृष्टि को राग का स्वामीपना नही है। और मिथ्यादृष्टि का राग चाहे वह अवुद्धिपूर्वक हो वह सव वुद्धिपूर्वक ही गिना जाता हे क्योकि उसके राग जा स्वामीपना है।

प्रश्न १९७—अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते है। जैसे—(१) वम्वई के समुद्र का एक किनारा देखने से, दूसरे किनारे का निर्णय होना। (२) समवशरण से तीर्थंकर भगवान का निर्णय करना। (३) प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य सहित सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा देखकर सम्यग्दृष्टि का निर्णय करना। (४) सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक १२ अणुव्रतादि देखकर श्रावकपने का निर्णय करना। (५) शुद्धोपयोग पूर्वक २८ मूलगुण देखकर भावलिंगी मुनि का निर्णय करना (६) स्पर्श देखने से पुद्गल का निर्णय करना। (७) गतिहेतुत्व से धर्मद्रव्य का निर्णय करना। यह सच्चा अनुमान ज्ञान है।

प्रश्न १९८—निक्षेप किसे कहते हैं और निक्षेप से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित लोक व्यवहार को निक्षेप कहते हैं। (१) नाम निक्षेप=ज्ञेय का नाम। (१) स्थापना निक्षेप=ज्ञेय का आकार। (३) द्रव्य निक्षेप=ज्ञेय की लायकात। (४) भाव निक्षेप=ज्ञेय प्रगटता।

प्रश्न १९९—रत्नत्रय को प्रगट करने की क्या विधि है ?

उत्तर—आत्मा को प्रथम द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय द्वारा यथार्थतया जानकर, पर्याय पर से लक्ष्य हटाकर, अपने त्रिकाली

सामान्य चैतन्य स्वभाव जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है—उसकी ओर दृष्टि करने से और उपयोग को उसमे लीन करने से निश्चय रत्नत्रय प्रगट होता है।

प्रश्न २००—सम्यग्दर्शन होने पर केवलज्ञान कैसे प्रगट होता है ?

उत्तर—साधक जीव प्रारम्भ से अन्त तक निश्चय की मुख्यता रखकर, व्यवहार को गौण ही करता जाता है। इसलिए साधक को साधक दशा मे निश्चय की मुख्यता के बल से शुद्धता की वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता हटती जाती है। इस तरह निश्चय की मुख्यता के बल से ही पूर्ण केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्न २०१—समयसार गाथा ४१३ मे व्यवहार विमूढ किसे बताया है ?

उत्तर—व्यवहार करते-करते या उसके अवलम्ब से निश्चय प्रगट हो जावेगा। ऐसी जिसकी मान्यता है उसको व्यवहार विमूढ कहा है।

प्रश्न २०२—जीव संसार में परिभ्रमण क्यो करता है ऐसा कहीं ब्रह्म-विलास में बताया है ?

उत्तर—जैसे—कोऊ स्वान परयो कांच के महल बीच,
ठौर ठौर स्वान देख भूंस भूंस मर्‌यो है।
बानर ज्यो मूठी बांध पर्‌यो है पराये वश,
कुए मे निहार सिंह आप कूद पर्‌यो है।।
फटिक की शीला में विलोक गज जाय अर्‌यो,
नलिनी के सुवटा को कौने धों पकर्‌यो है।।
तैसे ही अनादि को अज्ञान भाव मान हंस,
अपनो स्वभाव भूलि जगत में फिर्‌यो है।।
द्वै द्वै लोचन सब धरै मणि नहिं मोल करांहि,
सम्यकदृष्टि जौहरी विरले इहि जग मांहि।।

प्रश्न २०३—जिन शासन क्या है ?

उत्तर—(१) जो यह अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असयुक्त ऐसे पाँच भाव स्वरूप अर्थात् एक स्वरूप आत्मा की अनुभूति है। वह निश्चय से समस्त जिन शासन की अनुभूति है। [समयसार गा० १५] (२) पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव भलिभाँति पहिचान ले। तो भेद ज्ञान होकर स्व द्रव्य के ही आश्रय से निर्मल पर्याय का उत्पाद और मलिनता का व्यय उसका नाम जैन शासन है। [तत्वार्थ सूत्र पाँचवा अध्याय सूत्र २९, ३० का मर्म] (३) मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला जिनधर्म ही है। वह ही जिन शासन है। [भाव पाहुड गा० ८२] (४) (अ) जो प्राणियो को पच परावर्तन रूप ससार के दुखतै निकाल उत्तम सुख मे पहुंचावे वह जिन शासन है। वह जिन शासन आत्मा का धर्म है। (आ) धर्म के ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को जिन शासन कहा है। (५) आत्मा रागादिक समस्त दोषो से रहित होकर आत्मा ही मे रत हो जावे वह जिनशासन है। [भावपाहुड श्लोक ८५] (७) मोह क्षोभ रहित जो आत्मा का परिणाम वह जैन शासन है। [प्रवचनसार गा० ७] वास्तव मे अपनी आत्मा का अनुभव होने पर जैनशासन की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न २०४—अप्रतिबुद्धता (अज्ञानता) क्या है ?

उत्तर—(१) द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म मे एकत्व बुद्धि वह अज्ञानता है। [समयसार गा० १९] (२) सर्वज्ञदेव ने अज्ञानी के व्रत तपादि को बालतप तथा बालव्रत को अज्ञान कहा है। [समयसार गा० १५२] (३) परम पदार्थरूप ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव नही है और व्रतादि मे रत है। वह अज्ञानी है। [समयसार गा० १५३] (४) शुभभावो से धर्म मानने वाले जीव नपुसक जिन शासन से बाहर है। [समयसार गा० १५४] (५) त्रिकाली आत्मा को छोडकर व्रत नियमादि में प्रवर्तते हैं। उनको

कभी जिन शासन की प्राप्ति नही है। [समयसार गा० १५६] (६) आत्मा रागादि के साथ जो ऐक्य को प्राप्त होता है। वह जिन शासन से बाहर है। [समयसार कलश १६४] (७) जो पर को मारने जिलाने का, सुखी-दुखी करने का अभिप्राय रखते हैं। वे अपने स्वरूप से च्युत होते हुए मोही रागी-द्वेषी होकर अपना घात करते हैं वह जिन शासन से बाहर है। [कलश १६९] (८) जिनेन्द्रदेव कथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील तप करता हुआ भी जिन शासन से बाहर है। [समयसार गा० २७३] (९) जो जीव शास्त्र पढता है परन्तु आत्मा ज्ञान स्वभावी करने-धरने की खोटी मान्यता से रहित है ऐसा अनुभव नही करता वह जिन नही है। [समयसार गा० २७४]

तात्पर्य यह है कि जो जीव जड के रूपी कार्यो मे, विकारी भावो मे अपनेपने की बुद्धि रखते हैं वह जिन शासन से बाहर चारो गतियो के पात्र हैं।

प्रश्न २०५—ज्ञानियो के वचनामृत क्या हैं ?

उत्तर—(१) रे जीव ! तीन लोक मे सबसे उत्तम महिमावत अपनी आत्मा है उसको तू उपादेय जान। वही महा सुन्दर सुख रूप है, जगत् मे सर्वोत्कृष्ट ऐसे आत्मा को तू स्वानुभव गम्य कर। तेरा आत्मा ही तुझे आनन्द रूप है, अन्य कोई वस्तु तुझे आनन्द रूप नही है। आत्मा के आनन्द का अनुभव जिसने किया है ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्य कही भी नही लगता। बार-बार आत्मा की ओर ही झुकता है। आत्मा का अस्तित्व जिसमें नही ऐसे पर द्रव्यो मे धर्मी का चित्त कैसे लगे ? आनन्द का समुद्र जहाँ देखा है वहाँ ही उनका चित्त लगा है।

(२) स्वानुभव यह मूल चीज है। वस्तु स्वरूप का यथार्थ निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञान को अन्तर्मुख करके स्वद्रव्य मे परिणाम को एकाग्र करने पर सम्यग्दर्शन व स्वानुभव होता है। जब ऐसा अनुभव करे तब ही मोह की गाँठ टूटती है और तब ही जीव भगवान के मार्ग मे आता है।

(३) भाई ! यह तो सर्वज्ञ का निर्ग्रंथ मार्ग है। यदि तूने स्वानुभव के द्वारा मिथ्यात्व की ग्रन्थि नही तोडी तो निर्ग्रंथ के मार्ग मे जन्म लेकर के तूने क्या किया ? भाई ! ऐसा सुअवसर तुझे मिला तो अव ऐसा उद्यम कर जिससे यह जन्म-मरण की गाँठ टूटे और अल्पकाल मे मुक्ति हो जाय।

(४) एक जीव वहुत शास्त्र पढा हो और बडा त्यागी होकर हजारो जीवो मे पूजा जाता हो परन्तु यदि शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व उसे न हो तो सभी जानपना मिथ्या है। दूसरा जीव छोटा सा मेढक, मछली, सर्प, सिंह या बालक दशा मे हो, शास्त्र का शव्द पढने को भी नही आता हो किन्तु यदि शुद्धात्मा के श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त्व से सहित है उसका सभी ज्ञान सम्यक् है और वह मोक्ष के पथ मे है।

(५) एक क्षण का स्वानुभव हजारो वर्षो के शास्त्र पठन से बढ जाता है जिसको भव समुद्र से तिरना हो उसे स्वानुभव की विद्या सीखने योग्य है।

(६) एक क्षण भर के स्वानुभव से ज्ञानी के जो कर्म टूटते हैं अज्ञानी के लाख उपाय करने पर भी इतने कर्म नही टूटते। सम्यक्त्व की व स्वानुभव की ऐसी कोई अचिंत्य महिमा है यह समझ कर हे जीव ! इसकी आराधना मे तू तत्पर हो।

(७) अहो ! यह आत्म हित के लिए अत्यन्त प्रयोजनभूत स्वानुभव की उत्तम बात है। स्वानुभव की इतनी सरस वार्ता भी महान भाग्य से सुनने को मिलती है तब उस अनुभव दशा की तो क्या बात ?

(८) मोक्ष-मार्ग का उद्घाटन निर्विकल्प-स्वानुभव से होता है। स्वानुभूति पूर्वक होने वाला सम्यग्दर्शन हो मोक्ष का दरवाजा है। इसके द्वारा ही मोक्ष मार्ग मे प्रवेश होता है इसके लिए उद्यम करना हरेक मुमुक्षु का पहला काम है और हरेक मुमुक्षु यह कर सकता है। हे जीव ! एक बार आत्मा मे स्वानुभूति की लगन लगा दे।

(६) स्व सत्ता के अवलम्बन से ज्ञानी निजात्मा को अनुभवते है। अहो ! ऐसे स्वानुभव ज्ञान से मोक्ष मार्ग के साधने वाले ज्ञानियो की महिमा की क्या बात ? इनकी दशा को पहिचानने वाले जीव भी निहाल ही हो गये हैं।

(१०) पर को साधने से सम्यग्दर्शन नही मिल सकता।

(११) देहादि की क्रिया मे या शुभ राग मे भी सम्यग्दर्शन नही मिल सकता।

परोक्ष ज्ञान के पाँच भेदो का वर्णन

प्रश्न २०६—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये पाँच भेद किसके हैं ?

उत्तर—परोक्ष ज्ञान के है। ये पाँचो ज्ञान-प्रत्यक्ष या परोक्ष वे सब—अपने ही से होते है, पर से ज्ञान नही होता है।

प्रश्न २०७—परोक्ष ज्ञान तो पर से होता है ?

उत्तर—बिल्कुल नही होता है। परोक्ष ज्ञान भी कही इन्द्रिय या मन से नही होता है। जानन स्वभावी आत्मा अपने स्वभाव से ही ऐसी अवस्था रूप परिणता है।

प्रश्न २०८—स्मृति आदि परोक्ष ज्ञान पर से नही होते है जरा स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—जैसे मिठास स्वभाव वाला गुड कभी मिठास के बिना नही होता और न इसकी मिठास पर मे से आती है, वैसे ही ज्ञान स्वभाव आत्मा कभी ज्ञान के बिना नही होता, और न इसका ज्ञान पर मे से आता है। याद रखना—ज्ञान से परवस्तु ज्ञाता होती है. परन्तु ज्ञान कही पर मे जा करके नही जानता, और पर मे से ज्ञान नही आता है।

प्रश्न २०६—स्मृति आदि पाँच भेद किस ज्ञान के हैं ?

उत्तर—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान चार भेद मतिज्ञान के हैं, और आगम यह श्रुतज्ञान है।

प्रश्न २१०—स्मृति किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्व मे देखी हुई वस्तु को स्मरण पूर्वक वर्तमान मे जानना, जैसे—सीमन्धर भगवान ऐसे थे उनकी वाणी ऐसी थी ·· समवशरण ऐसा था—इत्यादि पूर्व मे देखी हुई वस्तु को वर्तमान मे याद करके जाने—ऐसी मतिज्ञान की ताकत है।

प्रश्न २११—प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्व मे देखी हुई वस्तु के साथ वर्तमान वस्तु का मिलान करना; जैसे—पूर्व मे जिन सीमन्धर भगवान को देखा था उनके जैसा ही इस प्रतिमा की मुद्रा है, अथवा पूर्व मे भगवान के पास मैंने जिस आत्मा को देखा था वह यही आत्मा है ऐसा मतिज्ञान जान सकता है। जैसे—श्रेयान्स राजा ने आदिनाथ भगवान को देखते ही पूर्वभव मे मैं इनकी पत्नी ये मेरे पति थे—हमने मुनिराज को आहार दान दिया था इस प्रकार आहार की विधि याद आ गई—देहादि सभी सयोग अत्यन्त पलट गये होने पर भी मतिज्ञान की निर्मलता की कोई ऐसी ताकत है कि "पूर्व मे देखा हुआ आत्मा यही है" ऐसा वह नि शक जान लेता है। जगत को ज्ञानी के ज्ञान की ताकत की पहिचान होना कठिन है।

प्रश्न २१२—तर्क किसे कहते है ?

उत्तर—ज्ञान मे साधन—साध्य का सबध जान लेना, जैसे जहाँ धूम हो वहाँ अग्नि होती है, जहाँ अग्नि ना हो वहाँ धूम नही होती। जहाँ समवशरण हो तीर्थंकर भगवान होते है, जहाँ तीर्थंकर भगवान ना हो वहा समवशरण नही होता। अथवा जिस जीव को वस्त्र ग्रहण है उसे श्रद्धा गुणस्थान नही होता, छठा गुणस्थान जिसके हो उसे वस्त्रग्रहण नही होता। इस प्रकार हेतु के विचार से ज्ञान करना यह तर्क है।

प्रश्न २१३—अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर—हेतु से जो जाना इसके अनुसार साध्य वस्तु का ज्ञान करना, अर्थात् साध्य साधना का तर्क लगा करके साध्य वस्तु को पहिचान लेना इसको अनुमान कहते है। जैसे—यहाँ अग्नि है क्योकि धूम दिखना है, यहाँ तीर्थकर भगवान विराज रहे है क्योकि समवशरण दिखता है, इस जीव को छठा गुणस्थान नही है क्योकि इसके वस्त्र ग्रहण है। इस प्रकार मतिज्ञान से अनुमान हो जाता है।

प्रश्न २१४—आगम किसे कहते हैं ?

उत्तर—इसके उपरान्त आगम अनुसार जो ज्ञान हो उसे आगम ज्ञान कहते है यह श्रुतज्ञान का प्रकार है।

द्रव्यानुयोग में दोषकल्पना का निराकरण

प्रश्न २१५—कोई जीव कहता है कि-द्रव्यानुयोग मे व्रत, संयमादिक व्यवहार धर्म की हीनता प्रगट की है; सम्यग्दृष्टि के विषय-भोगादि को निर्जरा का कारण कहा है—इत्यादि कथन सुनकर जीव स्वच्छन्दी बनकर पुण्य छोड देगा और पाप मे प्रवर्तन करेगा, इसलिये उसे पढना-सुनना योग्य नही है।

उत्तर—जैसे, मिसरी खाने से गधा मर जाये तो उससे कही मनुष्य तो मिसरी खाना नही छोड देंगे, उसी प्रकार कोई विपरीत बुद्धि जीव अध्यात्म ग्रन्थ सुनकर स्वच्छन्दी हो जाता हो उससे कही विवेकी जीव तो अध्यात्म ग्रन्थो का अभ्यास नही छोड देंगे ? हाँ इतना करेंगे कि जिसे स्वच्छन्दी होता देखे उसको वैसा उपदेश देंगे जिससे वह स्वच्छन्दी न हो और अध्यात्म ग्रन्थो मे भी स्वच्छन्दी होने का जगह-जगह निषेध किया जाता है, इसलिये जो उन्हे बराबर सुनता है वह तो स्वच्छन्दी नही होता; तथापि कोई एकाध बात

सुनकर अपने अभिप्राय से स्वच्छन्दी हो जाये तो वहाँ ग्रन्थ का दोष नही है किन्तु उस जीव का ही दोष है। पुनश्च, यदि झूठी दोष-कल्पना द्वारा अध्यात्म शास्त्रों के पठन-श्रवणका निषेध किया जाये तो मोक्ष-मार्ग का मूल उपदेश तो वही है! इसलिये उसका निषेध करने से मोक्षमार्ग का निषेध होता है। जैसे—मेघवृष्टि होने से अनेक जीवो का कल्याण होता है, तथापि किसी को उल्टी हानि हो जावे तो उसकी मुख्यता करके मेघ का निषेध तो नही किया जा सकता; उसी प्रकार सभा मे अध्यात्मोपदेश होने से अनेक जीवो को मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है; तथापि कोई उलटा पाप में प्रवर्तमान करे, तो उसकी मुख्यता करके अध्यात्म शास्त्रो का निषेध नही किया जा सकता।

दूसरे, अध्यात्म ग्रन्थो से कोई स्वच्छन्दी हो जाये तो वह पहले भी मिथ्यादृष्टि था और आज भी मिथ्यादृष्टि ही रहा। हाँ, हानि इतनी ही है कि उसकी सुगति न होकर कुगति होती है।

और अध्यात्मोपदेश न होने से अनेक जीवो को मोक्षमार्ग प्राप्ति का अभाव होता है, इसलिये उससे तो अनेक जीवो का महान अहित होता है, इसलिये अध्यात्म-उपदेश का निषेध करना योग्य नही है।

प्रश्न २१६—द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म-उपदेश उत्कृष्ट है और जो उच्च दशा को प्राप्त हो उसी को कार्यकारी है; किन्तु निचली दशा वालो को तो व्रत; संयमादि का ही उपदेश देना योग्य है?

उत्तर—जिन मत मे तो ऐसी परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व हो और फिर व्रत होते हैं; अब, सम्यक्त्व तो स्व-परका श्रद्धान होने पर होता है, तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि हो और तत्पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक करके व्रती हो। इस प्रकार मुख्यरूप से तो निचली दशा मे ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है; तथा गौणरूप से जिसे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती दिखाई न दे उसे प्रथम तो व्रतादिक का उपदेश दिया जाता है। इसलिए उच्च दशा

वाले को आध्यामोपदेश अभ्यास करने योग्य है,—ऐसा जानकर निचली दशा वालो को वहाँ से पराङ् मुख होना योग्य नही है।

प्रश्न २१७—उच्च उपदेश का स्वरूप निचली दशा वालों को भासित नहीं होता ?

उत्तर—अन्य (अन्यत्र) सो अनेक प्रकार की चतुराई जानता है और मूर्खता प्रगट करता है वह योग्य नही है। अभ्यास करने से स्वरूप बराबर भासित होता है, तथा अपनी बुद्धि अनुसार थोडा-बहुत भासित होता है, किन्तु सर्वथा निरुद्यमी होने का पोषण करें वह तो जिनमार्ग का द्वेषी होने जैसा है।

प्रश्न २१८—यह काल निकृष्ट (हलका) है, इसलिये उत्कृष्ट अध्यात्म के उपदेश की मुख्यता करना योग्य नहीं है।

उत्तर—यह काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा से निकृष्ट है, किन्तु आत्मानुभवादि द्वारा सम्यक्त्वादि होने का इस काल मे इन्कार नही है, इसलिये आत्मानुभवादि के हेतु द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिये। श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित "मोक्षपाहुड" मे कहा है कि —

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि इंदत्तं।
लोयतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदि जंति ॥७॥

अर्थ—आज भी त्रिरत्न द्वारा शुद्ध आत्मा को ध्याकर इन्द्रपना प्राप्त करते है, लौकान्तिक (स्वर्ग) मे देवत्व प्राप्त करते है और वहाँ से चयकर (मनुष्य होकर) मोक्ष जाते हैं।

इसलिये इस काल मे भी द्रव्यानुयोग का उपदेश मुख्य आवश्यक है। प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान कर सम्यग्दृष्टि होना, × × ऐसे मुख्यता से तो नीचे की दशा मे ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है।

[श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २९२ से २९५]

प्रश्न २१६—चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर जयन्ती और दिपावली के दिन निर्वाणोत्सव से क्या-क्या सिद्धान्त निकलते हैं ?

उत्तर—(१) निमित्तरूप भगवान के मानने से सम्पूर्ण दु ख का अभाव। (२) क्रमबद्ध-क्रयनियमित पर्याय की सिद्धि। (३) सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना जीवन व्यर्थ है। (४) उपादान-निमित्त की स्वतन्त्रता का पता चल जाता है। (५) जितने भी निमित्त है सब धर्म द्रव्य के समान ही हैं। (६) तत्त्व विचार से ही धर्म की प्राप्ति (७) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही कर सकता है। (८) तेरा सुख तेरे पास ही है बाहर नही है। (९) प्रत्येक जीव मात्र अपनी भूल से ही दु खी होता है और स्वय भूल रहित स्वभाव का आश्रय लेकर अभाव कर सकता है। (१०) रागादि की उत्पत्ति हिंसा है।

जय महावीर—जय महावीर

प्रारम्भ से पहले अशुद्धियों को शुद्ध कीजिये

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३	५	उसका	उसकी
७	८	काय	कार्य
२१	१५	पच	पाच
३५	१४	श्रा	श्री
४८	२४	३६	२६
६०	१३	ता	तो
९४	८	आशका	आशक्का
९८	१६	उघाड	उघाड
१०५	१८	धारणा	धारण
१०८	१४	ओर	और
१५९	१०	कहना	कहता
१५९	२१	तानौ	ताकौ
१७७	७	वही	वही
१९०	२६	यथा	तथा
२२७	२५	ी	की
२४६	९	कार्य दो	कार्य के दो
२७३	७	निभद	निर्भेद
२८९	६	माक्ष	मोक्ष
२९४	१२	मवाप	अवाय
२९४	२५	शब्ददन	शब्दनय
२९६	६	खच	खर्च
२९६	८	धर	घर
२९७	५	ऐसा	ऐसी
२९८	७	ने	के
३०२	२७	व्यवहानय	व्यवहारनय